☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्रीदेवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्रीरतन मुनि
पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्रीविनयकुमार 'भीम'
श्रीमहेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाणसवत् २५०८
विक्रम स. २०३८
ई. सन् १९८१

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यत्रालय, अजमेर

☐ मूल[illegible] रुपये

[illegible]शोधित परिवर्धित मू[illegible]

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Eighth Anga

ANTAGADA-DASĀO

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Sadhwi Divyaprabha
M A , Ph D

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

☐ **Board of Editors**

Anuyoga-pravartaka Munısri Kanhaıyalal 'Kamal'
Srı Devendra Munı Shastrı
Srı Ratan Munı
Pt Shobhachadra Bharıll

☐ **Managıng Edıtor**

Srıchand Surana 'Saıas'

☐ **Promotor**

Munısrı Vınaykumar 'Bhima'
Srı Mahendramunı 'Dınkar'

☐ **Date of Publication**

Vır-nırvana Saṁvat 2508
Vıkram Samvat 2038, May 1981

☐ **Publishers**

Srı Agam Prakashana Samıtı
Jaın Sthanak, Pıpalıya Bazar, Beawar (Raj)
Pın 305901

☐ **Prınter**

Satısh Shukla
Vedıc Yantıalaya, Ajmer

☐ Price [illegible]

संशोधित परिवर्धित मूल्य

समर्पण

जो प्रकृष्ट प्रतिभा से विभूषित थे,
सयम जिनका सर्वस्व था, जिन्होंने
अपनी आगमानुस्यूत धर्मदेशना से
रूढ परम्पराओं में चैतन्य का संचार
किया, धर्म के विराट् स्वरूप का
बोध कराया, जिनका व्यक्तित्व
अनूठा था, जो अष्टविध गणिसम्पदा
से सम्पन्न थे, उन युगप्रवर्त्तक
ज्योतिर्धर, स्व० आचार्यवर्य
श्रीजवाहरलालजी महाराज के
कर-कमलों में
सादर सविनय

—मधुकर मुनि

प्रकाशकीय

आगमप्रकाशन समिति द्वारा जिस द्रुत गति से आगमो का प्रकाशन हो रहा है, आशा है उससे आगम-प्रेमी महानुभावों तथा हमारे अर्थसहायक सज्जनो को अवश्य सन्तोष होगा। आचाराग (प्रथम तथा द्वितीय भाग), उपासकदशाग और ज्ञाताधर्मकथाग के पश्चात् 'अन्तगडदसाग' पाठको के कर-कमलो मे पहुचाया जा रहा है। इसके तत्काल वाद ही 'अनुत्तरोववाइय' भी पहुचने वाला है। इसका मुद्रण लगभग समाप्त हो गया है और शीघ्र ही वह तैयार हो जाएगा। सूत्रकृताग और स्थानागसूत्र मुद्रण के लिए प्रेस मे दिये जा रहे है। समवायाग का अनुवाद हो चुका है, और सशोधन हो रहा है। भगवती और प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद हो रहा है। प्रश्नव्याकरण एव औपपातिक सूत्र का सम्पादन लगभग पूर्ण होने मे है।

उल्लेख करते हुए अतीव प्रसन्नता होती है कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के इस पावन अनुष्ठान का समाज के ज्ञानप्रेमी सज्जनो ने अच्छा अनुमोदन किया है और विद्वद्वर्ग ने भी इसकी मुक्तकठ से प्रशसा की है। अब तक प्राप्त सम्मतियो से—जिनमे से कुछ मुद्रित हो चुकी हैं, यह स्पष्ट है।

अन्तगडसूत्र का अनुवाद सुविख्यात विदुषी उज्ज्वलकीर्ति स्व० महासती श्रीउज्ज्वलकुमारीजी की सुशिष्या तथा आचार्यसम्राट् राष्ट्रसन्त श्रद्धेय श्री आनन्दऋषिजी म० की आज्ञानुवर्त्तिनी विदुषी महासती श्रीदिव्यप्रभाजी ने किया है। महासतीजी एम ए और पी-एच डी. पदवियो से विभूषित है। आपकी मातृभाषा गुजराती है, फिर भी हिन्दी भाषा मे यह अनुवाद प्रस्तुत करके आपने हमे जो अमूल्य सहयोग दिया है, उसके लिए आभार प्रकट करने के लिए शब्द पर्याप्त नही हैं। ग्रन्थमाला के सम्पादक प श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने अनुवाद को परिमार्जित किया है, फिर भी यदि गुजराती भाषा की अस्पष्ट झलक कही दिखाई दे तो भी मूल आगम के आशय को स्पष्ट करने मे कहीं कुछ भी न्यूनता नही आने पाई है। पर्याप्त परिश्रम करके महासती जी ने इस सस्करण को सर्वजनभोग्य और सुन्दर बनाने का सफल प्रयास किया है। परिशिष्ट देने से शोध करने वाले विद्यार्थियो के लिए भी यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। हम आशा करते है कि अन्य विदुषी महासतिया भी साध्वी श्रीदिव्यप्रभाजी का अनुकरण करके आगे आएँगी और इस पवित्र आयोजन मे हमे सहयोग प्रदान करेंगी।

हमारे समाज के विख्यात विद्वान् तथा मनीषी साहित्यकार श्रीदेवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस आगम की प्रस्तावना लिखी है। प्रस्तावना मे आगम का सागोपाग निदर्शन करा दिया गया है। प्रारम्भ से ही आपका विशिष्ट सहयोग हमे प्राप्त रहा है और पूर्ण विश्वास है कि वह भविष्य मे भी प्राप्त रहेगा।

श्रमणसघ के युवाचार्य सर्वतोभद्र पण्डितप्रवर श्री मधुकर मुनिजी म के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य समझते है जिनके दिशानिर्देशन मे यह प्रकाशनकार्य हो रहा है, जो प्रस्तुत प्रकाशन के प्रधान सम्पादक हैं और जिनकी दूरदर्शिता और जिनवाणीप्रेम के कारण ही हमे भी इस सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

भगवद्वाणी के प्रचार-प्रसार के इस सात्त्विक अनुष्ठान मे अपने सहयोगियो के भी हम कृतज्ञ हैं। अ भा स्था जैन कॉन्फरेंस के तथा इस समिति के अध्यक्ष विवेकमूर्त्ति श्रावकवर्य सेठ मोहनमलजी सा चोरडिया, सेठ श्रीकवरलाल जी वैनाला, श्री मूलचन्द जी सुराणा, श्री दौलतराज जी पारख, श्री गुमानमल जी चोरडिया, स्थानीय कोषाध्यक्ष श्री रतनचन्द जी मोदी तथा स्थानीय मत्री श्रीमान् चादमल जी विनायकिया, प शोभाचन्द्र जी भारिल्ल तथा श्रीसुजानमल जी सेठिया आदि का सहयोग विभिन्न रूपो मे हमे प्राप्त हो रहा है। इन सबके हम आभारी है।

पुखराज शीशोदिया — कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज महता — प्रधानमन्त्री

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

आमुख

जैनधर्म, दर्शन व सस्कृति का मूल आधार सर्वज्ञ की वाणी है। सर्वज्ञ अर्थात् आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं। जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्व का यथार्थ निरूपण कर सकते है। परमहितकर नि श्रेयस का यथार्थ उपदेश कर सकते है।

सर्वज्ञो द्वारा कथित तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध 'आगम' शास्त्र या सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

तीर्थंकरो की वाणी मुक्त सुमनो की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे सूत्र रूप मे ग्रथित करके व्यवस्थित 'आगम' का रूप दे देते हैं।

आज जिसे हम 'आगम' नाम से अभिहित करते हैं, प्राचीन समय मे वे 'गणिपिटक' कहलाते थे। 'गणिपिटक' मे समग्र द्वादशागी का समावेश हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल मे इसके अग, उपाग, मूल आदि अनेक भेद किये गये।

जब लिखने की परम्परा नही थी, तब आगमो को स्मृति के आधार पर या गुरु परम्परा से सुरक्षित रखा जाता था। भगवान् महावीर के बाद लगभग एक हजार वर्ष तक 'आगम' स्मृतिपरम्परा पर ही चले आये थे। स्मृति-दुर्बलता, गुरु-परम्परा का विच्छेद तथा अन्य अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगम-ज्ञान लुप्त होता गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र ही रह गया। तब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने श्रमणो का सम्मेलन बुलाकर स्मृतिदोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को—जिनवाणी को सुरक्षित रखने के पवित्र उद्देश्य से लिपिबद्ध करने का ऐतिहासिक प्रयास किया और जिनवाणी को पुस्तकारूढ करके आने वाली पीढी पर अवर्णनीय उपकार किया। यह जैन धर्म, दर्शन एव सस्कृति की धारा को प्रवहमान रखने का अद्भुत उपक्रम था। आगमो का यह प्रथम सम्पादन वीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् सम्पन्न हुआ।

पुस्तकारूढ होने के बाद जैन आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु कालदोष, बाहरी आक्रमण, आन्तरिक मतभेद, विग्रह, स्मृति-दुर्बलता एव प्रमाद आदि कारणो से आगमज्ञान की शुद्ध धारा, अर्थ-बोध की सम्यक् गुरुपरम्परा धीरे-धीरे क्षीण होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ, पद तथा गूढ अर्थ छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। जो आगम लिखे जाते थे, वे भी पूर्ण शुद्ध नही होते थे। उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही रहे। अन्य भी अनेक कारणो से आगमज्ञान की धारा सकुचित होती गयी।

विक्रम की सोलहवी शताब्दी मे लोकाशाह ने एक क्रातिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थ-ज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद पुन उसमे भी व्यवधान आ गए। साम्प्रदायिक द्वेष, सैद्धान्तिक विग्रह तथा लिपिकारो की भाषाविषयक अल्पज्ञता आगमो की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गए।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम मुद्रण की परम्परा चली तो पाठको को कुछ सुविधा हुई। आगमो की प्राचीन टीकाएँ, चूर्णि व निर्युक्ति जब प्रकाशित हुई तथा उनके आधार पर आगमो का सरल व

स्पष्ट स्वरूप मुद्रित होकर पाठको को सुलभ हुआ तो आगमज्ञान का पठन-पाठन स्वभावत बढा, सैकडो जिज्ञासुओ मे आगम स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगी व जैनेतर देशी-विदेशी विद्वान् भी आगमो का अनुशीलन करने लगे।

आगमो के प्रकाशन सम्पादन मुद्रण के कार्य मे जिन विद्वानो तथा मनीषी श्रमणो ने ऐतिहासिक कार्य किया, पर्याप्त सामग्री के अभाव मे आज उन सबका नामोल्लेखन कर पाना कठिन है। फिर भी मैं स्थानकवासी परम्परा के कुछ महान् मुनियो का नाम ग्रहण अवश्य ही करूँगा।

पूज्य श्रीअमोलक ऋषि जी महाराज स्थानकवासी परम्परा के वे महान् साहसी व दृढमकल्पवली मुनि थे, जिन्होने अल्प साधनो के बल पर भी पूरे बत्तीस सूत्रो को हिन्दी मे अनूदित करके जन-जन को सुलभ बना दिया। पूरी बत्तीसी का सम्पादन प्रकाशन एक ऐतिहासिक कार्य था, जिससे सम्पूर्ण स्थानकवासी व तेरापथी समाज उपकृत हुआ।

गुरुदेव पूज्य स्वामी श्री जोरावरमल जी महाराज का एक संकल्प—

मैं जब गुरुदेव स्व० स्वामी श्री जोरावरमल जी महाराज के तत्त्वावधान मे आगमो का अध्ययन कर रहा था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर गुरुदेव मुझे अध्ययन कराते थे। उनको देखकर गुरुदेव को लगता था कि यह सस्करण यद्यपि काफी श्रमसाध्य है, एव अब तक उपलब्ध सस्करणो मे काफी शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं। मूल पाठ मे एव उसकी वृत्ति मे कही-कही अन्तर भी है, कही वृत्ति बहुत सक्षिप्त है।

गुरुदेव स्वामी श्रीजोरावरमल जी महाराज स्वय जैन सूत्रो के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी मेधा बडी-व्युत्पन्न व तर्कणा-प्रधान थी। आगमसाहित्य की यह स्थिति देखकर उन्हे बहुत पीडा होती और कई बार उन्होने व्यक्त भी किया कि आगमो का शुद्ध, सुन्दर व सर्वोपयोगी प्रकाशन हो तो बहुत कल्याण होगा। कुछ परिस्थितियो के कारण उनका सकल्प मात्र भावना तक सीमित रहा।

इसी बीच आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज, पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज आदि विद्वान् मुनियो ने आगमो की सुन्दर व्याख्याएँ व टीकाएँ लिखकर अथवा अपने तत्त्वाधान मे लिखवाकर इस कमी को पूरा किया है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य श्रीतुलसी ने भी यह भगीरथ प्रयत्न प्रारम्भ किया है और अच्छे स्तर से उनका आगमकार्य चल रहा है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करने का मौलिक एव महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहे हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के विद्वान् श्रमण स्व० मुनि श्रीपुण्यविजय जी ने आगमसम्पादन की दिशा मे बहुत ही व्यवस्थित व उत्तम कोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके स्वर्गवास के पश्चात् मुनि श्री जम्बूविजय जी के तत्त्वावधान मे यह सुन्दर प्रयत्न चल रहा है।

उक्त सभी कार्यो का विहगम-अवलोकन करने के बाद मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज कही तो आगमो का मूल मात्र प्रकाशित हो रहा है और कही आगमो की विशाल व्याख्याएँ की जा रही है। एक, पाठक के लिए दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। मध्यम मार्ग का अनुसरण कर आगमवाणी का भावोद्घाटन करने वाला ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जो सुबोध भी हो, सरल भी हो, सक्षिप्त हो, पर सारपूर्ण हो।

गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। उसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैंने ४-५ वर्ष पूर्व इस विषय मे चिन्तन प्रारम्भ किया। सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि० स० २०३६ वैसाख शुक्ला १० महावीर कैवल्यदिवस को दृढ निर्णय करके आगमबत्तीसी का सम्पादन विवेचन कार्य प्रारम्भ कर दिया और अब पाठको के हाथो मे आगम ग्रन्थ, क्रमश पहुच रहे है, इसकी मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है।

आगमसम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्य-स्मृति मे आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उल्लसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरुभ्राता पूज्य स्वामी श्री हजारीमल जी महाराज की प्रेरणाएँ—उनकी आगमभक्ति तथा आगम सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएँ, मेरा सम्बल बनी हैं। अत मैं उन दोनो स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति मे विभोर हू।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलाल जी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साहसवर्द्धन, सेवाभावी शिष्यमुनि विनयकुमार व महेन्द्र मुनि का साहचर्य-बल, सेवासहयोग तथा महासती श्री कानकुवर जी, महासती श्री झणकार कुवरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमरावकुवर जी 'अर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएँ मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने मे सहायक रही हैं।

मुझे दृढ विश्वास है कि आगमवाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्नसाध्य कार्य सम्पन्न करने मे मुझे सभी सहयोगियो, श्रावकों व विद्वानो का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे गतिशील बना रहूगा।

इसी आशा के साथ

—मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

श्री आगमप्रकाशन समिति, ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

सम्पादकीय

परम उपकारी परमात्मा महावीर को शत शत वन्दन। जिनके पावन स्पर्शमात्र से साधक आत्मा के कोटि कोटि जन्म के बन्धन टूट गये, जो अनेको साधक आत्माओ के ससार का अन्त कर अनन्त सिद्धात्माओ की परमार्थ ज्योति मे ज्योतिर्मय बनाने का सफल प्रयास कर मुक्ति का अमर वरदान बन गये और साथ ही ससार के अन्य आत्माओ की सिद्धि हेतु उनकी उलझन भरी व्यथाओ को दूर कर अपूर्व गौरव गाथाओ का प्राणदान बन गये। परपरा-प्राप्त इस अनुदान का अनुपान करवा के पावन बनानेवाला यह अतगडदशाग सूत्र द्वादशागी मे आठवा अग सूत्र है।

नामकरण

अन्तकृत:—

प्रस्तुत अग का नाम 'अन्तकृत्+दशा+अग+सूत्र है, क्योकि प्रस्तुत ग्रन्थ मे उन नव्वे महापुरुषो का जीवनवृत्त सगृहीत किया गया है जिन्होंने सयम-साधना एव तप-साधना द्वारा आठ प्रकार के कर्मों पर विजय प्राप्त करके एव चौरासी लाख जीव-योनियो मे आवागमन से मुक्ति पाकर जीवन के अन्तिम क्षणो मे मोक्ष-पद की प्राप्ति की। इस प्रकार जीवन-मरण के चक्र का अन्त कर देने वाले महापुरुषो के जीवनवृत्त के वर्णन को ही प्रधानता देने के कारण इस शास्त्र के नाम का प्रथम अवयव "अन्तकृत्" है।

दशा:—

दशा नामक दूसरा अवयव 'दशा' शब्द है। जैन सस्कृति मे दशा शब्द के दो रूढ अर्थ हैं —

(१) जीवन की भोगावस्था से योगावस्था की ओर गमन 'दशा' कहलाता है, दूसरे शब्दो मे शुद्ध अवस्था की ओर निरन्तर प्रगति ही "दशा" है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रत्येक अन्तकृत् साधक निरन्तर शुद्धावस्था की ओर गमन करता है अत इस ग्रन्थ मे अन्तकृत् साधको की दशा के वर्णन की ही प्रधानता होने से "अन्तकृत् दशा" कहा गया है।

(२) जिस आगम मे दश अध्ययन हो उस आगम को भी 'दशा' कहा जाता है।

प्रस्तुत आगम मे आठ वर्ग हैं। इनमे से प्रथम (आदि) चतुर्थ, पचम (मध्य) और आठवे वर्ग (अन्त) मे दस-दस अध्ययन है। इस प्रकार आदि, मध्य और अन्त मे दस-दस अध्ययन होने के कारण भी प्रस्तुत आगम को "अन्तकृत् दशा" नाम दिया गया है।

अंग —

तीर्थङ्करो ने जो उपदेश दिए हैं उनके दो अग थे—शब्द और अर्थ। तीर्थंकरो के पट्टशिष्य उन दो अगो मे से एक अग अर्थ को ही ग्रहण कर पाते हैं, अत भगवान् की वाणी का अग होने से आगमो को अग भी कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी भगवान् महावीर की वाणी का अर्थत. अग है, अत. इसके नाम का तीसरा भाग "अग" है।

सूत्र:—

क्योंकि समस्त जैनागम शब्द की अपेक्षा अल्प और अर्थ की अपेक्षा विशाल हैं, अत समस्त आगमों को सूत्र कहा गया है। इसीलिये प्रस्तुत आगम के नामकरण का चौथा अवयव 'सूत्र' मे रूप के रखा गया है।

इस प्रकार चार अवयवो को मिलाकर प्रस्तुत शास्त्र का नामकरण 'अन्तकृद्दशागसूत्र' किया गया है।

इस के नाम की सार्थकता स्वय इसके अध्ययन से विदित हो जाती है। यद्यपि मोक्षगामी पुरुषो की गौरव गाथा तो अन्य शास्त्रो मे भी प्राप्त होती है, पर इस शास्त्र मे केवल उन्ही सत सतियो के जीवन-परिचय है जिन्होने इसी भव से जन्म-जरा-मरण रूप भवचक्र का अत कर दिया अथवा अष्ट विध कर्मों का अन्त कर जो सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गए। सदा के लिए ससार लीला का अन्त करने वाले 'अतगड' जीवो की साधना-दशा का वर्णन करने से ही इसका 'अत-गडदसाओ' नाम रक्खा गया है।

इसके पठन, पाठन और मनन से हर भव्य जीव को अन्तक्रिया की प्रेरणा मिलती है, अत यह परम कल्याणकारी ग्रन्थ है। उपासकदशा मे एक भव से मोक्ष जाने वाले श्रमणोपासको का वर्णन है, किन्तु इस आठवें अग 'अन्तकृत् दशा' मे उसी जन्म मे सिद्ध गति प्राप्त करने वाले उत्तम श्रमणो का वर्णन है। अत परम-मगलमय है और इसीलिये लोकजीवन मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

अन्तकृद्दशाग सूत्र मे इस प्रकार के भव्य जीवो की दशा का वर्णन किया गया है जो अन्तिम श्वासोच्छ्वास मे निर्वाण-पद प्राप्त कर सके हैं, किन्तु आयुष्य-कर्म के शेष न होने से केवलज्ञान और केवल-दर्शन से देखे हुए पदार्थों को प्रदर्शित नही कर सके, इसी कारण से उन्हे 'अन्तकृत् केवली' कहा गया है।

परिचयः—

समवायाग मे इस आगम के दस अध्ययन और सात वर्ग कहे हैं।[1] नन्दीसूत्र मे आठ वर्गो का उल्लेख हैं किन्तु दश अध्ययनो का उल्लेख नही है।[2] आचार्य अभयदेव ने समवायाग वृत्ति मे दोनो आगमो के कथन मे सामजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग मे दश अध्ययन हैं। इस दृष्टि से समवायाग सूत्र मे दश अध्ययन और अन्य वर्गो की दृष्टि मे सात वर्ग कहे हैं। नन्दीसूत्र मे अध्ययनो का उल्लेख नही किया है, केवल आठ वर्ग बतलाये है।[3] परन्तु इस सामजस्य का अन्त तक निर्वाह किस प्रकार हो सकता है? क्योकि समवायाग मे अन्तकृद्दशा के शिक्षाकाल (उद्देशनकाल) दश कहे गये हैं जबकि नन्दीसूत्र मे उनकी सख्या आठ बताई गई है। समवायाग की वृत्ति मे आचार्य अभयदेव ने लिखा है कि उद्देशनकालो के अन्तर का अभिप्राय हमे ज्ञात नही है।[4]

आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नदीचूर्णि मे[5] और आचार्य हरिभद्र ने नदिवृत्ति मे[6] लिखा है कि प्रथम वर्ग के दश अध्ययन होने से प्रस्तुत आगम का नाम अतगडदसाओ है। चूर्णि मे दशा का अर्थ अवस्था भी किया है।[7] समवायाग मे दश अध्ययनो का निर्देश है किन्तु उनके नाम का निर्देश नही है। जैसे नमि, मातग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमालि, भगाली, किकष, चिल्वक्क और फाल अवडपुत्र।[8]

तत्वार्थसूत्र के राजवार्तिक मे एव अगपण्णत्ती मे कुछ पाठभेद के साथ दश नाम प्राप्त होते है। जैसे नमि, मातग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, यमलोक, वलीक, कवल, पाल और अवष्ठपुत्र।[9] उसमे लिखा है कि प्रस्तुत आगम मे प्रत्येक तीर्थंकरो के समय मे होने वाले दश-दश अन्तकृत् केवलियो का वर्णन है।[10]

जयधवला मे भी इस बात का समर्थन किया है।[11] नदीसूत्र मे न तो दश अध्ययनो का उल्लेख है और न उनके नामो का ही निर्देश है। समवायाग और तत्त्वार्थवार्तिक मे जिन नामो का निर्देश हुआ है वह वर्तमान

१ दस अज्झयणा सत्त वग्गा। —समवायाग प्रकीर्णक, समवाय सूत्र ९६

२ अट्ठ वग्गा—नदीसूत्र ८८

३ दस अज्झयण त्ति प्रथमवर्गापेक्षयैव घटन्ते, नन्द्या तथैव व्याख्याततत्वात् यच्चेह पठ्यते 'सत्त वग्ग' त्ति तत् प्रथमवर्गादन्यवर्गापेक्षया यतोऽष्टौ वर्गा, नन्द्यामपि तथा पठितत्वात् —समवायागवृत्ति पत्र ११२

४ ततो भणित-अट्ठ उद्देसणकाला इत्यादि, इह च दश उद्देशनकाला अधीयन्ते इति नास्याभिप्राय-मवगच्छाम। —समवायागवृत्ति, पत्र ११२

५ पढमवग्गे दश अज्झयणा त्ति तस्सक्खतो अतगडदस त्ति—नदिसूत्र चूर्णिसहित पृ ६८

६ प्रथमवर्गे दशाध्ययनाति इति तत्सख्यया अन्तकृद्दशा इति—नदिसूत्रवृत्तिसहित, पृ ८३

७ दसत्ति-अवत्था—नदीसूत्र, चूर्णिसहित पृ ६८.

८ ठाण, १०/११३

९ तत्वार्थवार्तिक १/२०, पृ ७३।

१० (क) इत्येते दश वर्धमानतीर्थंकरतीर्थे, एवमृषभादीना त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये च दश दशानगारा दश दश दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृत दश अस्या वर्ण्यन्ते इति अन्तकृद्दशा। —तत्त्वार्थवार्तिक १।२०, पृ ७३

(ख) अगपण्णत्ती, ५१

११ अतयडदसा णाम अग चउव्विहोवसग्गे दारुणे सहिऊण पाडिहेर लद्धूण णिव्वाण गदे सुदसणादि दस-दस साहू तित्थ पडिवण्णेदि। —कसायपाहुड, भा १, पृ १३०

अन्तकृद्दशाग मे नही है। नदीसूत्र मे वर्तमान मे उपलब्ध प्रस्तुत आगम के स्वरूप का वर्णन है। इस समय अन्तकृतद्दशाग मे आठ वर्ग है और प्रथम वर्ग के दश अध्ययन है। किन्तु इनके नाम स्थानाग, राजवार्त्तिक व अगपण्णत्ती से पृथक् हैं। जैसे—गौतम, समुद्र, सागर, गभीर, स्तिमित, अचल, कापित्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु। स्थानागवृत्ति मे आचार्य अभयदेव ने इसे वाचनान्तर लिखा है।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि वह समवायाग मे वर्णित वाचना से पृथक् है।

प्रस्तुत आगम मे एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, ८ उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल और परिमित वाचनाएँ हैं। इसमे अनुयोगद्वार, वेढा, श्लोक, निर्युक्तियाँ, सग्रहणियाँ एव प्रतिपत्तियाँ सख्यात सख्यात है। इसमे पद सख्यात और अक्षर सख्यात हजार बताये गये है। वर्तमान मे प्रस्तुत अग ९०० श्लोकपरिमाण हैं।

इसके आठ वर्ग है और एक ही श्रुतस्कन्ध है। प्रत्येक वर्ग के पृथक्-पृथक् अध्ययन हैं। जैसे कि—

पहले और दूसरे वर्ग मे दस-दस अध्ययन रखे गए है, तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन हैं, चतुर्थ और पचम वर्ग के भी दस-दस अध्ययन हैं, छठे वर्ग के सोलह अध्ययन हैं, सातवे वर्ग के तेरह अध्ययन और आठवे वर्ग के दस अध्ययन है, किन्तु प्रत्येक अध्ययन के उपोद्घात मे इस विषय को स्पष्ट किया गया है कि 'अमुक अध्ययन का तो अर्थ श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार से वर्णन किया है, तो इस अध्ययन का क्या अर्थ बताया है?' इस प्रकार की शका के समाधान मे श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामी के प्रति प्रस्तुत अध्ययन का अर्थ वर्णन करने लग जाते हैं, अत यह शास्त्र सर्वज्ञ-प्रणीत होने से सर्वथा मान्य है।

यद्यपि अन्तकृद्दशाग सूत्र मे भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर स्वामी के ही समय मे होनेवाले जीवो की सक्षिप्त जीवनचर्या का दिग्दर्शन कराया गया है, तथापि अन्य तीर्थंकरो के शासन मे होनेवाले अन्तकृत् केवलियो की भी जीवन-चर्या इसी प्रकार जान लेनी चाहिए। कारण कि—द्वादशागीवाणी शब्द से पौरुषेय है और अर्थ से अपौरुषेय है।

यह शास्त्र भव्य प्राणियो के लिये मोक्ष-पथ का प्रदर्शक है, अत इसका प्रत्येक अध्ययन मनन करने योग्य है। यद्यपि काल-दोष से प्रस्तुत शास्त्र श्लोक-सख्या मे तथा पद-सख्या मे अल्प सा रहा गया है, तथापि इसका प्रत्येक पद अनेक अर्थों का प्रदर्शक है, यह विषय अनुभव से ही गम्य हो सकेगा, विधिपूर्वक किया हुआ इसका अध्ययन निर्वाण-पथ का अवश्य प्रदर्शक होगा।

गणधर श्रीसुधर्मा स्वामीजी की वाचना का यह आठवा अग है। भव्य जीवो के बोध के लिये ही इसमे कतिपय जीवो की सक्षिप्त जीवन-चर्या का दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रस्तुत आगम की भाषा :—

मागधो मगध देश की बोली थी, उसे साहित्यिक रूप देने के लिये उसमे कुछ विशेष शब्दो का एव प्रान्तीय बोलियो का मिश्रण भी हो गया, अत आगम-भाषा को अर्धमागधी कहा जाने लगा। आगमकार कहते हैं कि अर्धमागधी तीर्थंकरो, गणधरो और देवो की प्रिय भाषा है, हो भी क्यो न? लोक-भाषा की सर्वप्रियता सर्वमान्य ही तो है। लोकोपकार के लिये लोकभाषा का प्रयोग अनिवार्य भी तो है। प्रस्तुत आगम की भाषा भी अर्धमागधी है।

---

१ ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयाम।

—स्थानागवृत्ति, पत्र ४८३

शैली

प्रस्तुत आगम की रचना कथात्मक शैली मे की गई है, इस शैली को प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली मे 'कथानुयोग' कहा जाता है। इस शैली मे "तेण कालेण तेण समएण" इस शब्दावली से कथा का आरम्भ किया जाता है। आगमो मे ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशाग, अनुत्तरौपपातिक, विपाकसूत्र और अन्तकृद्दशाग सूत्र का इसी शैली मे निर्माण किया गया है।

अर्धमागधी भाषा मे शब्दो के दो रूप उपलब्ध होते है—परिवसति, परिवसइ, रायवण्णतो, रायवण्णओ, एगवीसाते, एगवीसाए। इस आगम मे प्राय स्वरान्तरूप ग्रहण करने की शैली को अपनाया गया है।

आगमो मे प्राय सक्षिप्तीकरण की शैली को अपनाते हुए शब्दान्त मे विन्दुयोजना द्वारा अथवा अक-योजना द्वारा अवशिष्ट पाठ को व्यक्त करने की प्राचीन शैली प्रचलित है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशाग सूत्र' मे इसी शैली को अपनाया गया था, किन्तु श्री अमोलक ऋषिजी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित 'अन्तकृद्दशाग सूत्र' मे पूर्णपाठ देने की शैली को स्वीकार किया गया है। इस शैली की वाचना मे अत्यन्त सुविधा रहती है। इसी सुविधा को लक्ष्य मे रखते हुए मूल पाठ को पूर्णरूपेण न्यस्त करने की शैली हमे भी अपनानी पडी है।

इस सूत्र मे यथास्थान अनेक तपो का वर्णन प्राप्त होता है, अष्टम वर्ग मे विशेष रूप से तपो के स्वरूप एव पद्धतियो का विस्तृत विवेचन किया गया है। इन तपो के अनेकविध स्थापनायन्त्र प्राप्त होते हैं। हमने उन समस्त स्थापना-यन्त्रो को कलात्मक रूप देकर आकर्षक बनाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की वर्णनशैली अत्यत व्यवस्थित है। इसमे प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यतरायतन, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक एव परलोक की ऋद्धि, पाणिग्रहण और प्रीतिदान, भोगो का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, सलेखना और अन्त क्रिया का उल्लेख किया गया है।

'अन्तगडदशा' मे वर्णित साधक पात्रो के परिचय से प्रकट होता है कि श्रमण भगवान् महावीर के शासन मे विभिन्न जाति एव श्रेणी के व्यक्तियो को साधना मे समान अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ वीसियो राजपुत्र-राजरानी और गाथापति साधनापथ मे चरण से चरण मिला कर चल रहे थे, दूसरी ओर वही कतिपय उपेक्षित वर्गवाले क्षुद्र जातीय भी ससम्मान इस साधनाक्षेत्र मे आकर समान रूप से आगे वढ रहे थे। वय की दृष्टि से अतिमुक्त जैसे वाल मुनि और गजसुकुमार जैसे राज-प्रासाद के दुलारे गिने जाने वाले भी इस क्षेत्र मे उतर कर सिद्धि प्राप्त कर गये।

अन्तगडदसा सूत्र के मनन से ज्ञात होता है कि गौतम आदि, १८ मुनियो के समान १२ भिक्षु प्रतिमा एव गुणरत्न-सवत्सर तप की साधना से भी साधक कर्म-क्षय कर मुक्ति लेता है। प्राप्त कर अनीकसेनादि मुनि १४ पूर्व के ज्ञान मे रमण करते हुए सामान्य वेले २ की तपस्या से कर्म क्षय कर मुक्ति के अधिकारी वन गए। अर्जुनमाली ने उपशम भाव-क्षमा की प्रधानता से केवल छह मास वेले २ की तपस्या कर सिद्धि प्राप्त कर ली। दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार ने ज्ञान-पूर्वक गुण-रत्न तप की साधना से सिद्धि मिलाई और गजसुकुमाल ने विना शास्त्र पढे और लम्वे समय तक साधना एव तपस्या किए विना ही केवल एक शुद्ध ध्यान के वल से ही सिद्धि प्राप्त करली। इसके प्रकट होता है कि ध्यान भी एक वडा तप है। काली आदि रानियो ने सयम लेकर कठोर साधना की और लम्वे समय से सिद्धि मिलाई। इस प्रकार कोई सामान्य तप से, कोई कठोर तप से, कोई क्षमा की प्रधानता से तो कोई अन्य केवल आत्मध्यान की अग्नि मे कर्मों को झोक कर सिद्धि के अधिकारी वन गए।

अन्तकृत्-केवली : एक विहगम दृष्टि .—

अध्ययन :—

इस शास्त्र के तीसरे वर्ग मे तेरह अध्ययन हैं। गजसुकुमार के अतिरिक्त शेष बारह अध्ययनो मे जितने चरितनायक हैं, वे सब चौदह पूर्वो के ज्ञानी होकर कैवल्य को पानेवाले हुए है। चौथे वर्ग के सभी चरितनायक द्वादशागी वाणी का अध्ययन करके अन्तकृत् हुए हैं। गजसुकुमार अनगार किसी भी शास्त्र का अध्ययन किए बिना ही अतकृत् हुए हैं। शेष सभी ग्यारह अगो का अध्ययन करके अतकृत् हुए।

दीक्षा :—

दीर्घकालिक दीक्षा पर्यायवाले एक अतिमुक्त कुमार हुए हैं, जो कि अन्य चरितनायको की अपेक्षा अधिक काल तक सयम पाल कर अतकृत् हुए हैं।

अतिमुक्तकुमार एक ऐसे चरितनायक हुए है जिन्होने यौवनकाल से पूर्व ही प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

गजसुकुमार एक ऐसे चरित-नायक है जो प्रव्रज्या-ग्रहण के अनन्तर कुछ घटो मे ही कर्म-क्षय कर अतकृत् हुए हैं। अन्य कोई भी साधक इतनी स्वल्पायु मे अतकृत् नही हो पाया।

छह मास की दीक्षा पर्याय और पद्रह दिनो का सथारा अर्जुन अनगार को प्राप्त हुआ, शेष सभी चरित-नायक वर्षों की दीक्षा पर्याय और मासिक सथारेवाले हुए हैं।

जीवन :—

दो चरितनायक आबाल ब्रह्मचारी हुए हैं, शेष सभी चरितनायक भोग से निवृत्ति पाकर योगवृत्ति ग्रहण करके अतकृत् हुए हैं।

दो नरेश अन्तकृत् हुए हैं, शेष सभी राजकुमार युवराज तथा महारानियाँ अन्तकृत् हुए है।

गजसुकुमार और अर्जुन अनगार को परिषह सहने का काम पडा, अन्य अनगारो को नही।

एक अर्जुन अनगार के अतिरिक्त शेष सभी चरित-नायक राजकुल और श्रेष्ठी कुल मे उत्पन्न अन्तकृत हुए हैं।

स्थान :—

अनगारो मे एक गजसुकुमार का निर्वाण श्मशान भूमि मे हुआ है, शेष सभी अनगार शत्रुजय और विपुलगिरि पर सथारे के साथ निर्वाण प्राप्त करते है।

सभी साध्विया उपाश्रय मे ही अन्तकृत् हुईं।

नर-नारी :—

पाचवें, सातवें और आठवें अध्ययन मे तेतीस राजरानियो के जीवन-चरित है जो कि अतकृत् हुए हैं।

शासन :—

अरिष्टनेमि भगवान् के शासन मे तेतीस अनगार अन्तकृत् केवली हुए और महावीर भगवान् के शासन मे सोलह अनगार अन्तकृत् केवली हुए।

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन मे दस महारानियाँ दीक्षित होकर अतकृत् हुईं और भगवान् महावीर के शासन मे तेतीस महारानियाँ दीक्षित होकर अतकृत् हुईं।

भगवान् अरिष्टनेमि के शासन मे यक्षिणी नाम की साध्वी प्रवर्तिनी हुई और भगवान् महावीर के शासन मे आर्या चन्दनबाला प्रवर्तिनी साध्वी थी।

शिक्षाएं :—

इस सूत्र के अध्ययन से मुमुक्षुजनो को ऐसी अनेक अमूल्य शिक्षाओ का लाभ हो सकता है जिनके द्वारा उनका जीवन आदर्श रूप हो जाता है। जैसे—

१ धैर्य और दृढ विश्वास गजसुकुमार की तरह होना चाहिए।
२ सहनशक्ति अर्जुन-माली के समान होनी चाहिए।
३ श्रावक लोगो को सुदर्शन श्रमणोपासक का अनुकरण करना चाहिए जिसका आत्मतेज देव भी सहन नही कर सका।
४ धर्मविश्वास कृष्ण वासुदेव की भाति होना चाहिए।
५ प्रश्नोत्तर की शैली अतिमुक्त कुमार के समान होनी चाहिए।
६ त्यागवृत्ति कृष्ण वासुदेव की आठ अग्रमहिषियो की भाति होनी चाहिए।
७ तपश्चर्या महाराजा श्रेणिक की दस देवियो की भाति होनी चाहिए जो आठवे वर्ग मे सविस्तार वर्णित है। इस प्रकार यह शास्त्र अनेक शिक्षाओ से अलकृत हो रहा है। जो भव्य प्राणी उक्त शिक्षाओ को धारण कर लेता है उसका मनुष्य-जीवन सार्थक और जनता मे आदर्श रूप बन जाता है।

उपकार :—

यद्यपि इस शास्त्र के समुचित सम्पादन मे मै असमर्थ थी तथापि पूज्य गुरुदेव अनुयोगप्रवर्तक श्री कन्हैयालालजी (कमलमुनिजी) म सा. की पावन कृपा से, शास्त्र विशारद माणेक कुवरजी म सा के शुभाशीष से, प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल की आग्रहपूरित प्रेरणा से, परम पूज्य आगम-प्रभाकर आत्मारामजी म सा. की श्रुतसहायता मे और भगिनी साध्वी बा ब्र मुक्तिप्रभाजी म सा, बा ब्र दर्शनप्रभाजी म सा और बा ब्र अनुपमाजी के परम सहयोग से श्रमणसघ के युवाचार्य विद्वद्रत्न मुनि श्री मधुकरजी म. सा द्वारा आयोजित इस पवित्र अनुष्ठान मे किचित् योगदान करने मे समर्थ हो गई।

अत इन सर्व महाविभूतियो और महानुभावो की महती कृपा, भावना प्रेरणा से पावन बनी हुई मैं मेरे और प्रिय पाठको के ससार का अत करनेवाली पावनी दशा की अभ्यर्थना के साथ विराम लेती हूँ और प्रमादवश बुद्धिदोष या अज्ञानवश हुई त्रुटियो हेतु श्रुतदेवताओ की और सर्व श्रुतधरो की क्षमा चाहती हूँ।

अर्हद्वत्सला
साध्वी दिव्यप्रभा

१९८०
जैन उपाश्रय
जमनादास मेहता मार्ग, तीनबत्ती
वालकेश्वर—६

प्रस्तावना

अन्तकृद्दशा : एक अध्ययन

अतीत के सुनहरे इतिहास के पृष्ठो का जब हम गहराई से अनुशीलन-परिशीलन करते है तो यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक-काल से ही भारतीय तत्त्वचिन्तन दो धाराओ मे प्रवाहित है, जिसे हम ब्राह्मण सस्कृति और श्रमण सस्कृति के नाम से जानते-पहचानते है। दोनो ही सस्कृतियो का उद्गमस्थल भारत ही रहा है। यहा की पावन-पुण्य धरा पर दोनो ही सस्कृतिया फलती और फूलती रही हैं। दोनो ही सस्कृतियाँ साथ मे रही इसलिये एक सस्कृति की विचारधारा का दूसरी सस्कृति पर प्रभाव पडना स्वाभाविक है, सहज है। दोनो ही सस्कृतियो की मौलिक विचारधाराओ मे अनेक समानताए होने पर भी दोनो मे भिन्नताए भी हैं। ब्राह्मण सस्कृति के मूलभूत चिन्तन का स्रोत 'वेद' है। जैन परम्परा के चिन्तन का आद्य स्रोत "आगम" है। वेद 'श्रुति' के नाम से विश्रुत है तो आगम "श्रुत" के नाम से। श्रुति और श्रुत शब्द मे अर्थ की दृष्टि से अत्यधिक साम्य है। दोनो का सम्बन्ध "श्रवण" से है। जो सुनने मे आया वह श्रुत हैं।[1] और वही भाववाचक श्रवण श्रुति हैं। केवल शब्द श्रवण करना ही श्रुति और श्रुत का अभीष्ट अर्थ नही है। उसका तात्पर्यार्थ है—जो वास्तविक हो, प्रमाणभूत हो, जन-जन के मगल को उदात्त विचारधारा को लिये हुए हो, जो आप्त पुरुषो व सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग महापुरुषो के द्वारा कथित हो वह आगम है, श्रुत है, श्रुति है। साधारण-व्यक्ति जो राग-द्वेष से सग्रस्त है, उसके वचन श्रुत और श्रुति की कोटि मे नही आते हैं। आचार्य वादिदेव ने आगम की परिभाषा करते हुए लिखा है—आप्त वचनो से आविर्भूत होने वाला अर्थ-सवेदन ही "आगम" है।[2]

---

१ क श्रूयते स्मेति श्रुतम्। —तत्त्वार्थराजवार्तिक।

ख श्रूयते आत्मना तदिति श्रुत शब्द। —विशेषावश्यकभाष्य मलधारीयावृत्ति।

२ आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसवेदनमागम —प्रमाणनयतत्त्वालोक ४।१—२।

जैन परम्परा मे अर्हत् के द्वारा कथित, गणधर, प्रत्येकबुद्ध या स्थविर द्वारा ग्रथित वाङ्मय को प्रमाणभूत माना है।[3] इसलिए आगम वाङ्मय के कर्तृत्व का श्रेय महनीय महर्षियो को है। अङ्ग साहित्य के उद्गाता स्वय तीर्थंकर है और सूत्रबद्ध रचना करने वाले प्रज्ञापुरुप गणधर है। अगबाह्य साहित्य की रचना के मूल आधार तीर्थंकर हैं और सूत्रित करने वाले है चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी, और प्रत्येकबुद्ध आचार्य।[4] आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार मे गणधरकथित, प्रत्येकबुद्ध कथित और अभिन्नदशपूर्वीकथित सूत्रो को प्रमाणभूत माना है।[5]

इस दृष्टि से हम इस सत्य तक पहुचते है कि वर्तमान उपलब्ध अगप्रविष्ट साहित्य के उद्गाता स्वय तीर्थंकर भगवान् महावीर हैं और रचयिता हैं, उनके अनन्तर शिष्य गणधर सुधर्मा। अगबाह्य साहित्य मे कर्तृत्व की दृष्टि से कितने ही आगम स्थविरो के द्वारा रचित है और कितने ही आगम द्वादशागो से नियूंढ यानी उद्धृत हैं।

वर्तमान मे जो अगसाहित्य उपलब्ध है वह गणधर सुधर्मा की रचना है, जो भगवान् महावीर के समकालीन है। इसलिये वर्तमान अग-साहित्य का रचनाकाल ई पू छट्ठी शताब्दी सिद्ध होता है। अग बाह्य साहित्य की रचना एक व्यक्ति की नही है, अत उन सभी का एक काल नही हो सकता। दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यभव ने की है तो प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता श्यामाचार्य है। छेदसूत्रो के रचयिता चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहु है तो नन्दीसूत्र के रचयिता देववाचक है। आधुनिक कुछ पाश्चात्य चिन्तक जैन आगमो का रचनाकाल देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण का काल मानते है, जिनका समय महावीर निर्वाण के पश्चात् ९८० अथवा ९९३वाँ वर्ष है। पर उन का यह मानना उचित नही है। देवर्द्धि गणि ने आगमो को लिपिबद्ध किया था, किन्तु आगम तो प्राचीन ही हैं। कितने ही विज्ञगण लेखन-काल को और रचना-काल को एक दूसरे मे मिला देते है और आगमो के लेखन-काल को आगमो का रचना-काल मान बैठते है!

पहले श्रुत साहित्य लिखा नही जाता था। लिखने का निपेध होने से वह कण्ठस्थ रूप मे ही चल रहा था।[6] चिरकाल तक वह कण्ठस्थ रहा जिससे श्रुतवचनो मे परिवर्तन होना स्वाभाविक था। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने तीव्र गति से ह्रास की ओर बहती हुयी श्रुत-स्रोतस्विनी को पुस्तकारूढ कर रोक दिया।[7] उन के

---

३ अर्हत्प्रोक्त गणधरदृब्ध प्रत्येकबुद्धदृब्ध च। स्थविरग्रथित च तथा प्रमाणभूत त्रिधासूत्रम्।

४ द्रोणसूरि, ओघनिर्यु॰ पृ ३

५ सुत्त गणधरकथिद, तहेव पत्तेयबुद्धकथिद च।
सुदकेवलिणा कथिद अभिण्णदशपुव्विकथिद च॥ मूलाचार ५,८०.

६ क दशवैकालिकसूत्रचूर्णि-पृष्ठ-२१
ख निशीथभाष्य—४००४
ग सूत्रकृताग-शीलाकाचार्य वृत्ति पत्र ३३६
घ स्थानाग, अभयदेव वृत्ति प्रारम्भ।

७ क. वलहिपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुहेण समणसघेण।
पुत्थइ आगमु लिहिओ नवसय असीआओ वीराओ॥
अर्थात् ईस्वी ४५३, मतान्तर से ई ४६६, एक प्राचीन गाथा।
ख कल्पसूत्र—देवेन्द्र मुनि शास्त्री, महावीर अधिकार।

पश्चात् कुछ अपवादो को छोडकर श्रुत साहित्य मे परिवर्तन नही हुआ। वर्तमान मे जो आगमसाहित्य उपलब्ध है, उसके सरक्षण का श्रेय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को है। यह साधिकार कहा जा सकता है कि वर्तमान मे उपलब्ध आगम-साहित्य की मौलिकता असदिग्ध है। कुछ स्थलो पर भले ही पाठ प्रक्षिप्त व परिवर्तित हुए हो, किन्तु उससे आगमो की प्रामाणिकता मे कोई अन्तर नही आता।

अन्तकृद्दशा यह आठवा अग सूत्र है। प्रस्तुत अग मे जन्म मरण की परम्परा का अन्त करने वाले विशिष्ट पवित्र-चारित्रात्माओ का वर्णन है और उसके दश अध्ययन होने से इस का नाम अन्तकृद्दशा है। समवायाग सूत्र मे प्रस्तुत आगम के दश अध्ययन और सात वर्ग बताये है।[8] आचार्य देववाचक ने नन्दीसूत्र मे आठ वर्गों का उल्लेख किया है पर दश अध्ययनो का नही।[9] आचार्य अभयदेव ने समवायाग वृत्ति मे दोनो ही उपर्युक्त आगमो के कथन मे सामजस्य बिठाने का प्रयास करते हुए लिखा है कि प्रथम वर्ग मे दश अध्ययन हैं, इस दृष्टि से समवायाग सूत्र मे दश अध्ययन और अन्य वर्गो की अपेक्षा से सात वर्ग कहे हैं। नन्दीसूत्रकार ने अध्ययनो का कोई उल्लेख न कर केवल आठ वर्ग बताये हैं।[10] पर प्रश्न यह है कि प्रस्तुत सामजस्य का निर्वाह अन्त तक किस प्रकार हो सकता है? क्योकि समवायाग मे ही अन्तकृद्दशा के शिक्षाकाल (उद्देशनकाल) दश कहे हैं जबकि नन्दी सूत्र मे उनकी सख्या आठ बताई है। आचार्य अभयदेव ने स्वय यह स्वीकार किया है कि हमे उद्देशनकालो के अन्तर का अभिप्राय ज्ञात नही है।[11]

आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नन्दी चूर्णि मे[12] और आचार्य हरिभद्र ने नन्दीवृत्ति[13] मे लिखा है कि प्रथम वर्ग के दश अध्ययन होने से इस आगम का नाम 'अन्तगडदशाओ' है। चूर्णिकार ने दशा का अर्थ अवस्था किया है।[14] यह स्मरण रखना होगा कि समवायाग मे दश अध्ययनो का निर्देश तो है पर उन अध्ययनो के नामो का सकेत नही है। स्थानाङ्ग मे दश अध्ययनो के नाम इस प्रकार बताये है—नमि, मातग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, जमालि, भगाली, किंकष, चिल्वक्क, और फाल अवडपुत्र।[15]

आचार्य अकलक ने राजवार्तिक[16] मे और आचार्य शुभचन्द्र ने अगपण्णत्ति[17] ग्रन्थ मे कुछ पाठभेद के साथ दश नाम दिये हैं। वे इस प्रकार हैं— नमि, मातग, सोमिल, रामगुप्त, सुदर्शन, यमलोक, वलीक, कवल, पाल और अवष्टपुत्र। इसमे यह भी लिखा है कि प्रस्तुत आगम मे हर एक तीर्थंकरो के समय मे होने वाले दश-दश अन्तकृत् केवलियो का वर्णन है। इस कथन का समर्थन जयधवलाकार वीरसेन और जयसेन ने भी किया है।[18]

---

८ समवायाग प्रकीर्णक समवाय ९६

९, नन्दी सूत्र ८८

१० समवायागवृत्ति पत्र ११२

११, समवायागवृत्ति पत्र ११२

१२ नन्दीसूत्र चूर्णिसहित पत्र ६८

१३ नन्दी सूत्र वृत्ति सहित पत्र ८३

१४ नन्दी सूत्र चूर्णिसहित पृ ६८

१५ स्थानाङ्ग १० । ११३

१६ तत्त्वार्थराजवार्तिक १ । २० पृ ७३.

१७ अगपण्णत्ती ५१

१८ कसायपाहुड, भाग १, पृ १३०.

नन्दीसूत्र मे न तो दश अध्ययनो का उल्लेख है और न उनके नामो का ही निर्देश है। समवायाग और तत्त्वार्थ-राजवार्तिक मे जिन अध्ययनो के नामो का निर्देश है वे अध्ययन वर्तमान मे उपलब्ध अन्तकृद्दशाग मे नही है। नन्दीसूत्र मे वही वर्णन है जो वर्तमान मे अतकृद्दशा मे उपलब्ध है। इससे यह सिद्ध है कि वर्तमान मे अन्तकृद्दशा का जो रूप प्राप्त है वह आचार्य देववाचक के समय से पूर्व का है। वर्तमान मे अन्तकृद्दशा मे आठ वर्ग हैं और प्रथम वर्ग के दश अध्ययन है किन्तु जो नाम स्थानाङ्ग तत्त्वार्थराजवार्तिक व अगपण्णत्ति मे आये है उनसे पृथक् है। जैसे गौतम, समुद्र, सागर, गभीर, स्तिमित, अचल, कापिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु। आचार्य अभयदेव ने स्थानाङ्ग वृत्ति मे इसे वाचनान्तर कहा है।[१९] इससे यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि वर्तमान मे उपलब्ध अन्तकृद्दशा समवायाग मे वर्णित वाचना से अलग है। कितने ही विज्ञो ने यह भी कल्पना की है कि पहले इस आगम मे उपासकदशा की तरह दश ही अध्ययन होगे, जिस तरह उपासकदशा मे दश श्रमणोपासको का वर्णन है इसी तरह प्रस्तुत आगम मे भी दश अर्हंतो की कथाए आई होगी।

अन्तकृद्दशा मे एक श्रुतस्कन्ध, आठ वर्ग, ९० अध्ययन, आठ उद्देशनकाल, आठ समुद्देशन काल और परिमित वाचनाए हैं। इस मे अनुयोगद्वार, वेढा, श्लोक, निर्युक्तिया, सग्रहणिया एव प्रतिपत्तिया सख्यात, सख्यात हैं। इस मे पद सख्यात और अक्षर सख्यात हजार बताये गये है। वर्तमान मे उपलब्ध प्रस्तुत आगम मे ९०० श्लोक हैं, आठ वर्ग है। उन मे क्रमश दश, आठ, तेरह, दश, दश, सोलह, तेरह और दश अध्ययन हैं।

प्रथम दो वर्गों मे गौतम आदि वृष्णिकुल के अठारह राजकुमारो की तपोमय साधना का उत्कृष्ट वर्णन है। उन मे प्रथम दश राजकुमारो की दीक्षापर्याय बारह-बारह वर्ष की है, अवशेष आठ राजकुमारो की दीक्षापर्याय सोलह-सोलह वर्ष प्रतिपादित की गई है। ये सभी राजकुमार श्रमणधर्म ग्रहण कर गुण रत्न सवत्सर जैसे उग्र तप की आराधना करते हैं और जीवन की साध्यवेला मे एक मास की सलेखना कर मुक्ति को वरण करते हैं।

प्रथम वर्ग से लेकर पाचवें वर्ग तक मे श्रीकृष्ण वासुदेव का वर्णन आया है। श्रीकृष्ण वासुदेव जैन, बौद्ध और वैदिक तीनो ही परम्पराओ मे अत्यधिक चर्चित रहे हैं। वैदिक-परम्परा के ग्रन्थो मे वासुदेव, विष्णु, नारायण, गोविन्द प्रभृति उन के अनेक नाम प्रचलित हैं। श्रीकृष्ण वसुदेव के पुत्र थे। इसलिये वे वासुदेव कहलाये। महाभारत शान्तिपर्व मे कृष्ण को विष्णु का रूप बताया है,[२०] गीता मे श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं।[२१] महाभारतकार ने उन्हे नारायण मानकर स्तुति की है। वहा उन के दिव्य और भव्य मानवीय स्वरूप के दर्शन होते हैं।[२२] शतपथ, ब्राह्मण मे उन के नारायण नाम का उल्लेख हुआ है।[२३] तैत्तिरीयारण्यक मे उन्हे सर्वगुणसम्पन्न कहा है।[२४] महाभारत के नारायणीय उपाख्यान मे नारायण को सर्वेश्वर का रूप दिया है। मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को यह बताया है कि जनार्दन ही स्वय नारायण हैं। महाभारत मे अनेक स्थलो पर उनके नारायण रूप का निर्देश है।[२५] पद्मपुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवशपुराण

१९ ततो वाचनान्तरापेक्षाणीमानीति सम्भावयाम। —स्थानाङ्गवृत्ति पत्र ४८३
२० महाभारत—शान्तिपर्व, अ ४८
२१ श्रीमद्भगवद्गीता।
२२ महाभारत—अनुशासन पर्व, १४७।१९-२०
२३ शतपथब्राह्मण, १३।३।४
२४ तैत्तिरीयारण्यक, १०।११
२५ महाभारत—वनपर्व १६-४७, उद्योग पर्व ४९ १

और श्रीमद्भागवत मे विस्तार से श्रीकृष्ण का चरित्र आया है।

छान्दोग्य उपनिषद् मे कृष्ण को देवकी का पुत्र कहा है। वे घोर अङ्गिरस ऋषि[२६] के निकट अध्ययन करते है। श्रीमद्भागवत मे कृष्ण को परमब्रह्म बताया है।[२७] वे ज्ञान, शान्ति बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छह गुणो मे विशिष्ट हैं। उनके जीवन के विविध रूपो का चित्रण साहित्य मे हुआ है। वैदिक परम्परा के आचार्यों ने अपनी दृष्टि से श्रीकृष्ण के चरित्र को चित्रित किया है। जयदेव विद्यापति आदि ने कृष्ण के प्रेमी रूप को ग्रहण कर कृष्णभक्ति का प्रादुर्भाव किया। सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो ने कृष्ण की बाल-लीला और यौवन-लीला का विस्तार से विश्लेषण किया। रीतिकाल के कवियो के आराध्य देव श्रीकृष्ण रहे और उन्होंने गीतिकाए व मुक्तको के रूप मे पर्याप्त साहित्य का सृजन किया। आधुनिक युग मे भी वैदिक परम्परा के विज्ञो ने प्रिय-प्रवास, कृष्णावतार आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।[२८]

बौद्ध साहित्य के घटजातक[२९] मे श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन आया है। यद्यपि घटनाक्रम मे व नामो मे पर्याप्त अन्तर है, तथापि कृष्ण-कथा का हार्द एक सदृश है।

जैन परम्परा मे श्री कृष्ण सर्वगुणसम्पन्न, श्रेष्ठ, चरित्रनिष्ठ, अत्यन्त दयालु, शरणागतवत्सल, प्रगल्भ, धीर, विनयी, मातृभक्त, महान् वीर, धर्मात्मा, कर्तव्यपरायण, बुद्धिमान्, नीतिमान् और तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी वासुदेव हैं। समवायाग[३०] मे उनके तेजस्वी व्यक्तित्व का जो चित्रण है, वह अद्भुत है, वे त्रिखण्ड के अधिपति अर्धचक्री है। उन के शरीर पर एक सौ आठ प्रशस्त चिह्न थे। वे नरवृषभ और देवराज इन्द्र के सदृश थे, महान् योद्धा थे। उन्होने अपने जीवन मे तीन सौ साठ युद्ध किये, पर किसी भी युद्ध मे वे पराजित नही हुये। उन मे बीस लाख अष्टपदो की शक्ति थी।[३१] किन्तु उन्होंने अपनी शक्ति का कभी भी दुरुपयोग नही किया। वैदिक परम्परा की भाति जैन परम्परा ने वासुदेव श्रीकृष्ण को ईश्वर का अश या अवतार नही माना है। वे श्रेष्ठतम शासक थे। भौतिक दृष्टि से वे उस युग के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक थे। किन्तु निदानकृत होने से वे आध्यात्मिक दृष्टि मे चतुर्थ गुणस्थान से आगे विकास न कर सके। वे तीर्थंकर अरिष्टनेमि के परम भक्त थे। अरिष्टनेमि से श्रीकृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे तो आध्यात्मिक दृष्टि से अरिष्टनेमि ज्येष्ठ थे।[३२] (एक धर्मवीर थे तो दूसरे कर्मवीर थे, एक निवृत्तिप्रधान थे तो दूसरे प्रवृत्तिप्रधान थे) अत जब भी अरिष्टनेमि द्वारका मे पधारते तब श्रीकृष्ण उन की उपासना के लिये पहुँचते थे। अन्तकृद्दशा, समवायाङ्ग, ज्ञाताधर्मकथा, स्थानाङ्ग, निरयावलिका, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन, प्रभृति आगमो मे उन का यशस्वी व तेजस्वी रूप उजागर हुआ है। आगमो के व्याख्या-साहित्य मे निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका ग्रन्थो मे उन के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाए है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही परम्पराओ के मूर्धन्य मनीषियो ने कृष्ण के जीवन प्रसङ्गो को लेकर सौ से भी अधिक ग्रन्थो की रचनाए की है। भाषा की दृष्टि से वे रचनाए प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत पुरानी गुजराती, राजस्थानी व हिन्दी मे है।

---

२६ छान्दोग्योपनिषद् अ ३, खण्ड १७, श्लोक ६, गीताप्रेस गोरखपुर।

२७. श्रीमद्भागवत—दशम स्कन्ध, ८-४५, ३।१३।२४-२५

२८ देखिये—भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण—एक अनुशीलन पृ १७६ से १८६

२९ जातककथाए, चतुर्थ खण्ड ४५४ मे घटजातक-भदन्त आनन्द कौशल्यायन।

३० समवायाङ्ग १५८

३१ आवश्यकनिर्युक्ति ४१५

३२. अन्तकृद्दशा वर्ग १ से ३ तक।

प्रस्तुत आगम मे श्रीकृष्ण का इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व निहारा जा सकता है। वे तीन खण्ड के अधिपति होने पर भी माता-पिता के परमभक्त थे। माता देवकी की अभिलाषापूर्त्ति के लिये वे हरिणैगमेषी देव की आराधना करते हैं। भाई के प्रति भी उनका अत्यन्त स्नेह है। भगवान् अरिष्टनेमि के प्रति भी अत्यन्त निष्ठा है। जहा वे रणक्षेत्र मे असाधारण विक्रम का परिचय देकर रिपुमर्दन करते हैं, वज्र से भी कठोर प्रतीत होते हैं, वहा एक वृद्ध व्यक्ति को देखकर उनका हृदय अनुकम्पा से द्रवित हो जाता है और उसके सहयोग के लिये स्वय भी ईंट उठा लेते हैं। द्वारका विनाश की वात सुनकर वे सभी को यह प्रेरणा प्रदान करते हैं कि भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो। दीक्षितो के परिवार के पालन-पोषण आदि की व्यवस्था मैं करूगा। स्वय की महारानियाँ पुत्र-पुत्रियाँ और पौत्र जो भी प्रव्रज्या के लिये तैयार होते हैं, उन्हे वे सहर्ष अनुमति देते हैं। आवश्यकचूर्णि मे वर्णन है कि वे पूर्ण रूप से गुणानुरागी थे। कुत्ते के शरीर मे कुलवुलाते हुये कीडो की ओर दृष्टि न डाल कर उस के चमचमाते हुये दाँतो की प्रशसा की, जो उनके गुणानुराग का स्पष्ट प्रतीक है।

प्रस्तुत आगम के पाँच वर्ग तक भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित होने वाले साधको का उल्लेख है। भगवान् अरिष्टनेमि वाईसवें तीर्थंकर हैं। यद्यपि आधुनिक इतिहासकार उन्हे निश्चित तौर पर अभी तक ऐतिहासिक पुरुष नही मानते हैं, किन्तु उनकी ऐतिहासिकता असदिग्ध है। इतिहास इस स्वीकृति की ओर वढ रहा है। जव उन्ही के युग मे होने वाले श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष माना जाता है तो उन्हे भी ऐतिहासिक पुरुष मानने मे सकोच नही होना चाहिए।

जैन परम्परा मे ही नही, वैदिक परम्परा मे भी अरिष्टनेमि का उल्लेख अनेको स्थलो पर हुआ है। ऋग्वेद मे अरिष्टनेमि शब्द चार वार आया है।[३३] 'स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि[३४]' यहा पर अरिष्टनेमि शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिये आया है। इनके अतिरिक्त भी ऋग्वेद[३४], के अन्य स्थलो पर 'तार्क्ष्य अरिष्टनेमि' का वर्णन है। यजुर्वेद[३५] और सामवेद[३६] मे भी भगवान् अरिष्टनेमि को तार्क्ष्य अरिष्टनेमि लिखा है। महाभारत मे[३७] भी तार्क्ष्य शब्द का प्रयोग हुआ है। जो भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम होना चाहिये। उन्होंने राजा सगर को मोक्ष-मार्ग का जो उपदेश दिया, वह जैन धर्म के मोक्ष-मन्तव्यो से अत्यधिक मिलता-जुलता है।[३८] ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि सगर के समय मे वैदिक लोग मोक्ष मे विश्वास नही करते थे। अत यह उपदेश किसी श्रमण सस्कृति के ऋषि का ही होना चाहिये।

यजुर्वेद मे एक स्थान पर अरिष्टनेमि का वर्णन इस प्रकार है—अध्यात्म यज्ञ को प्रकट करने वाले, ससार के सभी भव्य जीवो को यथार्थ उपदेश देने वाले, जिनके उपदेश से जीवो की आत्मा वलवान् होती है, उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिये आहुति समर्पित करता हूँ।[३९]

---

३३ (क) ऋग्वेद १।१४।८९।६। (ख) ऋग्वेद १।२४।१८०।१०।
(ग) ऋग्वेद ३।४।५३।१७। (घ) ऋग्वेद १०।१२।१७८।१।

३४ ऋग्वेद—१।१४।८९।९। १।१।१६।, १।१२।१७८।१।

३५ यजुर्वेद २५।१९।

३६. सामवेद—३।९।

३७ महाभारत शान्ति पर्व—२८८।४।

३८ महाभारत शान्ति पर्व—२८८।५।६।

३९ वाजसनेयि माध्यदिन शुक्लयजुर्वेद, अध्याय ९ मत्र २५, सातवलेकर सस्करण (विक्रम १९८४)।

डाक्टर राधाकृष्णन् ने स्पष्ट शब्दों मे लिखा है कि यजुर्वेद मे ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीन तीर्थंकारो का उल्लेख पाया जाता है।[४०]

स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड मे एक वर्णन है—अपने जन्म के पिछले भाग मे वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव, श्यामवर्ण, अचेल तथा पद्मासन से स्थित थे। वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। यह नेमिनाथ इस घोर कलिकाल मे सब पापो का नाश करने वाले हैं। उनके दर्शन और स्पर्श से करोडो यज्ञो का फल प्राप्त होता है।[४१] प्रभासपुराण[४२] मे भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है। महाभारत[४३] के अनुशासन पर्व मे 'शूर शौरिर्जनेश्वर' पद आया है। विज्ञो ने 'शूर. शौरिर्जिनेश्वर' मानकर उनका अर्थ अरिष्टनेमि किया है।[४४]

लकावतार के तृतीय परिवर्तन मे तथागत बुद्ध के नामो की सूची दी गई है। उनमे एक नाम "अरिष्टनेमि" है।[४५] सम्भव है अहिंसा के दिव्य आलोक को जगमगाने के कारण अरिष्टनेमि अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे जिसके कारण उनका नाम बुद्ध की नाम-सूची मे भी आया है। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ राय चौधरी ने अपने वैष्णव परम्परा के प्राचीन इतिहास मे श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई लिखा है। कर्नल टॉड ने[४६] अरिष्टनेमि के सम्बन्ध मे लिखा है कि मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल मे चार बुद्ध मेधावी महापुरुष हुए हैं, उनमे एक आदिनाथ हैं, दूसरे नेमिनाथ है, नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियो के प्रथम ओडिन तथा चीनियो के प्रथम "फो" देवता था। प्रसिद्ध कोपकार डॉ नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्ववेत्ता डाक्टर फुहरर, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर प्राणनाथ विद्यालकार, प्रभृति अनेक-अनेक विद्वानो का स्पष्ट मन्तव्य है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष थे। उन्हे ऐतिहासिक पुरुष मानने मे कोई बाधा नही है।

छान्दोग्योपनिषद् मे भगवान् अरिष्टनेमि का नाम "घोर आंगिरस ऋषि" आया है, जिन्होने श्रीकृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। धर्मानन्द कौशाम्बी का मानना है कि आगिरस भगवान् अरिष्टनेमि का ही नाम था।[४७] आगिरस ऋषि ने श्रीकृष्ण से कहा—श्रीकृष्ण जब मानव का अन्त समय सन्निकट आये, उस समय उसको तीन बातों का स्मरण करना चाहिये—

१ त्व अक्षतमसि—तू अविनश्वर है।
२ त्व अच्युतमसि—तू एक रस मे रहने वाला है।
३ त्व प्राणसशितमसि—तू प्राणियो का जीवनदाता है।[४८]

---

४० Indian Philosophy, Vol I P 287.
४१ स्कन्धपुराण प्रभास खण्ड
४२ प्रभास पुराण ४९।५०।
४३. महाभारत अनुशासन पर्व अ १४९, श्लो ५०, ८२
४४ मोक्षमार्ग प्रकाश, पण्डित टोडरमल।
४५. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्रदेव, पृ. १६२
४६ अन्नल्स आफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पत्रिका, जिल्द २३, पृ १२२।
४७ भारतीय सस्कृति और अहिंसा—पृ ५७।
४८. तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः, कृष्णाय देवकीपुत्रायो क्त्वोवाचाऽपिपासा एव स बभूव, सोऽन्त वेलायामेतत्त्रय प्रतिपद्येताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणससीति। —छान्दोग्योपनिषद् प्र ३, खण्ड १८.

प्रस्तुत उपदेश को श्रवण कर श्रीकृष्ण अपिपास हो गये। वे अपने आपको धन्य अनुभव करने लगे। प्रस्तुत कथन की तुलना अन्तकृद्दशा मे आये हुए भगवान् अरिष्टनेमि के इस कथन से कर सकते है कि जब भगवान् के मुह से द्वारका का विनाश और जरत्कुमार के हाथ से स्वय अपनी मृत्यु की बात सुनकर श्रीकृष्ण का मुख-कमल मुर्भा जाता है, तब भगवान् कहते हैं—श्रीकृष्ण ! तुम चिन्ता न करो। आगामी भव मे तुम अमम नामक तीर्थंकर बनोगे।[४९] जिसे सुनकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट एव खेदरहित हो गये।

प्रस्तुत आगम मे श्रीकृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का कथाप्रसग अत्यन्त रोचक व प्रेरणादायी है। भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम उपदेश से ही वे इतने अधिक प्रभावित हुये कि सब कुछ परित्याग कर श्रमण बन जाते हैं और महाकाल श्मशान मे भिक्षु महाप्रतिमा को स्वीकार कर ध्यानस्थ हो जाते है। सोमिल ब्राह्मण ने देखा कि मेरा जामाता होने वाला मुण्डित हो गया है। इसने मेरी बेटी के जीवन के साथ विवाह न कर खिलवाड किया है। क्रोध की आधी से उसका विवेक-दीपक बुझ जाता है। उसने मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बाधकर धधकते अगार रख दिये। मस्तक, चमडी, मज्जा, माम के जलने से महाभयकर वेदना हो रही थी तथापि वे ध्यान से विचलित नही हुए। उनके मन मे तनिक भी विरोध या प्रतिशोध की भावना जाग्रत नही हुई। यह थी रोष पर तोष की शानदार विजय। दानवता पर मानवता का अमर जयघोष, जिसके कारण उन्होने एक ही दिन की चारित्र-पर्याय द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लिया।

अन्तगडसूत्र के चार वर्ग के ४१ अध्ययनो मे उन राजकुमारो का उल्लेख हुआ है जिन्होने श्रीकृष्ण वासुदेव के विराट्-वैभव और सुख-सुविधाओ से भरी हुई जिन्दगी को त्याग कर भगवान् अरिष्टनेमि के पास उग्र तप की आराधना की, विविध प्रकार के तपो की आराधना की, और अन्त मे केवलज्ञान के साथ मोक्ष प्राप्त किया।

पाँचवें वर्ग के दश अध्ययनो मे वासुदेव श्रीकृष्ण की पद्मावती, सत्यभामा, रुक्मिणी, जामवन्ती, प्रभृति आठ रानियाँ तथा दो पुत्रवधुओ के वैराग्यमय जीवन का वर्णन है। फूलो की शय्या पर सोने वाली राजरानियो ने उग्र साधना का राजमार्ग अपनाया। कहाँ राजरानी का भोगमय जीवन और कहाँ श्रमणियो का कठोर साधना-मय जीवन ! इन अध्ययनो के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है, नारी जितनी फूल के समान सुकुमार है, उतनी ही तप साधना मे सिंहनी की भाँति कठोर भी है।

इस प्रकार पाँच वर्ग के ५१ अध्ययनो मे भगवान् नेमिनाथ के युग के ५१ महान् साधको का तपोमय जीवन उट्टङ्कित है। द्वारका नगरी और उसके विध्वस की घटनाए तथा गजसुकुमाल का आख्यान ऐसे रहे है, जिस पर परवर्ती साहित्यकारो ने स्वतन्त्र रूप से अनेक काव्यग्रन्थ लिखे है। इसमे अनुभव और प्रेरणाओ के जीते-जागते प्रसग है जो आज भी सत्पथप्रदर्शक हैं, भय-दुर्बलता, वासना-लालसा और भोगेषणा के गहन अन्धकार मे भी अभय, आत्मविश्वास और वीतरागता की दिव्य किरणे-विकीर्ण करते हैं।

छट्ठे, सातवें और आठवे वर्ग मे भगवान् महावीर के शासन-काल के ३९ उग्र तपस्वी, क्षमामूर्ति और सरलात्माओ की हृदय कपाने वाली साधनाओ का सजीव चित्रण है। मकाई, किंकम के साधनामय जीवन का वर्णन है, जिन्होने सोलह वर्ष तक गुणरत्न सवत्सर तप की आराधना की थी और विपुलगिरि पर्वत पर सथारा करके मुक्त हुये थे। छट्ठे वर्ग के तृतीय अध्ययन मे राजगृह के अर्जुनमालाकार का वर्णन है। बन्धुमती उसकी

४९ अन्तकृद्दशा सूत्र वर्ग ५, अध्ययन-१।

पत्नी थी। मुद्गरपाणि यक्ष की वह उपासना करता था। राजगृह नगर की ललिता गोष्ठी के छह सदस्यो के द्वारा बन्धुमती के चरित्र को भ्रष्ट करने से अर्जुन माली के मन मे अत्यन्त रोष पैदा हुआ और मुद्गरपाणि यक्ष के सहयोग से उसने उनका वध कर दिया। वह हिंसा का नग्नताण्डव करने लगा। प्रतिदिन सात व्यक्तियो को मारता। भगवान् महावीर के आगमन को श्रवण कर सुदर्शन श्रेष्ठी दर्शनार्थ जाता है। अर्जुन को यक्ष-पाश से मुक्त करता है और भगवान् के चरणो मे पहुचाता है।

राजगृह के बाहर यक्षाविष्ट अर्जुन माली का आतक था। क्या मजाल कि कोई नगर से बाहर निकलने की हिम्मत करे। मगर भ० महावीर का पदार्पण होने पर सुदर्शन, माता-पिता के मना करने पर भी रुकता नही। वह भगवान् के दर्शनार्थ रवाना होता है। मार्ग मे अर्जुन का साक्षात्कार होता है। हिंसा पर अहिंसा की विजय होती है।

इस वर्णन मे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि नामधारी अनेक भक्त हो सकते है किन्तु सच्चे भक्त बहुत ही दुर्लभ है। जिस समय आकाश मे उमड-घुमड कर घटाए आयें, उन घटाओ को देख कर कोई मोर से कहे तू कुहुक मत, केकारव मत कर। मोर कहेगा, यह कभी सभव नही है। जो सच्चा भक्त है, वह समय आने पर प्राणो की बाजी भी लगा देता है किन्तु पीछे नही हटता। वह जानता है, बिना अग्नि-स्नान किये सुवर्ण मे निखार नही आता। बिना घिसे हीरे मे चमक नही आती। वैसे ही बिना कष्ट पाये भक्ति के रग मे भी चमक-दमक नही आती।

अर्जुन माली श्रमण बनकर उग्र साधना करते है। जिस के नाम से एक दिन बडे-बडे वीरो के पाव थर्राते थे, हृदय धडकते थे, जिसने पाच माह तेरह दिन मे ११४१ मानवो की हत्या की थी, वही व्यक्ति जब निर्ग्रन्थ साधना को स्वीकार करता है, तो उसका जीवन आमूल-चूल परिवर्तित हो जाता है। लोग उन श्रमण का कटुवचन कहकर तिरस्कार करते है। लाठी, पत्थर, ईंट और थप्पडो से उन्हे प्रताडित करते है तथापि उन के मन मे आक्रोश पैदा नही होता। वह यही चिन्तन करते हैं—

समण सजय दत हणेज्ज कोइ कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासुत्ति एव पेहेज्ज सजए।[५०]

श्रमण सयत और दान्त होता है, वह इन्द्रियो का दमन करता है। यदि कोई उसे मारता और पीटता है तो भी वह चिन्तन करता है कि यह आत्मा कभी भी नष्ट होने वाला नही है, यह अजर अमर है, शरीर क्षणभगुर है। उसका नाश होता है, तो उसमे मेरा क्या जाता है। इस प्रकार समत्वपूर्वक चिन्तन करते हुए वे भयकर उपसर्गो को भी शान्त भाव से सहन करते हैं। अर्जुन अपनी क्षमामयी उग्र साधना के द्वारा छह माह मे ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

छठे वर्ग मे उस बालमुनि का भी वर्णन है जिसने छह वर्ष की लघुवय मे प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[५१] ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर के शासन मे सब से लघुवय मे प्रव्रज्या ग्रहण करने वाला वही एक मुनि है। अन्य जो

---

५० उत्तराध्ययन सूत्र २। २७

५१ 'कुमारसमणे' त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च 'छव्वरिसो पव्वइओ निग्गथ होइऊण पावयण'' त्ति, एतदेव चाश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादाराम्न प्रव्रज्या स्यादिति।
—भगवती सटीक भा १ श ५, उ ४, सू १८८ पत्र २१९-२

भी बालमुनि हुए हैं, वे कम से कम आठ वर्ष की उम्र के थे। भगवान् महावीर ने साधना की दृष्टि से वय को प्रधानता नही दी। जिस साधक मे योग्यता है वह वय की दृष्टि से भले ही लघु हो, प्रव्रजित हो सकता है। भगवान् महावीर ने अतिमुक्तक कुमार की आन्तरिक योग्यता को निहार कर ही दीक्षा प्रदान की थी। जैन इतिहास मे ऐसे सैकडो तेजस्वी साधक हुए हैं जिन्होने बाल्यावस्था मे आर्हती दीक्षा ग्रहण कर जैन धर्म की विपुल प्रभावना की थी। चतुर्दशपूर्वधारी आचार्य शय्यभव ने अपने पुत्र मणक[५२] को, आर्य सिंहगिरि ने वज्रस्वामी को बालवय मे दीक्षा दी थी। आचार्य हेमचन्द्र उपाध्याय यशोविजय जी आदि बालदीक्षित ही थे। आचार्यसम्राट् आनन्द ऋषि जी म०, युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी आदि भी नौ दस वर्ष की नन्ही उम्र मे श्रमण बने हैं। आगम साहित्य और परवर्ती साहित्य मे कही भी ऐसी दीक्षा का निषेध नही है। अयोग्य दीक्षा का निषेध है। निशीथ भाष्य[५३] मे अत्यन्त लघुवय मे बालक को दीक्षा देने का निषेध किया है और उसके लिए जो कारण प्रस्तुत किये हैं वे अयोग्य दीक्षा से ही अधिक सम्बन्धित हैं। महावग्ग[५४] बौद्ध ग्रन्थ मे भी इसी प्रकार निषेध है। निशीथभाष्य[५५] मे आगे चलकर योग्य बालक को, जो लघुवय का भी हो दीक्षा देने की अनुमति दी है, क्यो—कि बालक बुद्धू ही नही बुद्धिमान् भी होते हैं, प्रबल प्रतिभा के धनी भी होते है, जिन्होने इतिहास के पृष्ठो को बदल दिया है। अतिमुक्तक मुनि का कथानक इस तथ्य का ज्वलत उदाहरण है। अतिमुक्तक कुमार ने माता-पिता को कहा—पूज्यवर! मैं अपनी विराट् शक्ति को जानता हू। मैं अगारो पर मुस्कराता हुआ चल सकता हू और शूलो पर भी बढ सकता हू। मैं यह जानता हू कि जो जन्मा है वह अवश्य ही मरेगा पर कब और किस प्रकार मरेगा यह मुझे परिज्ञात नही है। उनके तर्कों के सामने माता-पिता भी मौन हो गये।

भगवती[५६] सूत्र मे अतिमुक्तक मुनि के श्रमणजीवन की एक घटना आई है—स्थविरो के साथ अतिमुक्तक मुनि शौचार्थ बाहर जाते है। वर्षा कुछ समय पूर्व ही हुई थी, अत पानी तेजी से बह रहा था। बहता पानी देख कर उनके बाल-सस्कार उभर आये। मिट्टी की पाल बाधकर जल के प्रवाह को रोका। अपना पात्र उसमे छोड दिया। आनन्दविभोर होकर वह बोल उठे—'तिर मेरी नैया तिर' पवन ठुमक ठुमक कर चल रहा था। अतिमुक्तक की नैया थिरक रही थी। प्रकृति मुस्करा रही थी। पर स्थविरो को श्रमणमर्यादा के विपरीत यह कार्य कैसे सहन हो सकता था! अन्तर का रोष मुखकर झलक रहा था। अतिमुक्तक एकदम सभल गये। अपनी भूल पर अन्दर ही अन्दर पश्चात्ताप करने लगे। पश्चात्ताप ने उनको पावन बना दिया।

स्थविरो से भगवान् ने कहा—अतिमुक्तक मुनि इसी भव मे मुक्त होगा। भगवान् ने अत्यन्त मधुर स्वर मे कहा—इसकी हीलना, निन्दना और गर्हणा मत करो। यह निर्मल आत्मा है। यह वय से लघु है किन्तु इसका आत्मा हिमगिरि से भी अधिक उन्नत है।

सातवें और आठवें वर्ग मे सम्राट् श्रेणिक की नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दश्रेणिका प्रभृति तेवीस महारानियो का वर्णन है, जिन्होने भगवान् महावीर के पावन-प्रवचनो से प्रभावित होकर श्रमणधर्म स्वीकार किया, एकादश अगो का अध्ययन किया और इतने उत्कृष्ट तप की आराधना की जिसे पढते-पढते ही रोगटे

---

५२ परिशिष्टपर्व—सर्ग ५, आचार्य हेमचन्द्र

५३ निशीथ भाष्य ११,—३५३१।३२

५४ महावग्ग—१।४१-९२, पृ ८०-८१, तुलना करे।

५५ निशीथ भाष्य ११-३५३७।३९

५६ भगवती शतक ५। उद्दे ४

खडे हो जाते है। सुख सुविधाओ मे पलने वाली सुकुमार रानिया इतना उग्र तपश्चरण करके आत्मा को कुन्दन की तरह चमका सकती हैं, यह इन दो वर्गो के अध्ययन से स्पष्ट होता है। इन महारानियो के छुट-पुट जीवन-प्रसग आगमो व आगमो के व्याख्या-साहित्य मे यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं। विस्तारभय से हम उन सभी प्रसगो को यहा नही दे रहे हैं। इन महारानियों ने विभिन्न प्रकार की कठोर तपश्चर्या की जिसका उल्लेख इन वर्गों मे किया गया है। अन्त मे—सभी सलेखना-सहित आयु पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त करती हैं।

इस प्रकार अन्तकृद्दशाग सूत्र मे अनेक प्रकार के साधको और साधिकाओ की साधना का सजीव वर्णन है। एक ओर गजसुकुमार जैसे तरुणतपस्वी है, तो दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार जैसे अल्पवयस्क तेजस्वी श्रमण-नक्षत्र हैं। तीसरी ओर वासुदेव श्रीकृष्ण व सम्राट् श्रेणिक की महारानियो की जीवन-गाथाए तप की उज्ज्वल किरणें विकीर्ण कर रही हैं। यही कारण है कि पर्युषण के पावन पुण्य पलो मे स्थानकवासी परम्परा के वक्ता इस आगम का वाचन करते हैं। अगो मे यह आठवा अग है, आठ वर्गों मे विभक्त है। और पर्युषण पर्व के आठ दिन होते हैं। आठकर्मो को आत्यन्तिक रूप से नष्ट करने वाले ९० साधको का पवित्र चरित्र है। जो अष्टगुणोपेत सिद्धि को प्रदान करने मे समर्थ है।

इस आगम को, पर्युषण के सुनहरे अवसर पर कब से वाचने की परम्परा प्रारम्भ हुई, यह अन्वेषणीय है। सम्भव है वीर लोंकाशाह या उनके पश्चात् प्रारम्भ हुई हो। जिस किसी ने भी यह परम्परा प्रारम्भ करने का साहस किया होगा, वह बहुत ही तेजस्वी व्यक्ति रहा होगा।

अन्तकृद्दशा सूत्र पर सस्कृत मे दो वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं। एक आचार्य अभयदेव की और एक आचार्य घासीलाल जी महाराज की। तीन-चार गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुए हैं और पाच हिन्दी अनुवाद प्रकट हुए है। इस तरह इस आगम के बारह सस्करण प्रकाश मे आये हैं।[५७] अग्रेजी अनुवाद भी मुद्रित हुआ है।

प्रस्तुत सस्करण पूर्व सस्करणो की अपेक्षा अपनी कुछ अलग विशेषताए लिये हुए है। शुद्ध मूल पाठ है, अर्थ है, और यत्र-तत्र विवेचन है, जो कथा मे आये हुए गम्भीर भावो को व्यक्त करता है। परिशिष्ट मे आगम के रहस्य को व्यक्त करने के लिये टिप्पण आदि अत्यन्त उपयोगी सामग्री भी दी गई है।

इस आगम के सम्पादन का श्रेय है—बहिन साध्वी दिव्यप्रभा जी को जो परमविदुषी साध्वीरत्न उज्ज्वलकुमारी जी की सुशिष्या हैं। विदुषी महासती श्री उज्ज्वल कुमारी जी एक प्रकृष्टप्रतिभासम्पन्न साध्वी थी। उनके नाम से सम्पूर्ण जैन समाज भली-भाँति परिचित है। महासती जी की प्रबल प्रतिभा के सदर्शन उनकी सुशिष्याओ मे सहज रूप से किये जा सकते हैं। प्रस्तुत आगम मे महासती श्रीदिव्यप्रभा जी की प्रतिभा की दिव्य किरणें विकीर्ण हुयी हैं। उनका यह प्रयास प्रशसनीय है। आशा है वे लेखन के क्षेत्र मे आगे बढकर सरस्वती के भण्डार मे श्रेष्ठतम कृतियाँ समर्पित करेंगी।

जैन आगम भारतीय साहित्य की अनमोल सम्पदा है, जिस पर जैन शासन का भव्य प्रासाद अवलम्बित है। उसके प्रकाशन सम्पादन के सम्बन्ध मे विभिन्न स्थानो से प्रयत्न हुए हैं। पर ऐसे सस्करणो की अपेक्षा चिरकाल से थी जो आगम के मूल हार्द को स्पष्ट कर सकें। आगम के व्याख्या-साहित्य के आलोक मे आगम की गुरु ग्रन्थियों को खोल सकें। इसी दृष्टि से श्रमणसघ के युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी ने इस महान् कार्य को सम्पन्न करने का एक दृढ सकल्प किया, जिस की सभी ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। मेरे परम श्रद्धेय सद्-

---

५७ देखिए—जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा-ले देवेन्द्रमुनि पृ ७१२

गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म , जो युवाचार्यश्री के निकटतम स्नेही सहयोगी व सहपाठी रहे है, उनकी भी यही मगल मनीषा थी कि आगमो का कार्य आज के युग मे अत्यधिक आवश्यक है। जिस के अध्ययन से ही व्यक्ति भौतिकवाद की चकाचौध से अपने आप को बचा सकता है। मुझे परम आह्लाद है कि आगम सम्पादन और प्रकाशन का कार्य अत्यन्त द्रुतगति से चल रहा है। युवाचार्यश्री के पथप्रदर्शन मे आगमो के अभिनव सस्करण प्रबुद्ध पाठको के करकमलो मे पहुच रहे है और उन्हे अत्यन्त स्नेह से पाठकगण अपना रहे हैं।

प्रस्तुत सस्करण को सर्वश्रेष्ठ बनाने मे प्रज्ञामूर्ति, सम्पादनकलामर्मज्ञ श्रीशोभाचन्द्र जी भारिल्ल का अत्यधिक श्रम भी उल्लेखनीय है। आशा है यह सस्करण आगम-अभ्यासी, स्वाध्यायप्रेमी व्यक्तियो के लिये अत्यन्त उपयोगी रहेगा। इस सुरभित सुमन की सुगन्ध मुक्त रूप से दिग्दिगन्त मे फैले, यही मेरी मगल भावना है।

जैन स्थानक
नीमच सिटी (मध्यप्रदेश)
दि० २८ मार्च १९८१

☐ देवेन्द्र मुनि शास्त्री

विषयानुक्रम

प्रथम वर्ग

द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

चतुर्थ वर्ग

पञ्चम वर्ग

षष्ठ वर्ग

सप्तम वर्ग

अष्टम वर्ग

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२

पचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिपणीयं अट्ठम अंगं

अन्तगडदसाओ

पञ्चमगणधर-श्रीमत्सुधर्मस्वामिप्रणीतम्-अष्टमम् अङ्गम्

अन्तकृद्दशा

पढमो वग्गो

पढमं अज्झयणं

उत्क्षेप

१—तेणं कालेण तेणं समएणं चपानामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए-वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे समोसरिए। परिसा निग्गया जाव [धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं] पडिगया। तेण कालेण तेण समएणं अज्जसुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजबू जाव [नामं अणगारे कासवगोत्तेण सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसठिए वज्जरिसहणारायसघयणे कणयपुलयनिहसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामते उड्ढजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए सजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्जजबू नाम अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे, उप्पन्नससए, उप्पन्नकोउहल्ले, समुप्पन्नसड्ढे, समुप्पन्नससए, समुप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेति। उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मे थेरे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ। करेत्ता वंदति नमंसति, वदित्ता नमंसित्ता अज्जसुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पंजलिउडे विणएणं] पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

उस काल और उस समय मे चपा नाम की नगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक यक्ष-मन्दिर था। उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे। नगर-निवासी जन [धर्म-देशना श्रवणार्थ नगर से निकले। यावत् आर्य सुधर्मा स्वामी ने धर्म-देशना दी। (धर्म-कथन सुनकर) जनता जिस दिशा मे आई थी उस दिशा मे] वापस लौटी। उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी के आर्य जबू [नाम के अनगार (शिष्य) थे। उनका काश्यप गोत्र था। उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था। उनका सस्थान समचतुरस्र-समचौरस था। उनका सहनन वज्र-ऋषभ-नाराच था। कसौटी पर खींची हुई सोने की रेखा के समान तथा कमल की केसर के समान वे गौरवर्ण थे। वे उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, कर्मशत्रुओ के लिए घोर घोर गुणवाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, अतएव शरीर-सस्कार के त्यागी थे। दूर-दूर तक फैलने वाली विपुल तेजोलेश्या को उन्होने अपने शरीर मे सक्षिप्त कर रखी थी। वे—जम्बू स्वामी, आर्य सुधर्मा स्वामी के न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, ऊर्ध्वजानु और अध शिर होकर अर्थात् दोनो घुटनो को खडे करके एव शिर को नीचे की तरफ झुकाकर ध्यानरूपी कोष्ठक मे प्रविष्ट होकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् आर्य जबूनामक अनगार को तत्त्व के विषय मे श्रद्धा (जिज्ञासा) हुई, सशय हुआ, कुतूहल हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा हुई, विशेष रूप से सशय हुआ और विशेष रूप से कुतूहल हुआ।

श्रद्धा उत्पन्न हुई, सशय उत्पन्न हुआ, कौतूहल उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा, सशय और कौतूहल उत्पन्न हुआ। तब वे उत्थान कर उठ खडे हुए और उठ कर के जहाँ आर्य सुधर्मा स्थविर थे, वही आये। आकर आर्य सुधर्मा स्थविर की तीन बार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वाणी से स्तुति की और काया से नमस्कार किया। स्तुति और नमस्कार करके आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर और न बहुत समीप उचित स्थान पर स्थित होकर, सुनने की इच्छा करते हुए, सन्मुख दोनो हाथ जोडकर विनयपूर्वक] पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

विवेचन——जैन वाड्मय मे आगमो का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योकि आगम, तीर्थकरोपदिष्ट है। महामहिम, सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी तीर्थकर भगवान् तीर्थ की स्थापना करते है और सब जीवो की दया एव रक्षा के लिए धर्मोपदेश करते है, इसीलिये प्रश्नव्याकरण सूत्र मे कहा है—"सव्व-जग-जीव-रक्खण-दयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय।" उनके अर्थरूप प्रवचन को गणधर सूत्र रूप मे ग्रथित करते है और वह बारह भागो मे विभक्त होता है, जिसे आगमिक भाषा मे द्वादशागी कहते है।

भगवान् का उपदेश चार अनुयोगो मे विभक्त किया गया है—(१) द्रव्यानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) चरणकरणानुयोग और (४) धर्मकथानुयोग:। स्थानांग आदि आगम द्रव्यानुयोग मे गर्भित होते है। भगवती सूत्र आदि आगमो मे गणितानुयोग अधिक है। चरणकरणानुयोग अर्थात् साधु एव श्रावको के आचार धर्म का विवेचन आचारागादि सूत्रो मे है। धर्मकथा का विशेष स्वरूप ज्ञाताधर्मकथा, अन्तगडदशा आदि आगमो मे है।

जैनागमो के अनुसार द्वादशागी का उपदेश तीर्थकर करते है। वे बारह अग इस प्रकार है—(१) आचाराग, (२) सूत्रकृताग, (३) स्थानाग, (४) समवायाग, (५) भगवतीसूत्र, (६) ज्ञाताधर्मकथा, (७) उपासकदशाग, (८) अन्तकृद्दशाग, (९) अनुत्तरोपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकसूत्र और (१२) दृष्टिवाद। इन बारह अगो मे वर्तमान काल मे बारहवे दृष्टिवाद को छोडकर अन्य सर्व अग उपलब्ध है और उन मे अन्तकृद्दशाग सूत्र आठवा अग सूत्र है।

प्रस्तुत आगम मे प्रतिपाद्य विषय के पूर्वभूमिका रूप मे प्रथम सूत्र है, जो आगम-प्रसिद्ध सवादात्मक शैली से प्रकट होता है। इसे उपोद्घात या उत्क्षेप भी कहा जाता है। उत्क्षेप की यह विधि करीब चार सूत्र तक रहेगी, तदन्तर प्रतिपाद्य विषय के कथन का प्रारम्भ होगा।

इस प्रथम सूत्र मे "तेण कालेण तेण समएण" आदि शब्दो द्वारा आगमरचना के समय और स्थान की ओर पाठक का ध्यान खीचकर इसमे मुख्यत पाच विषयो का निरूपण प्रस्तुत किया गया है—(१) वर्णनक्षेत्र, (२) उस समय की परिस्थिति, (३) आगम के प्रतिपादक, (४) प्रतिपादक की योग्यता और (५) प्रश्नकर्ता।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रथम आगम-रचना के समय की ओर और बाद मे स्थान की ओर सकेत किया गया है। इसमे बताया है कि "उस काल और उस समय" मे चपा नाम की एक नगरी थी और उसके बाहर पूर्णभद्रनामक चैत्य था। जहॉ पर आर्य सुधर्मा स्वामी ने अपने प्रिय शिष्य आर्य जबू को प्रस्तुत आगम का बोध कराया था। यहॉ यह प्रश्न हो सकता है कि "काल और समय" दोनो एक ही अर्थ के द्योतक हैं, फिर दो शब्दो का प्रयोग करने का क्या आशय है? साधारणत समय और काल पर्यायवाची है। परन्तु वास्तव मे देखा जाए तो ये दोनो शब्द भिन्नार्थक है। काल शब्द उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप कालचक्र का बोधक है और समय शब्द उस कालचक्र मे हुए व्यक्ति के समय का

वोधक है । यहाँ पर उस "काल" का यह अर्थ हुआ कि इस अवसर्पिणीके चतुर्थ आरे मे इस आगम की वाचना दी गई थी । परन्तु इससे यह स्पष्ट नही कि चतुर्थ आरे मे किस समय वाचना दी गई थी ? क्योकि चतुर्थ आरा ४२ हजार वर्ष कम कोटा-कोटी सागरोपम का है । अत इस वात को "तेण समएण" ये पद देकर स्पष्ट किया है । उस समय का यह अर्थ है कि जिस समय आर्य सुधर्मा स्वामी विचरण करते हुए चपा नगरी मे पधारे, उस समय उन्होने जम्बू स्वामी को प्रस्तुत आगम की वाचना दी । इससे यह ध्वनित होता है कि प्रस्तुत आगम की वाचना भगवान् महावीर के निर्वाण के वाद दी गई थी । वृत्ति मे अभयदेव सूरिजी ने काल से अवसर्पिणी का चतुर्थ विभाग अर्थात् चौथा आरा और 'समएण' का विशेप काल अर्थ किया है ।

इसके पश्चात् यह वताया गया है कि उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे और नगरी के वाहर पूर्णभद्र चैत्य मे ठहरे । उनकी शरीर-सपदा, उनके कुल एव उनके गुणो का वर्णन प्रस्तुत आगम मे नही किया गया है, क्योकि नायाधम्मकहाओ मे इसका विस्तार से वर्णन किया गया है । अत यहाँ केवल सकेत कर दिया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत आगम के प्रतिपादक भगवान् महावीर के पचम गणधर एव प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे और उनके शिष्य आर्य जम्बू स्वामी प्रश्न-कर्त्ता थे ।

प्रस्तुत विवरण से ऐसा प्रश्न होता है कि आर्य सुधर्मा स्वामी का विवरण प्रस्तुत करनेवाले उत्क्षेप—उपोद्घात के कर्ता कौन है ? इसका समाधान यह है कि जैसे सुधर्मा स्वामी ने गौतमादि गणधरो का उल्लेख किया है, उसी तरह आर्य जवू स्वामी के वाद होनेवाले प्रभवादि आचार्यो ने इस उत्क्षेप मे आर्य सुधर्मा स्वामी का वर्णन किया है । अत ऐसा ही परिलक्षित होता है कि इस उपोद्घात के कर्त्ता आचार्य प्रभवादि ही हो ।

इस प्रकार "तेण समएण" शब्द का उपलक्षण-अर्थ यह होता है कि—चतुर्थ आरक के अनन्तर आर्य सुधर्मा स्वामी चपा नगरी मे पधारे और चपा नगरी के वाहर पूर्णभद्रनामक चैत्य मे ठहरे । उनके आगमन का शुभ-सदेश सुनकर नागरिक उनके दर्शनार्थ आए और धर्मोपदेश सुनकर वापस लौट गये । उस समय उनके शिष्य आर्य जवू स्वामी विनय-भक्ति एव श्रद्धापूर्वक उनके चरणो मे उपस्थित होकर विनम्र शब्दो मे वोले । क्या वोले, यह आगे कहा जाएगा ।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकर्ता ने वर्णन-क्षेत्र एव वर्णन-कर्ता आदि के नाम का उल्लेख मात्र किया है । वर्णन-स्थान एव वर्णन-कर्ता के सम्पूर्ण स्वरूप को जानने के लिये अन्य आगमो को देखने का सकेत कर दिया है । अत चपा नगरी एव उसमे रहे हुए पूर्णभद्र चैत्य का वर्णन एव उसमे पधारे हुए आर्य सुधर्मा स्वामी के जीवन-परिचय से लेकर परिषद् के आवागमन तक का वर्णन औपपातिक आदि आगमो से जानना चाहिए । उस मे चपा नगरी एव पूर्णभद्र चैत्य का विस्तार से वर्णन किया गया है । ऐसे स्थानो पर इन वर्णित विषयो का ससूचक शब्द है—"वण्णओ ।"

'वण्णओ' यह पद वर्णक का वोधक है । वर्णन करनेवाला प्रकरण वर्णक शब्द से व्यवहृत किया जाता है । आगे जहाँ-जहाँ जिस पद के आगे वर्णक पद का उल्लेख मिले, वहाँ-वहाँ पर उस पद से ससूचित पदार्थ का वर्णन करनेवाले पाठ की ओर सकेत रहेगा ।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि आगमो मे अग सूत्रो का ही स्थान प्रमुख होने पर भी यहाँ अग सूत्रो मे वर्णित पाठो के लिए पाठको को अगवाह्य आगमो पर क्यो अवलवित किया जाता है ?

आगम रचना के अनुसार पहले अगो की और बाद मे उपागो की रचना हुई है। ऐसी स्थिति मे इन अगसूत्रो मे 'वण्णओ' पाठ कैसे उचित बैठ सकते है ? अतकृद्दशाग अग सूत्र है और औपपातिक सूत्र उपाग है, तो फिर अतगड मे ओपपातिक सूत्र का सन्दर्भ कैसे अभीष्ट हो सकता है ?

आगमो मे अगसूत्रो का स्थान सर्वोच्च है। उपागो की रचना का आधार भी ये अगसूत्र ही है यह निर्विवाद सत्य है। फिर भी अगसूत्रो मे उपागसूत्रो का निर्देश करने का मुख्य कारण आगमो को लिपिबद्ध करते समय इस क्रम का ध्यान नही रखना है। चार मूल, चार छेद, औपपातिक सूत्र, आचाराग सूत्र, स्थानागसूत्र, इन मे किसी सूत्र का उद्धरण नही दिया। प्रतीत होता है कि इन को लिपिबद्ध प्रथम कर लिया गया था। तत्पश्चात् लिपिबद्ध करते समय जिस विषय का वर्णन विस्तार-पूर्वक एक सूत्र मे कर दिया गया, उस का पौन पुन्येन वर्णन करना उचित नही समझा गया।

२—"जइ णं भते! समणेणं आइगरेणं, जाव [तित्थयरेणं सयसबुद्धेणं, पुरिसुत्तमेणं, पुरिससीहेणं, पुरिसवरपुडरीएणं, पुरिसवरगंधहत्थिणा, लोगुत्तमेण, लोगनाहेणं, लोगहिएणं, लोगपईवेणं, लोगपज्जोयगरेणं, अभयदएणं, सरणदएणं, चक्खुदएण, मग्गदएणं, बोहिदएणं, धम्मदएणं, धम्मदेसएण, धम्मनायगेण, धम्मसारहिणा, धम्मवरचाउरतचक्कवट्टिणा, अप्पडिहयवरनाणदंसण-धरेणं वियट्टछउमेण, जिणेण, जावएणं, तिन्नेण, तारएण, बुद्धेणं, बोहएणं, मुत्तेण, मोअगेणं, सव्वन्नेणं, सव्वदरिसणेणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिअं सासयं ठाणं] संपत्तेणं,[१] सत्तमस्स अगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भते! अंगस्स अंतगडदसाण समणेणं० के अट्ठे पण्णत्ते ?"

"एवं खलु जबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।"

"हे भगवन्! यदि श्रुतधर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर, [गुरु के उपदेश के विना स्वय ही बोध को प्राप्त, पुरुषो मे उत्तम, कर्म-शत्रु का विनाश करने मे पराक्रमी होने के कारण पुरुषो मे सिह के समान, पुरुषो मे श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषो मे गधहस्ती के समान, अर्थात् जैसे गधहस्ती की गध से ही अन्य हस्ती भाग जाते है, उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति, भीति आदि का विनाश हो जाता है, लोक मे उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक मे प्रदीप के समान, लोक मे विशेष उद्योत करनेवाले, अभय देने वाले, शरणदाता, श्रद्धा रूप नेत्र के दाता, धर्ममार्ग के दाता, बोधिदाता, देशविरति और सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, चारो गतियो का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, कही भी प्रतिहत न होने वाले केवलज्ञान-दर्शन के धारक, घातिकर्म रूप छद्म के नाशक, रागादि को जीतनेवाले और उपदेश द्वारा अन्य प्राणियो को जितानेवाले और, ससार-सागर से स्वय तिरे हुए और दूसरो को तारनेवाले, स्वय बोधप्राप्त और दूसरो को बोध देनेवाले, स्वय कर्म-बन्धन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरो को मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव—उपद्रव रहित, अचल—चलन आदि क्रिया से रहित, अरुज—शारीरिक मानसिक व्याधि की वेदना से रहित, अनन्त अक्षय अव्याबाध और अपुनरावृत्ति—पुनरागमन से रहित सिद्धि-गतिनामक शाश्वत स्थान को] प्राप्त श्रमण भगवान् ने सप्तम अग उपासकदशाङ्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, जिस को अभी मैंने आपके मुखारविंद से सुना है। हे भगवन्! अब यह बतलाने की कृपा करे कि श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अग अन्तकृद्दशाङ्ग का क्या अर्थ बताया है ?"

१ नायाधम्मकहाओ—श्रुत १, अ १—पृ ५ मे मूल पाठ "ठाण सपत्तेण" न होकर "ठाणमुवगएण" है।

आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"जम्बू ! श्रमण भगवान् ने अष्टम अन्तकृद्दशाग के आठ वर्ग प्रतिपादन किए है ।"

विवेचन—आगम-परिपाटी के पर्यवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सर्व आगम आर्य जबू स्वामी और आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रश्नोत्तर रूप है। आर्य जबू स्वामी प्रश्न करते हैं और आर्य सुधर्मा स्वामी उसका उत्तर देते हैं। यही प्रश्नोत्तर आज हमारे सामने आगमो के रूप मे दिखाई देते है। इसकी स्पष्टता प्रस्तुत सूत्र मे झलकती है। अन्तकृद्दशाग सूत्र का शुभारभ इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से ही होता है। इस सूत्र मे प्रश्नोत्तर द्वारा आर्य जबू स्वामी ने अष्टम अन्तकृद्दशाग आगम के श्रवण-वर्णन की जिज्ञासा प्रस्तुत की है।

वस्तुत आगमो के तीन प्रकार हैं—(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम और (३) परपरागम[१]।

गुरुजनो के उपदेश विना स्वयमेव आगमो का ज्ञान होना आत्मागम कहलाता है। तीर्थंकर परमात्मा के लिये अर्थागम आत्मागम रूप है और गणधरो के लिये सूत्रागम आत्मागमरूप है। (मूलरूप आगम को सूत्रागम, सूत्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम और सूत्र और अर्थ उभयरूप आगम को तदुभयागम कहते है)।

स्वय आत्मागमधारी पुरुष से प्राप्त होने वाला आगमज्ञान अनन्तरागम कहा गया है। गणधर भगवान् के लिये अर्थागम अनन्तरागम रूप है। तथा जबू स्वामी आदि गणधर-शिष्यो के लिये सूत्रागम अनन्तरागमरूप है।

आत्मागमधारी महापुरुष से प्राप्त न होकर जो आगम-ज्ञान उनके शिष्य-प्रशिष्य आदि की परम्परा से प्राप्त होता है, वह परम्परागम कहा जाता है। जैसे जबू स्वामी आदि गणधरशिष्यो के लिये अर्थागम परम्परा रूप है। तथा इन के बाद के सभी साधको के लिये सूत्र एव अर्थ दोनो प्रकार के आगम परम्परागम हैं।

अत यह स्पष्ट ही है कि प्रस्तुत अन्तकृद्दशाग सूत्र अर्थ की दृष्टि से तीर्थंकर परमात्मा के लिये आत्मागम है, गणधरो के लिये अनन्तरागम है और गणधर-शिष्यो के लिये परम्परागम है। इसी प्रकार यह आगम सूत्र की दृष्टि से गणधरो के लिये आत्मागम, गणधर-शिष्यो के लिये अनन्तरागम, और गणधर-प्रशिष्यो के लिये परम्परागम है।

अर्थरूप से आगमो का प्रतिपादन तीर्थंकर परमात्मा करते है, गणधर उन्हे सूत्र रूपमे गूँथते है। वस्तुत गणधर भगवान् तीर्थंकर परमात्मा से प्राप्त किए हुए पदार्थ के प्रचारक है, स्वय उसके द्रष्टा या स्रष्टा नही है।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि आर्य सुधर्मा ने जबू अनगार से कहा—हे जबू ! भगवान् महावीर ने अन्तगड सूत्र के आठ वर्ग प्रतिपादन किये है।

इस सूत्र मे प्रयुक्त "वग्गा" शब्द वर्ग का बोधक है। वर्ग का अर्थ होता है शास्त्र का एक विभाग, प्रकरण या अध्ययनो का समूह।

आर्य सुधर्मा स्वामी के प्रस्तुत विचारो को जानकर आर्य जबू स्वामी ने जो निवेदन प्रस्तुत किया वह अब तृतीय सूत्र मे दर्शाया जाता है—

---

१ अनुयोगद्वार प्रमाण विपय—सूत्र-१४७

३—"जइ ण भंते ! समणेण जाव[1] सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अतगडदसाण अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भते ! वग्गस्स अतगडदसाण समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?"

एवं खलु जबू ! समणेण जाव[2] सपत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

सगहणी-गाहा

"गोयम-समुद्द-सागर-गंभीरे चेव होइ थिमिए य ।
अयले कपिल्ले खलु अक्खोभ-पसेणइ-विण्हू ।।"

(आर्य जबू आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे)—"भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कथन किये है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तद्दकृशाग सूत्र के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये हैं ?"

(जबू स्वामी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए आर्य सुधर्मा स्वामी वोले)—"जबू ! यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने आठवे अग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कहे है। जैसे कि—

(१) गौतम, (२) समुद्र, (३) सागर, (४) गभीर, (५) स्तिमित, (६) अचल, (७) काम्पिल्य, (८) अक्षोभ, (९) प्रसेनजित् और (१०) विष्णुकुमार ।

विवेचन—सूत्र के अवान्तर विभाग को या ग्रन्थ के एक अश को अध्ययन कहते है। अध्ययन शब्द की व्याख्या एक श्लोक मे इस प्रकार की है—

अज्झप्परसाणयण कम्माण अवचओ उवचियाण ।
अणुवचओ च नवाण, तम्हा अज्झयणमिच्छति ।।

जिससे अध्यात्म—हृदय को शुभ ध्यान मे स्थित किया जाता है, जिसके द्वारा पूर्व सचित कर्मो का नाश होता है और नवीन कर्मो का वन्धन रुकता है, उसका नाम अध्ययन है।

४—"जइ णं भते ! समणेणं जाव[3] सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स ण भंते ! अज्झयणस्स अतगडदसाणं समणेणं जाव[4] सपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी से आर्य जबू स्वामी ने इस प्रकार निवेदन किया—"भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर ने आठवे अग अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के दश अध्ययन कथन किये हैं तो हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगडसूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?"

---

१ प्रथम वर्ग, सूत्र २
२ प्रथम वर्ग, सूत्र २
३ प्रथम वर्ग, सूत्र २
४ प्रथम वर्ग, सूत्र २

गौतम

५—"एवं खलु जबू ! तेणं कालेण तेण समएणं बारवई नाम नयरी होत्था। दुवालसजोयणा-यामा, नव-जोयण-वित्थिण्णा, धणवइ-मइ-निम्माया, चामीकर-पागारा, नानामणि-पंचवण्ण-कविसीसग-मडिया, सुरम्मा, अलकापुरी-सकासा, पमुदिय-पक्कीलिया पच्चक्ख देवलोगभूया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तीसे ण बारवईए णयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था। तत्थ ण रेवयए पव्वए नदणवणे नामं उज्जाणे होत्था। वण्णओ। सुरप्पिए नामं जक्खायतणे होत्था, पोराणे, से णं एगेण वणसडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, असोगवरपायवे।"

(आर्य सुधर्मा स्वामी जबू अनगार के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोले—) "जबू ! उस काल और उस समय मे द्वारका नाम की एक नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौडी, वैश्रमण देव कुबेर के कौशल से निर्मित, स्वर्ण-प्राकारो (कोटो) से युक्त, पचवर्ण के मणियो से जटित कगूरो से सुशोभित थी और कुबेर की नगरी अलकापुरी सदृश प्रतीत होती थी। प्रमोद और क्रीडा का स्थान थी, साक्षात् देवलोक के समान देखने योग्य, चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय थी, अभिरूप थी, प्रतिरूप थी।

उस द्वारका नगरी के बाहिर ईशान कोण मे रैवतक नाम का पर्वत था। उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नाम का एक उद्यान था। उस उद्यान का वर्णन औपपातिकसूत्र के वन-वर्णन के समान जान लेना चाहिए। वहाँ सुरप्रियनामक यक्ष का एक मदिर था, वह बहुत प्राचीन था और चारो ओर से अनेकविध वृक्षसमुदाय से युक्त वनखड से घिरा हुआ था। उस वनखड के मध्य मे एक सुन्दर अशोक वृक्ष था।"

विवेचन—"बारवई"—इस पद का सस्कृतरूप द्वारवती होता है। यह कृष्ण महाराज की नगरी का नाम है। वैदिक परपरा मे इसी को द्वारका कहते है। इस प्रकार द्वारवती तथा द्वारका ये दोनो शब्द एक ही नगरी के बोधक है।

इस सूत्र के अनुसार द्वारका नगरी "दुवालसजोयणायामा (द्वादशयोजनायामा) अर्थात् बारह योजन लम्बी थी। प्रस्तुत मे योजन का माप "आत्मागुल" से करना है। जिस काल मे जो मनुष्य होते हैं उनके अपने अगुल को आत्मागुल कहते हैं। ९६ अगुल का एक धनुष होता है और दो हजार धनुषो का एक कोस, तथा चार कोस का एक योजन होता है। इस तरह द्वारका नगरी की लम्बाई ४८ कोस की थी। ४८ कोस जितने लम्बे विशाल क्षेत्र मे द्वारका नगरी को बसाया गया था।

'धणवइ-मइ-निम्माया' अर्थात्—जिस नगरी का निर्माण कुबेर की बुद्धि द्वारा हुआ, उसे धनपतिमति-निर्माता कहते हैं। प्रश्न होता है कि क्या मर्त्यलोक मे कोई देव कुबेरादि नगरी का निर्माण करने आते हैं ?

इसका समाधान एक रहस्य मे है—"जब यादव जरासध प्रतिवासुदेव के आतक से आतकित हो गए और शौर्यपुर को छोडकर समुद्र के समीप सौराष्ट्र मे पहुँचे, तब नगरी के योग्य तथा सुरक्षित स्थान देखकर कृष्ण महाराज ने वहाँ अट्ठम तप किया, धनपति वैश्रमण का आराधन किया।

आराधना से प्रसन्न हुए वैश्रमण देव प्रकट हो गए। तव कृष्ण महाराज ने उनको नगरी वसाने के लिये निवेदन किया। तदनन्तर धनपति देव ने आभियोगिक देवो द्वारा दिव्य योजनानुसार शीघ्र ही वहाँ नगरी बसा दी। नगरी के द्वार बहुत बडे-वडे थे, इस कारण इसका नाम द्वारवती रखा गया। आगे चलकर यही द्वारवती द्वारका कहलाने लगी।

इस द्वारका नगरी को सूत्रकार ने "अलकापुरीसकासा" अर्थात् अलकापुरी सदृश कहा है। वैश्रमण देव की नगरी का नाम अलकापुरी है। यह अलकापुरी अद्वितीय सौन्दर्य वाली है। द्वारका नगरी का निर्माण स्वय कुबेर ने किया है। वे अपनी नगरी की सभी विशेषताओ को द्वारका मे ले आए थे, उसमे उन्होने कोई न्यूनता नही रहने दी थी। अत द्वारका को कुवेरनगरी से उपमित करना या उसे कुबेर नगरी के तुल्य बताना उचित ही है।

पासादीया आदि ४ शब्दो के अर्थ इस प्रकार है—हृदय मे प्रमोद-प्रसन्नता पैदा करनेवाली नगरी 'पासादीया' है। जिस नगरी को देखदेखकर आखे श्रान्ति-थकावट अनुभव न करे, निरन्तर देखने की ही उनमे लालसा बनी रहे, उसे 'दर्शनीया' कहते है। जिस नगरी की दीवारो पर राजहस, चक्रवाक् सारस, हाथी, महिष, मृग आदि के तथा जल मे स्थित (विहार करते हुए) मगरमच्छ आदि जलीय प्राणियो के सुन्दर चित्र वने हुए हो अथवा जिस नगरी को एक वार देख लेने पर भी, उसे पुन देखने के लिये दर्शक की इच्छा वनी रहती हो, उस नगरी को 'अभिरूपा' कहते हैं। जिस नगरी को जब भी देखो तव ही उस मे देखने वाले को कुछ नवीनता प्रतिभासित हो, उस नगरी को 'प्रतिरूपा' कहते है।

६—तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ। महया० रायवण्णओ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाण दसण्हं दसाराणं बलदेवपामोक्खाण पंचण्ह महावीराण, पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दतसाहस्सीण, महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीण, वीरसेणपामोक्खाण एगवीसाए वीरसाहस्सीण, उग्गसेणपामोक्खाण सोलसण्हं रायसाहस्सीणं, रुप्पिणीपामोक्खाण सोलसण्हं देविसाहस्सीणं अणंगसेणापामोक्खाण अणेगाण गणियासाहस्सीण, अण्णेसिं च बहूणं, ईसर जाव [तलवर-माडंबिय-कोडु बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ] सत्थवाहाण बारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्थस्स[1] आहेवच्च जाव [पोरेवच्च भट्टित्त सामित्त महयरत्त आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे, महयाऽऽहय-णट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-तालतुडिय-घण-मुयग-पडुप्पवाइयरवेण विउलाइं भोगभोगाइ भुंजमाणे] विहरइ।

उस द्वारका नगरी मे कृष्ण नाम के वासुदेव राजा राज्य करते थे, वे महान् थे। (इनका विशेष वर्णन उववाई सूत्र से जान लेना चाहिए।) वे (वासुदेव श्रीकृष्ण) समुद्रविजय की प्रधानता-वाले दश दशार्ह, दश पूज्यजन, बलदेव की प्रधानतावाले पॉच महावीर, प्रद्युम्न की प्रधानतावाले साढे तीन करोड राजकुमार, शाब की प्रधानतावाले ६० हजार दुर्दान्त कुमार, महासेन की प्रधानता वाले १६ हजार राजा, रुक्मिणी की प्रधानतावाली १६ हजार देविया-रानिया, अनगसेना की प्रधानतावाली हजारो गणिकाए, तथा और भी अनेको ऐश्वर्यशाली, यावत् [तलवर, माडम्बिक,

१. पाठान्तर-'समतस्स'—अगसुत्ताणि-भाग ३, पृ ५४३
'सम्मत्तस्स'—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल-जयपुर सस्करण पृ १२

कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति], सार्थवाह—इन सब पर तथा द्वारका एव आधे भारतवर्ष पर आधिपत्य यावत् [पुरोवर्तित्व (आगेवानी), भर्तृत्व (पोपकता), स्वामित्व, महत्तरत्व (वडप्पन) और आज्ञाकारक सेनापतित्व करते हुए—पालन करते हुए, कथा-नृत्य, गीतिनाट्य, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य, मृदग को कुशल पुरुषो के द्वारा वजाये जाने से उठनेवाली महाध्वनि के साथ विपुल भोगो को भोगते हुए] विचरते थे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे द्वारकाधीश कृष्ण महाराज के राज्य-वैभव का वर्णन किया गया है। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि महाराज कृष्ण की राजधानी मे राजयोग्य सभी वस्तुए उपलब्ध थी और इनका राज्य आर्थिक, सामाजिक, सैनिक सभी दृष्टियो से सम्पन्न था।

'दसण्ह दसाराण' इन पदो की व्याख्या करते हुए वृत्तिकार अभयदेवसूरि कहते है—

'समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्तिमित सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव, धरण पूरणस्तथा ॥ १ ॥

अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती मद्री च विश्रुते ॥ २ ॥

दश च तेऽर्हाश्च-पूज्या इति दशार्हा ।'

अर्थात्—कृष्ण महाराज के पिता वसुदेव दस भाई थे। (१) समुद्रविजय, (२) अक्षोभ्य, (३) स्तिमित, (४) सागर, (५) हिमवान्, (६) अचल, (७) धरण, (८) पूरण, (९) अभिचन्द्र, (१०) वसुदेव। ये दसो वडे वली थे। समुद्रविजय इनमे सवसे वडे थे और वसुदेव सवसे छोटे। इन के कुन्ती और माद्री ये दोनो वहिने थी।

'पजुण्णपामोक्खाण अद्धुट्ठाण कुमारकोडीण'—अर्थात् साढे तीन करोड कुमार थे और इन मे प्रद्युम्न प्रमुख थे।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि कुमारो की इतनी वडी सख्या क्या द्वारका नगरी मे ही विद्यमान थी ? या कुछ राजकुमार द्वारका मे और कुछ द्वारका से वाहर रहते थे ? इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने कुमारो की जो सख्या वतलाई है, वह केवल द्वारकानिवासी राजकुमारो की नही, प्रत्युत यह सभी राजकुमारो की है। महाराज कृष्ण के समस्त राज्य मे इनका निवास था। उस समय कृष्ण महाराज का राज्य वैताढ्य पर्वत तक फैला हुआ था, अत कुमारो की उक्त सख्या भारत वर्ष के तीनो खडो मे निवास करती थी।

सूत्रकार ने आगे चलकर 'उग्गसेणपामोक्खाण सोलसण्ह रायसाहस्सीण' ये पद दिये है। इनका अर्थ है—सोलह हजार राजा थे, इनके प्रमुख महाराज उग्रसेन थे। इन के राज्य भी तीनो खडो मे थे और तीनो खडो मे इनका निवास था।

सूत्रकार ने कुमारो की, राजाओ की तथा अन्य लोगो की सख्या का जो निर्देश किया है इसके पीछे यही भावना है कि कृष्ण महाराज के राज्य मे ये सव लोग रहते थे और इन सव पर कृष्ण महाराज राज्य करते थे। जिस प्रकार आजकल जनगणना द्वारा जनता की सख्या का पता लगाया जाता है और देश के निवासियो की जाति, धर्म और भाषा आदि का वोध प्राप्त किया जाता है, ठीक इसी प्रकार उस समय वासुदेव कृष्ण के राज्य मे कितने कुमार थे ? कितने राजा थे ? कितना सैनिक

दल था ? कितनी रानियाँ थी ? कितनी गणिकाए थी ? आदि सभी बातो का सूत्रकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है। इस का यह अर्थ नही समझना चाहिए कि सूत्रकार ने जिन लोगो का परिचय कराया है, वे सब द्वारका मे ही रहा करते थे। 'दुद्दन्तसाहस्सीण'—अर्थात् शत्रुओ द्वारा जिनका दमन न किया जा सके, जिन्हे पराजित न किया जा सके। महाराज कृष्ण के राज्य मे ऐसे ६० हजार दुर्दान्त थे।

'बलवग्गसाहस्सीण'—अर्थात् बल का अर्थ है सैनिक। समूह को भी वल कहते है। दोनों को मिलाकर अर्थ होगा—सैनिकसमूह। भाव यह है कि वासुदेव कृष्ण के पास ५६ हजार सैन्य-समूह था। महासेन उस सैन्य-समूह का प्रमुख था।

वासुदेव कृष्ण का राज्य तीन खडो मे था। इतने वडे प्रदेश मे ५६ हजार ही सैनिक कैसे हो सकते हैं ? तीनो खडो की सुरक्षार्थ तो करोडो सैनिक अपेक्षित है। फिर सूत्रकार ने जो ५६ हजार सैनिक वताये इसका क्या कारण है ? इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि 'वलवग्ग' शब्द सैन्यसमूह का बोधक है। सैन्यसमूह का अर्थ है—सैनिको का समुदाय, अत. सूत्रकार ने जो बलवर्ग शब्द दिया है यह सैनिकदलो—सैनिक टुकडियो का परिचायक है। फिर एक सैनिक दल मे भले ही हजारो सैनिको की सख्या हो। अत यहाँ यही भाव निष्पन्न होता है कि कृष्ण महाराज के पास ५६ हजार सैनिक-समुदाय थे।

ईसर (ईश्वर) याने युवराज। तलवर—राजा के कृपापात्र को अथवा जिन्होंने राजा की ओर से उच्च आसन (पदवी विशेष) प्राप्त कर लिया है, ऐसे नागरिकों को तलवर कहते है। जिसके निकट दो-दो योजन तक कोई ग्राम न हो उस प्रदेश को मडम्व कहते है, मडम्व के अधिनायक को माडम्बिक कहा जाता है। कौटुम्बिक-कुटुम्बो के स्वामी को कौटुम्बिक और व्यापारी पथिको के समूह के नायक को सार्थवाह कहते हैं।

'अद्धभरहस्स'—इस मे दो पद है—एक अर्ध और दूसरा भरत। अर्द्ध आधे को कहते है, भरत का अर्थ है भारतवर्ष। भरतक्षेत्र का अर्द्ध चन्द्र जैसा आकार है। तीन ओर लवणसमुद्र और उत्तर मे चुल्लहिमवन्त पर्वत है। अर्थात् लवणसमुद्र और चुल्लहिमवन्त पर्वत से उसकी सीमा वधी हुई है। भारत के मध्य मे वैताढ्य पर्वत है। इस से भरतक्षेत्र के दो भाग हो जाते है। वैताढ्य की दक्षिण ओर का दक्षिणार्ध भरत और उत्तर की ओर का उत्तरार्ध भरत है। चुल्लहिमवन्त पर्वत के ऊपर से निकलने वाली गगा और सिन्धु नदियाँ वैताढ्य की गुफाओ से निकलकर लवणसमुद्र मे मिलती हैं। इस से भरत के छह विभाग होते हैं। इन्ही छह विभागो को छह खड कहते है। चक्रवर्ती का राज्य इन छह खडो मे होता है और वासुदेव का तीन खडो मे अर्थात् अर्द्ध भरत मे होता है। महाराज कृष्ण वासुदेव थे, अत वे अर्द्ध भरत पर शासन कर रहे थे।

७—तत्थ ण बारवईए नयरीए अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ। महया हिमवंत०[1] वण्णओ। तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइ तसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले—

---

१ अगसुत्ताणि-भाग ३, पृ ५४३ मे यह पाठ इस प्रकार है—
हिमवत-[महत-मलय-मदर-महिंदसारे] वण्णओ। [ ] इतना पाठ अधिक है।

सुमिणदंसण-कहणा, जम्मं बालत्तण कलाओ य ।
जोव्वण-पाणिग्गहण, कण्णा वासा य भोगा य ।।[1]

नवरं गोयमो[2] अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेण पाणिं गेण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ ।

उस द्वारका नगरी मे अन्धकवृष्णि नाम का राजा निवास करता था। वह हिमवान्—हिमालय पर्वत की तरह महान् था। (उसकी ऋद्धि-समृद्धि का वर्णन औपपातिक सूत्र मे किया गया है।) अन्धकवृष्णि राजा की धारिणी नाम की रानी थी। कभी किसी समय वह धारिणी रानी अन्यत्र वर्णित (पुण्यवान् जन के योग्य) उत्तम शय्या पर शयन कर रही थी, जिसका वर्णन महाबल (के प्रकरण मे वर्णित शय्या के) समान समझ लेना चाहिये। तत्पश्चात्—

स्वप्न-दर्शन, पुत्रजन्म, उसकी बाल-लीला, कलाज्ञान, यौवन, पाणिग्रहण, रम्य प्रासाद एव भोगादि—(यह सब वर्णन भी महाबल जैसा ही समझना)। विशेष यह कि उस बालक का नाम गौतम रखा गया, उसका एक ही दिन मे आठ श्रेष्ठ राजकुमारियो के साथ पाणिग्रहण करवाया गया तथा दहेज मे आठ-आठ प्रकार की वस्तुए दी गई।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे गौतम कुमार के गर्भ मे आने से लेकर विवाह तथा विषयभोगो के उपभोग तक का वर्णन किया गया है, अब सूत्रकार अग्रिम सूत्र मे परमाराध्य भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे पहुँच कर गौतम कुमार के दीक्षित होने का वर्णन करते है—

८—तेण कालेणं तेण समएण अरहा अरिट्ठनेमी आइगरे[3] जाव [सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ, चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। धम्मं सोच्चा "ज नवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। देवाणुप्पियाण [अतिए मु डे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वयामि] एवं जहा मेहे जाव (तहा गोयमे वि) [सयमेव पचमुट्ठियं लोयं करेइ। करित्ता जेणामेव समणे भगव अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समण भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ। करित्ता वंदइ, नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता एव वयासी—

आलित्ते णं भते! लोए, पलित्ते णं भते! लोए, आलित्तपलित्ते णं भंते! लोए जराए मरणेण य। से जहा नामए केई गाहावई आगारसि झियायमाणसि जे तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगतं अवक्कमइ, एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ। एवामेव मम वि एगे आया भडे इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ। त इच्छामि णं देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मु डावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तिय धम्ममाइक्खिय।

तए णं समणे भगव अरिट्ठनेमी सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया! गंतव्वं चिट्ठियव्व णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं भु जियव्व भासियव्व, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहि भूएहि जीवेहि सत्तेहि संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च ण अट्ठे णो पमाएयव्वं।

---

१. यह गाथा अगसुत्ताणि मे नही है।

२ M C Modi द्वारा सम्पादित अतगड मे 'गोयमो नामेण' पाठ है।

३. सूत्र न २ मे प्रस्तुत पाठ पूर्ण किया गया है। यहा विहरइ हेतु अपूर्ण पाठ ब्राकेट मे पूर्ण किया गया है।

एकेन्द्रिय) की रक्षा करके सयम का पालन करना चाहिए। इस विपय मे तनिक भी प्रमाद नही करना चाहिए।

तत्पश्चात् गौतमकुमार मुनि ने श्रमण भगवान् अरिष्टनेमि के निकट इस प्रकार का यह धर्म सम्बन्धी उपदेश सुनकर और हृदय मे धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अगीकार किया। वे भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करते, उसी प्रकार खडे रहते, उसी प्रकार बैठते, उसी प्रकार शयन करते, उसी प्रकार आहार करते और उसी प्रकार मधुर भाषण करते हुए प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणो, भूतो, जीवो और सत्वो की यतना करके सयम का आराधन करने लगे]। अनगार बन जाने पर गौतम निर्ग्रन्थ-प्रवचन को सन्मुख रखकर भगवान् की आज्ञाओ का पालन करते हुए विचरने लगे।

९—तए ण से गोयमे अण्णया कयाइ अरहओ अरिट्ठनेमिस्स तहारूवाण थेराण अतिए सामाइयमाइयाइ एक्कारस अगाइ अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहि चउत्थ जाव [छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहि मासद्धमासखमणेहि विविहेहि तवोकम्मेहि] अप्पाण भावेमाणे विहरइ। तए ण अरहा अरिट्ठनेमी अण्णया कयाइं बारवईओ नयरीओ नंदणवणाओ पडिणिक्खमइ, बहिया जणवयविहार विहरइ।

तए ण से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करेत्ता वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि ण भते! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए। एवं जहा खदओ तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ। गुणरयणं पि तवोकम्म तहेव फासेइ निरवसेसं। जहा खदओ तहा चिंतेइ, तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धि सेत्तु जं दुरूहइ, बारस[1] वरिसाइ परियाए मासियाए संलेहणाए जाव [अप्पाण झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुडभावे, केसलोए, बभचेरवासे, अण्हाणग, अच्छत्तय, अणुवाहणयं, भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइ माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोव-सग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जति तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहि] सिद्धे-बुद्धे-मुत्ते-परिनिव्वाए-सव्वदुक्खपहीणे।

निक्षेप

एव खलु जबू! समणेण जाव[2] सपत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाण पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

इसके पश्चात् गौतम अनगार ने अन्यदा किसी समय भगवान् अरिष्टनेमि के सान्निध्य मे रहने वाले आचार, विचार की उच्चता को पूर्णतया प्राप्त स्थविरो के पास सामायिक से लेकर आचारागादि ११ अगो का अध्ययन किया यावत् [अध्ययन करके फिर अनेक उपवास, बेला, तेला,

---

१. कही-कही 'मासियाए सलेहणाए बारस वरिसाइ परियाए' ऐसा पाठ है परन्तु इसमे जाव की पूर्ति बराबर नही बैठती अतः उल्लिखित पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है।

२ वर्ग १, सूत्र २

चौला, पचौला, मासखमरण, अर्धमासखमरण आदि विविध प्रकार के तप से] आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। अरिहत भगवान् अरिष्टनेमि ने अब द्वारका नगरी के नन्दनवन मे विहार कर दिया और वे अन्य जनपदो मे विचरण करने लगे।

तपस्या और शास्त्र-स्वाध्याय मे तत्पर अनगार गौतम अवसर पाकर भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा मे उपस्थित हुए। विधिपूर्वक वदना, नमस्कार करने के अनन्तर उन्होने भगवान् से निवेदन किया—

"भगवन्! मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा दे तो मै मासिकी भिक्षु-प्रतिमा (प्रतिज्ञा विशेष) की आराधना करूँ।" भगवान् से आज्ञा पाकर वे साधना मे लीन हो गए। जैसे स्कन्धक मुनि ने साधना की वैसे ही मुनि गौतमकुमार ने भी बारह भिक्षुप्रतिमाओ का आराधन करके गुणरत्न नामक तप का भी वैसे ही आराधन किया। पूर्ण रूप से स्कन्धक की तरह ही चितन किया, भगवान् से पूछा तथा स्थविर मुनियो के साथ वैसे ही शत्रु जय पर्वत पर चढे। १२ वर्ष की दीक्षा पर्याय पूर्ण कर एक मास की सलेखना द्वारा यावत् [आत्मा को आराधित किया। अनशन द्वारा साठ भोजनो का परित्याग कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव-साधुवृत्ति, मुण्डभाव-द्रव्य से सिर को मु डित करना, भाव से परिग्रह का त्याग करना, केश लोच अर्थात् बालो को हाथो से उखाडना, ब्रह्मचर्यवास, अस्नानक—स्नान न करना, अछत्रक—छत्र का प्रयोग न करना, उपानह—जूते का उपयोग न करना, भूमिशय्या—भूमि पर शयन करना, फलकशय्या—तख्त पर शयन करना, परघरप्रवेश—दूसरो के घरो मे भिक्षार्थ प्रवेश करना, लाभालाभ—किसी समय वस्तु का प्राप्त होना, किसी समय न होना, मानापमान—कही मान कही अपमान होना, दूसरो द्वारा की गई हीलना—अवहेलना, निंदा, खिसना—लोगो के सामने जाति आदि का गुप्त रहस्य प्रकट करना, ताडना—मारना, गर्हा, निंदा, ऊँच-नीच नाना प्रकार के २२ परीषह इन्द्रियो के दु खदायक उपसर्ग सहन करना [आदि किया जाता है, अन्त मे उस प्रयोजन को सिद्ध कर लिया और अन्तिम श्वासो द्वारा] सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सकल कर्मजन्य सन्तापो से रहित एव सब प्रकार के दु खो से विमुक्त हो गए। श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे दीक्षा के अनन्तर गौतम अनगार की अध्ययनशीलता, तपोभावना, और सम्यक् आचरण से लेकर अन्तिमविधि कर सिद्ध पद की उपलब्धि तक का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'तहारूवाण थेराण' अर्थात् तथारूप स्थविर। तथारूप का अर्थ है—शास्त्र मे वर्णन किये गये आचार का पालन करने वाले और स्थविर का अर्थ है वृद्ध साधु। स्थानाग सूत्र मे इसके तीन भेद बताए हैं—(१) वय स्थविर—साठ वर्ष की आयु वाले, (२) सूत्र स्थविर—स्थानाग-समवायाग आदि अग सूत्रो के ज्ञाता, (३) प्रव्रज्या-स्थविर-२० वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले साधु।

सामायिक के ५ अर्थ प्रसिद्ध है—(१) सामायिक चारित्र-सर्व सावद्य योगो से निवृत्ति, (२) श्रावक का नवम व्रत, देशविरति रूप सामायिक चारित्र, (३) सामायिक श्रु त, आचाराग आदि, (४) आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन और (५) द्रव्य लेश्या से उत्पन्न होने वाला परिणाम—अध्यवसाय।

प्रस्तुत अर्थो मे "आवश्यक सूत्र का प्रथम अध्ययन" यह अर्थ अधिक अभीष्ट है। अत. मुनि गौतम ने सामायिक आदि से लेकर ११ अगो का अध्ययन किया। अब प्रश्न होता है कि—ग्यारह

अगो मे अन्तकृद्दशाग का भी निर्देश किया गया है। इसके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे श्री गौतम-कुमार का जीवन प्रस्तुत हुआ है। तो क्या वह गौतम कुमार यही था या अन्य ? यदि यही था तो उसने अन्तकृद्दशाग का अध्ययन कैसे किया ? जिसका निर्माण ही बाद मे हुआ है ?

इसका समाधान इस प्रकार हो सकता है कि प्रथम अध्ययन मे जिस गौतम कुमार का वर्णन किया गया है यही हमारे द्वारकाधीश महाराज अन्धकवृष्णि के सुपुत्र है। अब रही बात पढने की। इसका समाधान यह है कि भगवान् अरिष्टनेमि के गणधर अनुपम ज्ञानादि गुणो के धारक थे। उनकी अनेको वाचनाए थी, जो कि इन्ही पूर्वोक्त अगो एव उपागो के नाम से प्रसिद्ध थी। प्रत्येक मे विषय भिन्न-भिन्न होता था और उनका अध्ययन-क्रम भी विभिन्न ही होता था। वर्तमान काल मे जो वाचना उपलब्ध हो रही है, वह भगवान् महावीर के पट्टधर श्रद्धेय श्रीसुधर्मा स्वामी की है। गौतम-कुमार ने जो एकादश अग पढे थे वे तत्कालीन किसी गणधर की वाचना के ११ अग थे। वर्तमान मे उपलब्ध वाचनावाले अगशास्त्रो का उन्होने अध्ययन नही किया। यह वाचना तो उस समय मे थी ही नही, अत इस वाचना के पढने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता।

आचार्य अभयदेव सूरि ने भगवती सूत्र की व्याख्या मे स्कन्धक कुमार के प्रसग को लेकर ऐसी ही आशका उठाकर उसका जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह मननीय एव प्रस्तुत प्रकरण मे उत्पन्न शका के समाधान के लिये पठनीय है—

'एक्कारस अगाइ अहिज्जइ'—इह कश्चिदाह-नन्वनेन स्कन्धकचरितात् प्रागेवैकादशाग-निष्पत्तिरवसीयते, पचमागान्तर्भू त च स्कन्धकचरितमुपलभ्यते, इति कथ न विरोध ? उच्यते-श्रीमन्-महावीर-तीर्थे किल नव वाचना । तत्र च सर्ववाचनासु स्कन्धक-चरितात् पूर्वकाले ये स्कन्धकचरिता-भिधेया अर्थास्ते चरितान्तरद्वारेण प्रज्ञाप्यन्ते, स्कन्धकचरितोत्पत्तौ च सुधर्मस्वामिना जबूनामान स्वशिष्यमगीकृत्याधिकृतवाचनायामस्या स्कन्धकचरितमेवाश्रित्य तदर्थप्ररूपणा कृतेति न विरोध । अथवा सातिशयादित्वात् गणधराणामनागतकाल-भाविचरित—निवन्धनमदुष्टमिति । भाविशिष्य-सन्तानापेक्षया अतीतकालनिर्देशोऽप्यदुष्ट इति ।[1]

अर्थात्—यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्कन्धकचरित से पहले ही ११ अगो का निर्माण हो चुका था। स्कन्धकचरित पचम अग (भगवतीसूत्र) मे उपलब्ध होता है। तब स्कन्धक ने ११ अग पढे, इसका क्या अर्थ हुआ ? क्या उसने अपना ही जीवन पढा ? इसका उत्तर इस प्रकार है—

भगवान् महावीर के तीर्थशासन मे नौ वाचनाए थी। प्रत्येक वाचना मे स्कन्धक के जीवन का अर्थ (शिक्षारूप प्रयोजन) समानरूप से अवस्थित रहता था। अन्तर केवल इतना होता था कि जीवन के नायक के सभी साथी भिन्न-भिन्न होते थे। भाव यह है कि जो शिक्षा स्कन्धक के जीवन से मिलती है उसी शिक्षा को देने वाले अन्य जीवन-चरितो का सकलन तत्कालीन वाचनाओ मे मिलता था। सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जवू स्वामी को लक्ष्य करके अपनी इस वाचना मे स्कन्धक के जीवनचरित से ही उस अर्थ की प्ररूपणा की है, जो अर्थ अन्य वाचनाओ मे गर्भित था, अत यह स्पष्ट है कि स्कन्धक ने जो अगादि शास्त्र पढे थे, वे सुधर्मास्वामी की वाचना के नही थे।

---

१ भगवतीसूत्र-शतक-२, उद्देशक-१, सूत्र ९३

दूसरी बात यह भी हो सकती है कि गणधर महाराज अतिशय (ज्ञान विशेष) के धारक होते है, इसलिये उन्होने भविष्य मे होने वाले चरितो का भी सकलन कर दिया। इसके अतिरिक्त भावी शिष्यपरम्परा की अपेक्षा से अतीत काल का निर्देश भी दोपयुक्त नही कहा जा सकता।

'चउत्थ जाव भावेमाणे' मे उपयुक्त चतुर्थ शब्द व्रत—एक उपवास का बोधक है, तथा 'जाव' अर्थात् यावत् और भावेमाणे का अर्थ है—भावयन्-वासयन्—अर्थात् अपने जीवन मे उसका प्रयोग करता हुआ।

'मासिय भिक्खुपडिम' का अर्थ है मासिकी भिक्षुप्रतिमा। प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा। भिक्षु की प्रतिज्ञा को भिक्षु-प्रतिमा कहते है। ये प्रतिमाए बारह होती है। उनका विस्तृत विवेचन दशाश्रुत-स्कन्ध मे किया गया है।

इस प्रतिमा का धारक साधु एक अन्न की और एक पानी की दत्ति (दाता द्वारा दिए जाने वाले अन्न और पानी की अखण्डधारा दत्ति कहलाती है।) लेता है। जहा एक व्यक्ति के लिये भोजन बना है, वहा से भोजन लेता है, गर्भवती या छोटे बच्चे की मा के लिये बनाया गया भोजन वह नही लेता है। दुग्धपान छुडवाकर भिक्षा देने वाली स्त्री तथा अपने आसन से उठकर भोजन देने वाली आसन्नप्रसवा स्त्री से भोजन नही लेता। जिसके दोनो पैर देहली के भीतर हो या बाहर हो उससे आहार नही लेता। दिन के आदि, मध्य और चरम इन तीन भागो मे से एक भाग मे वह भिक्षा को जाता है। परिचित स्थान पर वह एक रात रहता है, अपरिचित स्थान पर एक या दो राते ठहर जाता है, वह (१) याचनी-आहार की याचना करना, (२) पृच्छनी-मार्ग पूछना, (३) अनुज्ञापनी-स्थान आदि के लिये आज्ञा लेना, (४) प्रश्नो का उत्तर देना, ये चार भाषाए बोलता है। वह (१) अध आराम गृह—जिसके चारो ओर बाग हो, (२) अधोविकट गृह—चारो ओर से खुला हो, ऊपर से ढका हो, (३) अधोवृक्ष मूलगृह—वृक्ष का मूल या वहाँ पर बना स्थान, इन स्थानो पर स्वामी की आज्ञा लेकर ठहर सकता है। इन स्थानो मे कोई आग लगा दे तो, यह मुनि जीवन की सुरक्षा के लिये स्वय स्थान से बाहर नही निकलता। विहार मे यदि पाव मे काटा लग जाए तो उसे नही निकालता, आखो मे धूल पड जाए तो उसको भी दूर नही करता। जहाँ सूर्य अस्त हो जाए वही ठहर जाता है। शरीरशुद्धि को छोडकर जल का प्रयोग नही करता। विहार के समय यदि सामने कोई हिसक जीव आए तो डरकर पीछे नही हटता। यदि कोई जीव उसे देखकर डरता हो तो वह एक ओर हो जाता है। शीत-निवारण के लिये गरम स्थानो या वस्त्रो किवा तथारूप वस्तुओ का सेवन नही करता। गरमी का परिहार करने के लिये शीत स्थान मे नही जाता। इस विधि से मासिकी प्रतिमा का पालन होता है। इसका समय एक मास का है। इस प्रकार साधु के अभिग्रह विशेष का नाम भिक्षु-प्रतिमा है। पहली मासिकी, दूसरी द्वैमासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी चातुर्मासिकी पाचवी पाञ्चमासिकी छठी षाण्मासिकी और सातवी साप्तमासिकी कहलाती हैं। पहली प्रतिमा मे अन्न-पानी की एक दत्ति, दूसरी मे दो, तीसरी मे तीन, चौथी मे चार, पाचवी मे पाच, छट्ठी मे छह, सातवी मे सात दत्तिया ली जाती है। आठवी प्रतिमा का समय सात दिन-रात है। नवमी का समय भी सात दिन-रात है। आठवी मे चौविहार उपवास करना होता है। नवमी मे चौविहार बेले-बेले पारणा करना होता है। समय सात दिवस का है। दसवी का समय भी सात दिन-

रात का होता है। इसमे चौविहार तेले-तेले पारणा करना होता है। ग्यारहवी प्रतिमा का समय एक अहोरात्र है। बारहवी प्रतिमा केवल एक रात्रि की है। इसका आराधन चौविहार तेले से होता है। इन सभी प्रतिमाओ का आराधन श्रीगौतम मुनि जी ने किया था।

'गुणरयण पि तवोकम्म' का अर्थ है—गुणरत्न तप कर्म। तपो के नाना प्रकारो मे गुणरत्न भी एक प्रकार का तप है। इसे 'गुण-रत्न-सवत्सर तप' भी कहते है। यह तप सोलह महीनो मे सम्पन्न होता है। जिस तप मे गुण रूप रत्नो वाला सम्पूर्ण वर्ष विताया जाय वह तप "गुण-रत्न सवत्सर' तप कहलाता है। इस तप मे सोलह मास लगते है। जिसमे से ४०७ दिन तपस्या के और ७३ दिन पारणा के होते हैं। यथा—

पण्णरस वीस चउव्वीस चेव चउव्वीस पण्णवीसा य।
चउव्वीस एक्कवीसा, चउवीसा सत्तवीसा य॥ १॥
तीसा तेत्तीसा वि य चउव्वीस छव्वीस अटठवीसा य।
तीसा वत्तीसा वि य सोलसमासेसु तवदिवसा॥ २॥
पण्णरस दसट्ठ छ पच चउर पचसु य तिण्णि तिण्णि त्ति।
पचसु दो दो य तहा सोलसमासेसु पारणगा॥ ३॥

अर्थात्—पहले मास मे पन्द्रह, दूसरे मास मे वीस, तीसरे मास मे चौवीस, चौथे मास मे चौवीस, पाचवे मास मे पच्चीस, छट्ठे मास मे चौवीस, सातवे मास मे इक्कीस, आठवे मास मे चौवीस, नौवें मास मे सत्ताईस, दसवे मास मे तीस, ग्यारहवे मास मे तैंतीस, वारहवे मास मे चौवीस, तेरहवे मास मे छव्वीस, चौदहवे मास मे अट्ठाईस, पन्द्रहवे मास मे तीस और सोलहवे मास मे वत्तीस दिन तपस्या के होते हैं। ये सव मिलाकर ४०७ दिन तपस्या के होते है। पारणा के दिन इस प्रकार है—

पहले मास मे पन्द्रह, दूसरे मास मे दस, तीसरे मास मे आठ, चौथे मास मे छह, पाचवे मास मे पाच, छट्ठे मास मे चार, सातवे मास मे तीन, आठवे मास मे तीन, नौवे मास मे तीन, दसवे मास मे तीन, ग्यारहवे मास मे तीन, वारहवे मास मे दो, तेरहवे मास मे दो, चौदहवे मास मे दो, पन्द्रहवे मास मे दो, सोलहवे मास मे दो दिन पारणे के होते है। ये सव मिलाकर ७३ दिन पारणा के होते हैं। तपस्या के ४०७ और पारणा के ७३ ये दोनो मिलाकर ४८० दिन होते है अर्थात् सोलह महीनो मे यह तप पूर्ण होता है। इस तप मे, किसी महीने मे तपस्या और पारणा के दिन मिलाकर तीस से अधिक हो जाते है और किसी मास मे तीस से कम रह जाते है, किन्तु कम और अधिक की एक दूसरे मे पूर्ति कर देने से तीस की पूर्ति हो जाती है, इस तरह से यह तप वरावर सोलह मास मे पूर्ण हो जाता है।

सक्षेप मे इस तप के अन्तर्गत पहले मास मे एकान्तर उपवास किया जाता है, दूसरे मास में वेले-वेले पारणा करना होता है, तीसरे महीने मे तेले-तेले पारणा करना पडता है। इसी प्रकार वढाते हुए सोलहवे महीने मे सोलह-सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है। इस तप मे दिन को उत्कुटुक आसन मे वैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि को वस्त्ररहित वीरासन मे वैठकर ध्यान लगाना होता है। गुणरत्नसवत्सर तप का यन्त्र भी देखने मे आता है, जो इस प्रकार है—

तप दिन																पारणा दिन	मर्व-दिन
३२	१६	१६														२	३४
३०	१५	१५														२	३२
२८	१४	१४														२	३०
२६	१३	१३														२	२८
२४	१२	१२														२	२६
३३	११	११	११													३	३६
३०	१०	१०	१०													३	३३
२७	९	९	९													३	३०
२४	८	८	८													३	२७
२१	७	७	७													३	२४
२४	६	६	६	६												४	२८
२५	५	५	५	५	५											५	३०
२४	४	४	४	४	४	४										६	३०
२४	३	३	३	३	३	३	३	३								८	३२
२०	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२						१०	३०
१५	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१५	३०

सलेहणाए—शब्द का अर्थ होता है—अन्तिम समय मे किया जाने वाला शरीर और कषाय आदि को कृश करने वाला तप-विशेष ।

२–१० अज्झयणाणि

१०—एवं जहा गोयमे तहा सेसा। वण्ही पिया, धारिणी माता, समुद्दे, सागरे, गभीरे, थिमिए, अयले, कपिल्ले, अक्खोमे, पसेणति, विण्हुए, एए एगगमा। पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।

२-१० अध्ययन

मूलार्थ—सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जवू से कहा—"हे जवू! मोक्ष को प्राप्त भगवान् महावीर ने आठवे अतगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययनो का यह अर्थ कहा है। जिस प्रकार गौतम का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शेष समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कापिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु, इन नव अध्ययनो का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। सबके पिता अन्धकवृष्णि थे। माता धारिणी थी। सब का वर्णन एक जैसा है। इस प्रकार दस अध्ययनो के समुदाय रूप प्रथम वर्ग का वर्णन किया गया है।"

बीओ वग्गो

उत्क्षेप

१—"जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स ण भते ! वग्गस्स अतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! *समणेण भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं* दोच्चस्स वग्गस्स अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता ।

सगहणी-गाहा

अक्खोभसागर खलु समुद्दहिमवतअचल नामे य ।
धरणे य पूरणे वि य अभिचदे चेव अट्ठमए ।।

अक्षोभादि-पद

जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्म । सोलसवासाइं परिआओ । सेत्तुंजे मासियाए सलेहणाए सिद्धी ।

आर्य जबू ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा—हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अतगड-दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय वर्ग के कितने अध्ययन फरमाये हैं ?

सुधर्मा स्वामी इसका समाधान करते हुए बोले—हे जबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने आठवे अग अतगडदशा के द्वितीय वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये है । उस काल और उस समय मे द्वारका नाम की नगरी थी । महाराज वृष्णि राज्य करते थे । रानी का नाम धारिणी था । उनके आठ पुत्र थे—

(१) अक्षोभकुमार, (२) सागरकुमार, (३) समुद्रकुमार, (४) हैमवन्तकुमार, (५) अचल-कुमार, (६) धरणकुमार, (७) पूर्णकुमार, (८) अभिचन्द्रकुमार । जैसे—प्रथम वर्ग मे गौतम कुमार का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इनके आठ अध्ययनो का वर्णन भी समझ लेना चाहिए । इन्होने भी गुणरत्न तप का आराधन किया और १६ वर्ष का सयम पालन करके अन्त मे शत्रु जय पर्वत पर एक मास की सलेखना द्वारा सिद्धिपद प्राप्त किया ।

—

तृतीय वर्ग

प्रथम अध्ययन : अनीयस

उत्क्षेप

१—जइ ण तच्चस्स । उक्खेवओ[1] । एव खलु जंबू ! तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

(१) अणीयसे, (२) अणतसेणे, (३) अणिहय, (४) विऊ, (५) देवजसे, (६) सत्तुसेणे, (७) सारणे, (८) गए, (९) सुमुहे, (१०) दुम्मुहे, (११) कूवए, (१२) दारुए, (१३) अणादिट्ठी ।

"जइ णं भते ! समणेण जाव सपत्तेण तच्चस्स वग्गस्स अतगडदसाण तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तच्चस्स णं भते ! वग्गस्स पढम-अज्झयणस्स अतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?"

अणीयसादि-पद

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेण समएण भद्दिलपुरे णाम नयरे होत्था । वण्णओ । तस्स ण भद्दिलपुरस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए सिरिवणे णाम उज्जाणे होत्था । वण्णओ । जियसत्तू राया । तत्थ णं भद्दिलपुरे णयरे नागे नामं गाहावई होत्था । अड्ढे जाव [दित्ते, वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे, बहुधन-बहुजायरूव-रयए, आओगप्पओगसंपउत्ते विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए बहुजणस्स] अपरिभूए । तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा-नामं भारिया होत्था । सूमाल-जाव [पाणि-पाया अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेआ माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वगसुदरगी ससि-सोमाकार-कत-पिय-दसणा] सुरूवा ।

मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अतगडदशा के तृतीय वर्ग के १३ अध्ययन फरमाये हैं—जैसे कि—

(१) अनीयस कुमार, (२) अनन्तसेन कुमार, (३) अनिहत कुमार, (४) विद्वत् कुमार, (५) देवयश कुमार, (६) शत्रुसेन कुमार, (७) सारण कुमार, (८) गज कुमार, (९) सुमुख कुमार, (१०) दुर्मुख कुमार, (११) कूपक कुमार, (१२) दारुक कुमार, (१३) अनादृष्टि कुमार ।

भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अन्तगडदशा के १३ अध्ययन बताये है तो भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त महावीर स्वामी ने अन्तगड सूत्र के तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

अनीयसादि-पद—सुधर्मा स्वामी बोले—हे जबू ! उस काल और उस समय मे भद्दिलपुर

---

१ उत्क्षेप पद पूर्ववत् समझ लेना ।

नामक नगर था। उसके ईशानकोण मे श्रीवननामक उद्यान था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगर मे नाग नाम का गाथापति रहता था। वह अत्यन्त समृद्धिशाली यावत् धनी तेजस्वी विस्तृत और विपुल भवनो, शय्याओ, आसनो, यानो और वाहनोवाला था तथा सुवर्ण रजत आदि धन की बहुलता से युक्त था। वह अर्थलाभ के उपायो का सफलता से प्रयोग करता था। भोजन करने के अनन्तर भी उसके यहा बहुतसा अन्न बाकी बच जाता था। उसके घर मे दास-दासी आदि और गाय-भैंस तथा बकरी आदि पशु थे, और वह बहुतो से भी पराभव को प्राप्त नही होता था। उस नाग गाथापति की सुलसा नाम की भार्या थी। वह अत्यन्त सुकोमल हाथ-पैरो वाली थी। उसकी पाचो इन्द्रियाँ और शरीर खामियो से रहित और परिपूर्ण था। वह (स्वस्तिक आदि) लक्षण, (तिल मषादि) व्यजन और गुणो से युक्त थी। माप, भार और आकार विस्तार से परिपूर्ण और समस्त सुन्दर अगो वाला उसका शरीर था। उसकी आकृति चन्द्र के समान सौम्य और दर्शन कान्त और प्रिय था। इस प्रकार उसका रूप बहुत सुन्दर था।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे इस वर्ग के अध्ययनो का और प्रथम अध्ययन मे प्रतिपाद्य अनीयस-कुमार के माता-पिता का वर्णन है।

२—तस्स ण नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसे नामं कुमारे होत्था। सूमाले जाव [अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरे, लक्खण-वजण-गुणोववेए माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वगसु दरगे ससिसोमागारे कते पियदंसणे] सुरूवे पचधाइपरिक्खित्ते जहा दढपइण्णे जाव [खीरधाईए मडणधाईए मज्जणधाईए अकधाईए कीलावणधाईए, बहूहि खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणियाहिं वडभियाहिं बब्बराहिं लासियाहिं लाउसियाहिं दामिलीहिं सिंहलीहिं मुरंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं णाणादेसीविदेसपरिमंडियाहिं इंगियचिंतियपत्थियवियाणियाहिं सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरुणिवंदपरियालपरिवुडे वरिसधरकंचुइमहयरवद-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थ साहरिज्जमाणे अकाओ अक परिभुज्जमाणे, परिगिज्जमाणे, चालिज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे, रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परिमिज्जमाणे परिमिज्जमाणे णिव्वायणिव्वाघायंसि] गिरिकदरमल्लीणे व चपगपायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

तए णं त अणीयसं कुमारं सातिरेगअट्ठवासजाय अम्मापियरो कलायरियस्स उवणेंति जाव [तए ण से कलायरिए अणीयस कुमारं लेहाइयाओ गणितप्पहाणाओ सउणिरुतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ अ करणओ य सेहावेइ, सिक्खावेइ।

त जहा—(१) लेह (२) गणियं (३) रूव (४) नट्ट (५) गीयं (६) वाइयं (७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समताल (१०) जूय (११) जणवाय (१२) पासय (१३) अट्ठावय (१४) पोरेकच्च (१५) दगमट्टिय (१६) अन्नविहिं (१७) पाणविहिं (१८) वत्थविहिं (१९) विलेवणविहिं (२०) सयणविहिं (२१) अज्ज (२२) पहेलिय (२३) मागहियं (२४) गाहं (२५) गीइयं (२६) सिलोय (२७) हिरण्णजुत्ति (२८) सुवण्णजुत्ति (२९) चुन्नजुत्ति (३०) आभरणविहिं (३१) तरुणीपडिकम्म (३२) हत्थिलक्खण (३३) पुरिसलक्खण (३४) हयलक्खण (३५) गयलक्खणं (३६) गोणलक्खण (३७) कुक्कुडलक्खण (३८) छत्तलक्खणं (३९) डंडलक्खण (४०) असि-लक्खण (४१) मणिलक्खणं (४२) कागणिलक्खण (४३) वत्थुविज्जं (४४) खधारमाणं (४५) नगरमाणं (४६) वूहं (४७) पडिवूहं (४८) चारं (४९) पडिचारं (५०) चक्कवूहं (५१)

गरुलवूहं (५२) सगडवूह (५३) जुद्ध (५४) निजुद्धं (५५) जुद्धातिजुद्ध (५६) अट्ठिजुद्धं (५७) मुट्ठिजुद्धं (५८) बाहुजुद्ध (५९) लयाजुद्धं (६०) ईसत्थ (६१) छरुप्पवायं (६२) धणुव्वेयं (६३) हिरन्नपागं (६४) सुवन्नपागं (६५) सुत्तखेडं (६६) वट्टखेड (६७) नालियाखेडं (६८) पत्तच्छेज्जं (६९) कटगछेज्ज (७०) सजीव (७१) निज्जीव (७२) सउणिरुअमिति ।

तए णं से कलायरिए अणीयसं कुमार लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सिहावेइ, सिक्खावेइ, सिहावेत्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिऊणं उवणेइ ।

तए णं अणीयसकुमारस्स अम्मापियरो त कलायरियं मधुरेहिं वयणेहिं विपुलेणं वत्थ-गध-मल्लालंकारेणं सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयति । दलइत्ता पडिविसज्जेन्ति ।

तए णं से अणीयसे कुमारे बावत्तरिकलापडिए णवगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसविहिप्पगारदेसी-भासाविसारए गीइरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी] अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

उस नाग गाथापति का पुत्र मुलसा भार्या का आत्मज अनीयस नामक कुमार था । (वह) सुकोमल था यावत् उसकी पाँचो इन्द्रियाँ पूर्ण एव निर्दोप थी । उसका शरीर विद्या, धन और प्रभुत्व आदि के सूचक सामुद्रिक लक्षणो, मस्सा-तिलादि व्यजनो और विनय, सुशीलता आदि गुणो से युक्त था । मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण एव अगोपाग-गत सौन्दर्य से परिपूर्ण था । चन्द्रमा के समान सौम्य (शान्त), कान्त, मनोहर, प्रियदर्शन और पाँच धायमाताओ से परिरक्षित वह दृढप्रतिज्ञ कुमार की तरह यावत् १—क्षीरधात्री—दूध पिलाने वाली धाय २—मडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, ३—मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, ४—क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और ५—अकधात्री—गोद मे लेने वाली धाय, इनके अतिरिक्त वह अनीयस कुमार अन्यान्य कुब्जा (कुबडी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक अनार्य देश मे उत्पन्न), वामन (बौनी), वडभी (वडे पेट वाली), वर्वरी (वर्वर देश मे उत्पन्न), वकुश देश की, योनक देश की, पल्हविक देश की, ईसिनिक, धौरुकिन ल्हासक देश की, लकुस देश की, द्रविड देश की, सिंहल देश की, अरब देश की, पुलिंद देश की, पक्कण देश की, वहल देश की, मुरुड देश की, शवर देश की, पारस देश की, इस प्रकार नाना देशो की परदेश—अपने देश से भिन्न राजगृह, को सुशोभित करने वाली, इगित (मुखादि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश के वेप को धारण करने वाली, निपुणो मे भी अतिनिपुण, विनययुक्त दासियो के द्वारा तथा स्वदेशीय दासियो द्वारा और वर्षधरो (प्रयोग द्वारा नपुसक बनाये हुए पुरुषो), कचुकियो और महत्तरको (अन्त पुर के कार्य की चिन्ता रखने वालो) के समुदाय से घिरा रहने लगा । वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ मे जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद मे जाता, गा-गा कर वहलाया जाता, उगली पकड कर चलाया जाता, क्रीडा आदि से लालन-पालन किया जाता एव रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित) गिरिगुफा मे स्थित चम्पक वृक्ष के समान सुखपूर्वक वढने लगा ।

तत्पश्चात् अनीयस कुमार को आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र वाला हुआ जानकर माता-पिता ने उसे कलाचार्य के पास भेजा। तत्पश्चात् कलाचार्य ने अनीयस कुमार को गणित जिनमे प्रधान है ऐसी लेख आदि शकुनिरुत (पक्षियो के शब्द) तक की वहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध करवाई तथा सिखलाई।

वे कलाएँ इस प्रकार है—(१) लेखन, (२) गणित, (३) रूप वदलना, (४) नाटक, (५) गायन, (६) वाद्य वजाना, (७) स्वर जानना, (८) वाद्य सुधारना, (९) समान ताल जानना (१०) जुआ खेलना (११) लोगो के साथ वादविवाद करना (१२) पासो से खेलना (१३) चौपड खेलना (१४) नगर की रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के सयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी को सस्कार करके शुद्ध करना एव उष्ण करना (१८) नवीन वस्त्र वनाना, रगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तु को पहचानना, तैयार करना, लेपन करना आदि (२०) शय्या वनाना, शयन करने की विधि जानना आदि (२१) आर्या छद को पहचानना और वनाना (२२) पहेलियाँ वनाना और बूझना (२३) मागधिका अर्थात् मगध देश की भाषा मे गाथा आदि वनाना (२४) प्राकृत भाषा मे गाथा आदि बनाना (२५) गीति छद वनाना (२६) श्लोक (अनुष्टुप छद) वनाना (२७) सुवर्ण वनाना उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२८) नई चादी वनाना, उसके आभूषण वनाना, पहनना आदि (२९) चूर्ण—गुलाव अवीर आदि वनाना और उसका उपयोग करना (३०) गहने घडना, पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना-प्रसाधन करना (३२) स्त्री के लक्षण जानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) छत्र-लक्षण जाना (३९) दड-लक्षण जाना (४०) खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणि के लक्षण जानना (४२) काकणी रत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या—मकान दूकान आदि इमारतो की विद्या (४४) सेना के पडाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नया नगर वसाने आदि की कला (४६) व्यूह-मोर्चा वनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सेनासचालन करना (४९) प्रतिचार—शत्रुसेना के समक्ष अपनी सेना को चलाना (५०) चक्रव्यूह—चाक के आकार मे मोर्चा बनाना (५१) गरुड के आकार का व्यूह वनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेष युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि से) युद्ध करना (५७) मुष्टियुद्ध करना (५८) वाहुयुद्ध करना (५९) लतायुद्ध करना (६०) वहुत को थोडा और थोडे को बहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि वनाना (६२) धनुष-वाण सवधी कौशल होना (६३) चादी का पाक बनाना (६४) सोने का पाक वनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कडा कुडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक घूक आदि पक्षियो की बोली पहचानना।

तत्पश्चात् वह कलाचार्य अनीयस कुमार को गणित प्रधान, लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त वहत्तर कलाएँ सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवा कर और सिखला कर माता-पिता के पास ले जाता है।

तव अनीयस कुमार के माता-पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनो से तथा विपुल वस्त्र, गध

माला और अलकारो से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया।

तब अनीयसकुमार बहत्तर कलाओ मे पडित हो गया। उसके नौ अग—दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये-से थे—अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृत से हो गये। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओ मे कुशल हो गया। वह गीति मे प्रीति वाला, गीत और नृत्य मे कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओ से विपक्षी का मर्दन करने मे समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमे आ गया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अनीयस कुमार के शैशव तथा शैक्षणिक जीवन का उल्लेख करके अब सूत्रकार उसके अग्रिम जीवन का वर्णन करते हुए कहते हैं—

३—तए णं त अणीयस कुमारं उम्मुक्कबालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसियाणं [सरिव्वयाणं सरित्तयाणं सरिसलावण्ण-रूप-जोव्वण-गुणोववेयाणं सरिसएहिंतो इब्भकुलेहिंतो आणिल्लियाणं] बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेण पाणिं गेण्हावेन्ति।

तए णं से नागे गाहावई अणीयसस्स कुमारस्स इम एयारूवं पीइदाण दलयइ, तंजहा-बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा महाबलस्स जाव [बत्तीस सुवण्णकोडीओ, मउडे मउडप्पवरे, बत्तीसं कुंडलजुए कुंडलजुयप्पवरे, बत्तीसे हारे हारप्पवरे, बत्तीस अद्धहारे अद्धहारप्पवरे, बत्तीस एगावलीओ एगावलिप्पवराओ, एव मुत्तावलीओ, एव कणगावलीओ, एव रयणावलीओ, बत्तीस कडगजोए कडगजोयप्पवरे, एवं तुडियजोए, बत्तीस खोमजुयलाइ खोमजुयप्पवराइ, एवं वडगजुयलाइं, एवं पट्टजुयलाइं, एवं दुगुल्लजुयलाइं बत्तीसं सिरीओ, बत्तीस हिरीओ, बत्तीसं धिईओ, कित्तीओ, बुद्धीओ, लच्छीओ, बत्तीसं णंदाइं, बत्तीसं भद्दाइं, बत्तीस तले तलप्पवरे, सव्वरयणामए, णियगवरभवणकेऊ बत्तीसं झए झयप्पवरे, बत्तीस वये वयप्पवरे, दसगोसाहस्सिएण वएण, बत्तीस णाडगाइ णाडगप्पवराइं बत्तीसबद्धेणं णाडएणं, बत्तीस आसे आसप्पवरे, सव्वरयणामए, सिरिघरपडिरूवए, बत्तीस हत्थी हत्थिप्पवरे सव्वरयणामए सिरिघरपडिरूवए बत्तीस जाणाइ जाणप्पवराइ, बत्तीसं जुगाइं जुगप्पवराइ, एव सिबियाओ, एव सदमाणीओ, एवं गिल्लीओ थिल्लीओ, बत्तीसं वियडजाणाइ वियडजाणप्पवराइ, बत्तीस रहे पारिजाणिए बत्तीसं रहे सगामिए, बत्तीसं आसे आसप्पवरे, बत्तीसं हत्थी हत्थीप्पवरे, बत्तीसं गामे गामप्पवरे दसकुलसाहस्सिएण गामेण, बत्तीसं दासे दासप्पवरे, एवं चेव दासीओ, एव किंकरे, एव कचुइज्जे, एवं वरिसधरे, एवं महत्तरए, बत्तीस सोवण्णिए, ओलंबणदीवे, बत्तीस रूप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीस सुवण्णरूप्पामए ओलंबणदीवे, बत्तीसं सोवण्णिए उक्कचणदीवे, बत्तीसं पंचरदीवे, एव चेव तिण्णि वि, बत्तीस सोवण्णिए थाले, बत्तीस रूप्पमए थाले, बत्तीसं सुवण्णरूप्पमए थाले, बत्तीस सोवण्णियाओ पत्तीओ ३, बत्तीस सोवण्णियाइं थासयाइं ३, बत्तीसं सोवण्णियाइं मल्लगाइं ३, बत्तीस सोवण्णियाओ तालियाओ ३, बत्तीस सोवण्णियाओ कावइआओ, बत्तीस सोवण्णिए अवएडए ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ अवयक्काओ ३, बत्तीस सोवण्णिए पायपीढए ३, बत्तीस सोवण्णियाओ भिसियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ करोडियाओ ३, बत्तीसं सोवण्णिए पल्लंके ३, बत्तीसं सोवण्णियाओ पडिसेज्जाओ ३, बत्तीसं हंसासणाइं, बत्तीसं कोचासणाइं, एवं गरुलासणाइं, उण्णयासणाइ, पणयासणाइ, दोहासणाइ, भद्दासणाइं पक्खासणाइं, मगरासणाइं, बत्तीसं

पउमासणाइ बत्तीसं दिसासोवत्थियासणाइ बत्तीसं तेल्लसमुग्गे, जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव बत्तीसं सरिसवसमुग्गे, बत्तीसं खुज्जाओ, जहा उववाइए, जाव बत्तीसं पारिसीओ, बत्तीसं छत्ते, बत्तीसं छत्तधारीओ चेडीओ, बत्तीसं चामराओ, बत्तीसं चामरधारीओ चेडीओ, बत्तीसं तालियटधारीओ चेडीओ, बत्तीसं करोडियाओ, बत्तीसं करोडियाधारीओ चेडीओ, बत्तीस खीरधाईओ, जाव बत्तीसं अकधाईओ बत्तीसं अगमद्दियाओ, बत्तीसं उम्मद्दियाओ, बत्तीसं ण्हावियाओ, बत्तीसं पसाहियाओ बत्तीसं वण्णगपेसीओ, बत्तीसं चुण्णगपेसीओ, बत्तीसं कोट्ठागारीओ, बत्तीस दवकारीओ, बत्तीसं उवत्थाणियाओ, बत्तीसं णाडइज्जाओ, बत्तीसं केडुंबिणीओ, बत्तीस महाणसिणीओ, बत्तीसं भंडागारिणीओ, बत्तीसं अज्झाधारिणीओ, बत्तीस पुप्फधारिणीओ, बत्तीसं पाणीधारिणीओ, बत्तीसं बलिकारीओ, बत्तीसं सेज्जाकारीओ, बत्तीसं अब्भितरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं बाहिरियाओ पडिहारीओ, बत्तीसं मालाकारीओ, बत्तीसं पेसणकारीओ, अण्णं वा सुबहुं हिरण्णं वा सुवण्ण वा कंसं वा दूस वा विउलधण-कणग० जाव संतसारसावएज्ज, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकाम दाउ, पकामं भोत्तुं, पकाम परिभाएउं।

तए ण से अणीयसे कुमारे एगमेगाए भज्जाए एगमेगं हिरण्णकोडि दलयइ, एगमेगं सुवण्णकोडि दलयइ, एगमेग मउड मउडप्पवरं दलयइ, एवं तं चेव सव्व जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयइ, अण्णं वा सुबहु हिरण्णं वा जाव परिभाएउ तए ण से अणीयसकुमारे उप्पि पासायवरगए] फुट्टमाणेहि मुइगमत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तेण कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी, जाव [सामी] समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे। अहा[1] जाव पडिरूव उग्गह उगिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। परिसा निग्गया।

तए णं तस्स अणीयसस्स त महा० (जणसद्दं च जणकलकल च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था) जहा गोयमे तहा अणगारे जाए नवरं-सामाइयमाइयाइ चउद्दस पुव्वाइ अहिज्जइ। बीसं वासाइं पारियाओ। सेस तहेव जाव[2] सेत्तुंजे पव्वए मासियाए सलेहणाए जाव[3] सिद्धे।

एव खलु जबू! समणेण अट्ठमस्स अगस्स अंतगडदसाण तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

२—६ अज्झयणाणि

एवं जहा अणीयसे एवं सेसा वि अणंतसेणो जाव[4] सत्तुसेणे छ अज्झयणा एक्कगमा। बत्तीसओ दाओ। वीसं वासाइं पारियाओ, चउद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। सेत्तुंजे सिद्धा।

तव माता-पिता ने अनीयस कुमार को बाल्यावस्था से पार हुआ जानकर समान, (समान वय

१ पू आत्मारामजी म सा , एम सी. मोदी तथा भावनगर से प्रकाशित पाठो मे "जहा जाव विहरइ" पाठ है। किन्तु 'जहा' की अपेक्षा 'अहा' पाठ अधिक उपयुक्त होने से यहाँ 'अहा' का ही उपयोग किया गया है।

२-३ प्रथम वर्ग सूत्र ९।

४. तृतीय वर्ग, सूत्र १।

एव समान त्वचा वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन तथा गुणो वाली, समान इभ्यकुलो से लाई हुई) वत्तीस उत्तम इभ्य-कन्याओ का एक ही दिन पाणिग्रहण कराया।

विवाह के अनन्तर वह नाग गाथापति अनीयस कुमार को प्रीतिदान देते समय वत्तीस करोड चादी के सिक्के तथा महावल कुमार की तरह अन्य वत्तीस प्रकार की अनेको वस्तुए यावत् बत्तीस कोटि सोनैये, वत्तीस श्रेष्ठ मुकुट, वत्तीस श्रेष्ठ कुडलयुगल, वत्तीस उत्तम हार, वत्तीस उत्तम अर्द्ध हार, वत्तीस उत्तम एकसरा हार, वत्तीस मुक्तावली हार, वत्तीस कनकावली हार, वत्तीस रत्नावली हार, वत्तीस उत्तम कडो की जोडी, वत्तीस उत्तम त्रुटित (वाजूवन्द) की जोडी, वत्तीस उत्तम रेशमी वस्त्र-युगल, वत्तीस पट्टयुगल, वत्तीस दूकूल युगल, वत्तीस श्री, वत्तीस ह्री, वत्तीस धी, वत्तीस कीर्ति, वत्तीस वुद्धि और वत्तीस लक्ष्मी देवियो की प्रतिमा, वत्तीस नन्द, वत्तीस भद्र, वत्तीस तल-ताडवृक्ष दिए। ये सव रत्नमय जानने चाहिए। अपने भवन मे केतु, वत्तीस उत्तम ध्वज, दश हजार गायो के एक व्रज (गोकुल) के हिसाव से वत्तीस उत्तम गोकुल, वत्तीस मनुष्यो द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है—ऐसे वत्तीस उत्तम नाटक, वत्तीस उत्तम घोडे (ये सव रत्नमय जानने चाहिए), भाण्डागार समान वत्तीस रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, भाण्डागार, श्रीघर समान सर्व रत्नमय वत्तीस उत्तम यान, वत्तीस उत्तम युग्य (एक प्रकार का वाहन) वत्तीस शिविका, वत्तीस स्यन्दमानिका, वत्तीस गिल्ली (हाथी की अम्वाडी), वत्तीस थिल्लि (घोडे का पलाण-काठी), वत्तीस उत्तम विकट (खुले हुए) यान, वत्तीस पारियानिक (क्रीडा करने के) रथ, वत्तीस उत्तम अश्व, वत्तीस उत्तम हाथी, दस हजार कुल-परिवार जिसमे रहते हो ऐसे वत्तीस गाँव, वत्तीस उत्तम दास, वत्तीस उत्तम दासियाँ, वत्तीस उत्तम किकर, वत्तीस कचुकी (द्वाररक्षक) वत्तीस वर्षधर (अन्त पुर के रक्षक खोजा), वत्तीस महत्तरक (अन्त पुर के कार्य का विचार करने वाले) वत्तीस सोने के, वत्तीस चाँदी के और वत्तीस सोने-चादी के अवलम्वन दीपक (लटकने वाले दीपक-हण्डियाँ), वत्तीस सोने के वत्तीस चाँदी के, वत्तीस सोना-चादी के उत्कञ्चन दीपक-दण्डयुक्त दीपक—मशाल) इसी प्रकार सोना, चाँदी और सोना-चाँदी के इन तीनो प्रकार के वत्तीस पञ्जर दीपक। सोना, चाँदी, और सोना-चाँदी के वत्तीस थाल, वत्तीस थालियाँ, वत्तीस मल्लक (कटोरे) वत्तीस तालिका (रकाबियाँ) वत्तीस कलाचिका, (चम्मच), वत्तीस तापिका-हस्तक (सडासियाँ) वत्तीस तवे, वत्तीस पादपीठ (पैर रखने के वाजोठ) वत्तीस भिषिका (आसनविशेष) वत्तीस करोटिका (लोटा), वत्तीस पलग, वत्तीस प्रतिशय्या (छोटे पलग), वत्तीस हसासन, वत्तीस क्रौचासन, वत्तीस गरुडासन, वत्तीस उन्नतासन, वत्तीस अवनतासन, वत्तीस दीर्घासन, वत्तीस भद्रासन, वत्तीस पक्षासन, वत्तीस मकरासन, वत्तीस पद्मासन, वत्तीस दिक्स्वस्तिकासन, वत्तीस तेल के डिव्वे इत्यादि सभी राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार जानना चाहिए यावत् वत्तीस सर्षप के डिव्वे, वत्तीस कुब्जा दासियाँ इत्यादि सभी औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिये, यावत् वत्तीस पारस देश की दासियाँ, वत्तीस छत्र, वत्तीस छत्र-धारिणी दासियाँ, वत्तीस चामर, वत्तीस चामर-धारिणी दासियाँ, वत्तीस पखे, वत्तीस पखा-धारिणी दासियाँ, बत्तीस करोटिका (ताम्वूल के करण्डिये) वत्तीस करोटिका-धारिणी दासियाँ, बत्तीस धात्रियाँ (दूध पिलाने वाली धाय), यावत् वत्तीस अक-धात्रियाँ, वत्तीस अगमर्दिका (शरीर का मर्दन करने वाली दासियाँ) वत्तीस स्नान करानेवाली दासियाँ, वत्तीस अलकार पहनाने वाली दासियाँ, बत्तीस चन्दन घिसने वाली दासियाँ, वत्तीस ताम्वूल-चूर्ण पीसने वाली, वत्तीस कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, वत्तीस परिहास करने वाली, वत्तीस सभा मे पास रहने वाली, बत्तीस नाटक करने वाली, बत्तीस

कौटु बिक (साथ रहने वाली), बत्तीस रसोई बनाने वाली, बत्तीस भण्डार की रक्षा करने वाली, बत्तीस तरुणियाँ, बत्तीस पुष्प धारण करने वाली, बत्तीस बलिकर्म करने वाली, बत्तीस शय्या बिछाने वाली, बत्तीस आभ्यन्तर और बत्तीस बाह्य प्रतिहारियाँ, बत्तीस माला बनाने वाली और बत्तीस पेषण करने वाली दासियाँ दी। इसके अतिरिक्त बहुतसा हिरण्य, सुवर्ण, कास्य, वस्त्र तथा विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन दिया, जो सात पीढी तक इच्छापूर्वक देने और भोगने के लिये पर्याप्त था। इस प्रकार अनीयस कुमार ने भी प्रत्येक स्त्री को एक-एक हिरण्य कोटि, एक-एक स्वर्ण कोटि, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएँ दी, यावत् एक-एक पेषणकारी दासी तथा बहुत-सा हिरण्य-सुवर्ण आदि विभक्त कर दिया। ऊँचे प्रासादो मे अनीयस कुमार बजते हुए मृदगो के द्वारा पर्याप्त भोगो का उपभोग करता हुआ रहने लगा।

उस काल तथा उस समय श्रीवन नामक उद्यान मे भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी पधारे। यथा-विधि अवग्रह की याचना करके सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। जनता उनका धर्मोपदेश सुनने के लिये उद्यान मे पहुँची और धर्मोपदेश सुन कर अपने-अपने घर वापस चली गई।

जनसमूह का कोलाहल सुनकर अनीयस कुमार ने भी भगवान् के निकट जाने का सकल्प किया। वे भगवान् की सेवा मे पहुचे। उन्होने भी भगवान् का प्रवचन सुना। प्रवचन के प्रभाव से उनके हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। अन्त मे गौतम कुमार की तरह वे भगवान् के चरणो मे दीक्षित हो गये। दीक्षा लेने के अनन्तर उन्होने सामायिक से लेकर चौदह पूर्वो का अध्ययन किया। वीस वर्ष दीक्षा का पालन किया। अन्त समय मे एक मास की सलेखना करके शत्रु जय पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त किया।

सुधर्मा स्वामी कहने लगे—हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अष्टम अग अन्तगड के तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया था।

२-६ अध्ययन

इसी प्रकार अनन्तसेन से लेकर शत्रुसेन पर्यन्त अध्ययनो का वर्णन भी जान लेना चाहिए। सब का बत्तीस-बत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ के साथ विवाह हुआ था और सब को बत्तीस-बत्तीस पूर्वोक्त वस्तुए दी गई। वीस वर्ष तक सयम का पालन एव १४ पूर्वो का अध्ययन किया। अन्त मे एक मास की सलेखना द्वारा शत्रुंजय पर्वत पर पाँचो ही सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अनीयस कुमार के शेष जीवन का तथा अनन्तसेन आदि पाँच श्रेष्ठि-पुत्रो का वर्णन किया गया है।

'पीइदाण' का अर्थ है—प्रीतिदान, जो हर्ष होने के कारण दिया जाता है। यहाँ दान का अर्थ है पारितोषिक—प्रेमोपहार। वैसे प्रीतिदान का प्रयोग दहेज अर्थ मे विशेष प्रसिद्ध है। वर्तमान मे विवाह के अवसर पर कन्यापक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाने वाला धन और सम्मान दहेज कहा जाता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र से पता चलता है यह दहेज विवाह के अवसर पर वर के पिता की ओर से वर को दिया जाता था। जो वर द्वारा विवाहित कन्याओ मे बाट दिया जाता था।

'नवर सामाइयमाइयाइ चउद्दस पुव्वाइ'—इस वाक्य मे पठित 'नवर' यह अव्यय पद गौतम कुमार और अनीयस कुमार की अध्ययनगत भिन्नता को प्रकट कर रहा है। 'नवर' शब्द का अर्थ है

"इतना विशेप है या इतना अन्तर है। अनीयस कुमार और गौतम कुमार के अध्ययन मे जो अन्तर है उसे सूत्रकार ने सामाइय · पुव्वाइ इन पदो द्वारा व्यक्त कर दिया है। भाव यह है कि गौतम कुमार ने तो केवल ग्यारह अगो का अध्ययन किया था परतु अनीयस कुमार ने ११ अग भी पढे और साथ ही १४ पूर्वो का अध्ययन भी किया।

१४ पूर्व-तीर्थ का प्रवर्तन करते समय तीर्थकर भगवान् जिस अर्थ का गणधरो को पहले पहल उपदेश देते हैं या गणधर देव पहले पहल अर्थ को सूत्र रूप मे गूँथते है उसे पूर्व कहते है। ये पूर्व १४ हैं, जो इस प्रकार हैं—

१ **उत्पादपूर्व**—इस पूर्व मे सभी द्रव्यो और सभी पर्यायो के उत्पाद को लेकर प्ररूपणा की गई है।

२ **अग्रायणीपूर्व**—इस मे सभी द्रव्यो, सभी पर्यायो और सभी जीवो के परिमाण का वर्णन है।

३. **वीर्य-प्रवादपूर्व**—इस मे कर्म-सहित और कर्म-रहित जीवो तथा अजीवो के वीर्य (शक्ति) का वर्णन है।

४. **अस्ति-नास्ति-प्रवाद पूर्व**—ससार मे धर्मास्तिकाय आदि जो वस्तुएँ विद्यमान है तथा आकाश-कुसुम आदि जो अविद्यमान है, उन सब का वर्णन इस पूर्व मे है।

५. **ज्ञानप्रवादपूर्व**—इस मे मतिज्ञान आदि पचविध ज्ञानो का विस्तृत वर्णन है।

६. **सत्य-प्रवादपूर्व**—इस मे सत्यरूप सयम का या सत्य वचन का विस्तृत विवेचन किया गया है।

७ **आत्म-प्रवादपूर्व**—इस मे अनेक नयो तथा मतो की अपेक्षा से आत्मा का वर्णन है।

८ **कर्म-प्रवादपूर्व**—इसमे आठ कर्मो का निरूपण, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश आदि भेदो द्वारा विस्तृत रूप मे किया गया है।

९ **प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व**—इस मे प्रत्याख्यानो का भेद-प्रभेदपूर्वक वर्णन है।

१० **विद्यानुवादपूर्व**—इस मे अनेक विद्याओ एव मत्रो का वर्णन है।

११. **अवन्ध्यपूर्व**—इस मे ज्ञान, तप, सयम आदि शुभ फल वाले तथा प्रमाद आदि अशुभ फलवाले, निष्फल न जाने वाले कार्यो का वर्णन है।

१२. **प्राणायुष्य-प्रवादपूर्व**—इस मे दस प्राण और आयु आदि का भेद-प्रभेदपूर्वक विस्तृत वर्णन है।

१३. **क्रिया-विशालपूर्व**—इसमे कायिकी आधिकरणिकी आदि तथा सयम मे उपकारक क्रियाओ का वर्णन है।

१४. **लोक-विन्दुसार-पूर्व**—श्रुतज्ञान मे जो शास्त्र विन्दु की तरह सबसे श्रेष्ठ है, वह लोक-विन्दुसार है।

सप्तम अध्ययन

सारणे

४—तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, जहा पढमे, नवरं-वसुदेवे राया। धारिणी देवी। सीहो सुमिणे। सारणे कुमारे। पण्णासओ दाओ। चउद्दस पुव्वा। वीसं वासा परियाओ। सेसं जहा गोयमस्स जाव[1] सेत्तुंजे सिद्धे।

उस काल तथा उस समय मे द्वारका नगरी थी। उसमे वसुदेव राजा थे। उसकी रानी धारिणी थी। उसने गर्भाधान के पश्चात् स्वप्न मे सिह देखा। समय आने पर बालक को जन्म दिया और उसका नाम सारण कुमार रखा गया। उसे विवाह मे पचास-पचास वस्तुओ का दहेज मिला। सारण कुमार ने सामायिक से लेकर १४ पूर्वो का अध्ययन किया। वीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। शेष सब वृत्तान्त गौतम की तरह है। शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की सलेखना करके यावत् सिद्ध हुए।

---

१ प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ प्रथम वर्ग के ९ वें सूत्र मे आ गया है।

अष्टम अध्ययन

गजसुकुमार

उत्क्षेप

५—जइ ण (भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स सत्तमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स ण भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?)

एव खलु जंबू ! तेण कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे।

जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगडदशा के तृतीय वर्ग के सप्तम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, तो भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तगडदशा के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जबू ! उस काल, उस समय मे द्वारका नगरी मे प्रथम अध्ययन मे किये गये वर्णन के अनुसार यावत् अरिहत अरिष्टनेमि भगवान् पधारे।

छह अनगारो का सकल्प

६—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरो सहोदरा होत्था। सरिसया सरित्तया सरिव्वया नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासा सिरिवच्छंकियवच्छा कुसुम-कुंडलभद्दलया नलकुब्बरसमाणा।

तए ण ते छ अणगारा ज चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति णमसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामो ण भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेण तवोकम्मेणं संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेह।

तए ण ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेण जाव विहरंति।

उस काल, उस समय भगवान् नेमिनाथ के अतेवासी-शिष्य छह मुनि सहोदर भाई थे। वे समान आकार, त्वचा और समान अवस्थावाले प्रतीत होते थे। उन का वर्ण नील कमल, महिष के शृ ग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रग विशेष और अलसी के समान था। श्रीवत्स से अकित वक्ष वाले और कुसुम के समान कोमल और कु डल के समान घु घराले बालोवाले वे सभी मुनि नल-कूवर (वैश्रमण-पुत्र) के समान प्रतीत होते थे।

तब (दीक्षित होने के पश्चात्) वे छहो मुनि जिस दिन मु डित होकर आगार से अनगार धर्म मे प्रव्रजित हुए, उसी दिन अरिहत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! हम चाहते हैं कि आपकी आज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त निरन्तर वेले—वेले तप द्वारा आत्मा को भावित (शुद्ध) करते हुए विचरण करे।"

अरिहत अरिष्टनेमि ने कहा—देवानुप्रियो ! जैसे तुम्हे सुख हो, करो, शुभ कर्म करने मे विलम्ब नही करना चाहिए।

तब भगवान् के ऐसा कहने पर वे छहो मुनि भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर जीवन भर के लिये बेले-बेले की तपस्या करते हुए यावत् विचरण करने लगे।

छहो अनगारो का देवकी के घर मे प्रवेश

७—तए ण ते छ अणगारा अण्णया कयाई छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, जहा गोयमो जाव [बीयाए पोरिसीए झाणं झियायंति, तइयाए पोरिसीए अतुरियम-चवलमसंभंता मुहपोत्तियं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायण-वत्थाइं पडिलेहंति, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जंति, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेंति, उग्गाहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—]

इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव [उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडित्तए।

तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदंति नमंसंति, वदित्ता नमसित्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतियाओ सहसंबवणाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता तिहिं सघाडएहिं अतुरियम जाव [चवलमसंभंता जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणा-सोहेमाणा जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं] अडंति।

तदनन्तर उन छहो मुनियो ने अन्यदा किसी समय, बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय किया और गौतम स्वामी के समान (दूसरे प्रहर मे ध्यानारूढ हुए, तीसरे पहर मे कायिक और मानसिक चपलता से रहित हो कर मुखवस्त्रिका, भाजन तथा वस्त्रो की प्रतिलेखना की। तत्पश्चात् वे पात्रो को झोली मे रख कर और झोली को ग्रहण कर भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी की सेवा मे उपस्थित होते हैं, वन्दना-नमस्कार करते है, तदनन्तर निवेदन करते है)—

भगवन् ! हम बेले की तपस्या के पारणे मे आपकी आज्ञा लेकर दो-दो के तीन सघाडो से द्वारका नगरी मे यावत् [साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरो मे] भिक्षा हेतु भ्रमण करना चाहते है।

तब उन छहो मुनियो ने अरिहत अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर प्रभु को वदन नमस्कार किया। वदन नमस्कार कर वे भगवान् अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान करते हैं। फिर वे दो दो के तीन सघाटको मे सहज गति से यावत् [चपलता तथा सभ्रान्ति से रहित, चार

हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए, ईर्यासमिति का पालन करते हुए, जहाँ द्वारका नगरी थी, वहाँ आते है। वहाँ आकर द्वारका नगरी मे साधुवृत्ति के अनुसार धनी-निर्धन आदि सभी घरो मे भिक्षा के लिये] भ्रमण करने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वताया गया है कि भगवान् अरिष्टनेमि के छहो मुनि भगवान् से आज्ञा लेकर तीन भागो मे विभाजित होकर द्वारका नगरी मे वेले के पारणे के लिये पधारते है। साधुओ का भिक्षार्थ गमन कव और किस प्रकार होता है, यह इस सूत्र मे वताया गया है।

८—तत्थ णं एगे सघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गेहे अणुप्पविट्ठे।

तए णं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव [तुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण] हियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वदइ नमंसइ, वदित्ता नमसित्ता जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागया सीहकेसराण मोयगाण थाल भरेइ, ते अणगारे पडिलाभेइ, वदइ नमंसइ, वदित्ता नमसित्ता पडिविसज्जेइ।

तयाणंतर दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव[1] विसज्जेइ।

उन तीन सघाटको (सघाडो) मे से एक सघाडा द्वारका नगरी के ऊँच-नीच-मध्यम घरों मे, एक घर से, दूसरे घर, भिक्षाचर्या के हेतु भ्रमण करता हुआ राजा वसुदेव की महारानी देवकी के प्रासाद मे प्रविष्ट हुआ।

उस समय वह देवकी रानी उन दो मुनियो के एक सघाडे को अपने यहाँ आता देखकर हृष्ट-तुष्ट [चित्त के साथ आनन्दित हुई। प्रीतिवश उसका मन परमाह्लाद को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय कमलवत् प्रफुल्लित हो उठा] आसन से उठकर वह सात-साठ कदम मुनियुगल के सम्मुख गई। सामने जाकर उसने तीन वार दक्षिण की ओर से उनकी प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर उन्हे वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार के पश्चात् जहाँ भोजनशाला थी वहाँ आई। भोजनशाला मे आकर सिंहकेसर मोदको से एक थाल भरा और थाल भर कर उन मुनियो को प्रतिलाभ दिया। पुन. वन्दन-नमस्कार करके तत्पश्चात् देवकी ने उन्हे प्रतिविसर्जित किया अर्थात् विदाई दी।

प्रथम सघाटक के लौट जाने के पश्चात् उन छह सहोदर साधुओ के तीन सघाटको में से दूसरा सघाटक भी द्वारका के उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ महारानी देवकी के प्रासाद मे आया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अरिष्टनेमि भगवान् के छह साधुओ मे से पहली और दूसरी टोली को महाराज वसुदेव की महारानी देवकी देवी द्वारा सत्कृत और सन्मानित करने के अनन्तर विधि-पूर्वक दी जानेवाली सिंह-केसर मोदको की भिक्षा का वर्णन किया गया है। मुनियो की दो टोलिया देवकी के घर से आहार लेकर चली गईं, इस के पश्चात् तीसरी टोली के सबध मे सूत्रकार आगे कहते हैं—

---

१. ऊपर के पैरे मे आ गया है।

देवकी को पुनः आगमन की शका और समाधान

९—तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च-नीय जाव[1] पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

किण्णं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए जाव पच्चक्ख देवलोगभूयाए समणा निग्गंथा उच्चनीय जाव [मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खाय-रियाए] अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति, जण्ण ताइ चेव कुलाइ भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति ?

तए णं ते अणगारा देवइ देविं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए जाव[2] देवलोगभूयाए समणा निग्गथा उच्चनीय जाव[3] अडमाणा भत्तपाण णो लभंति, णो चेव णं ताइ ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्च पि भत्तपाणाए अणुप्पविसति ।

एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोदरा सरिसया जाव[4] नल-कुब्बरसमाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्म सोच्चा संसारभउव्विग्गा भीया जम्ममरणाणं मुंडा जाव[5] पव्वइया। तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइआ तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठनेमिं वंदामो नमसामो, इम एयारूवं अभिग्गहं ओगिण्हामो-इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव[6] अहासुह देवाणुप्पिया ।

तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं जाव[7] विहरामो। तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए जाव [सज्झायं करेत्ता, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइत्ता तइयाए पोरिसीए अरहया अरिट्ठनेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए उच्चनीयमज्झिमाइ कुलाइं घरसमुदाणस्स भिखायरियाए] अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा। तं णो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे। देवइं देविं एवं वदंति, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

इसके बाद मुनियो का तीसरा सघाडा आया यावत् उसे भी देवकी देवी प्रतिलाभ देती है। उनको प्रतिलाभ देकर वह इस प्रकार बोली—"देवानुप्रियो ! क्या कृष्ण वासुदेव की इस बारह योजन लम्बी, नव योजन चौडी प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारका नगरी मे श्रमण निर्ग्रथो को उच्च—नीच एव मध्यम कुलो के गृह-समुदायो से, भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए आहार-पानी प्राप्त नही होता ? जिससे उन्हे आहार-पानी के लिये जिन कुलो मे पहले आ चुके है, उन्ही कुलो मे पुन आना पडता है ?"

देवकी द्वारा इस प्रकार कहने पर वे मुनि देवकी देवी से इस प्रकार बोले—"देवानुप्रिये ! ऐसी बात तो नही है कि कृष्ण वासुदेव की यावत् प्रत्यक्ष स्वर्ग के समान, इस द्वारका नगरी मे

१ वर्ग—३ का सूत्र—७
२ वर्ग—१ का सूत्र—६
३ वर्ग—३ का सूत्र—७
४ वर्ग—३ का सूत्र—६
५ वर्ग—३ का सूत्र—६
६ वर्ग—३ का सूत्र—६.
७ वर्ग—३ का सूत्र—६

श्रमण-निर्ग्रन्थ उच्च-नीच-मध्यम कुलो में यावत् भ्रमण करते हुए आहार-पानी प्राप्त नही करते। और मुनि जन भी जिन घरो से एक वार आहार ले आते है, उन्ही घरो से दूसरी या तीसरी बार आहारार्थ नही जाते है।

"देवानुप्रिये! वास्तव मे वात यह है कि हम भद्दिलपुर नगरी के नाग गाथापति के पुत्र और उनकी सुलसा भार्या के आत्मज छह सहोदर भाई है। पूर्णत समान आकृति वाले यावत् नल-कूवर के समान हम छहो भाइयो ने अरिहत अरिष्टनेमि के पास धर्म-उपदेश सुनकर ससार-भय से उद्विग्न एव जन्ममरण से भयभीत हो मुडित होकर यावत् श्रमणधर्म की दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर हमने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन अरिहत अरिष्टनेमि को वदन-नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार का यह अभिग्रह करने की आज्ञा चाही—हे भगवन्! आपकी अनुज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त वेले-वेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहते हैं।" यावत् प्रभु ने कहा—"देवानुप्रियो! जिससे तुम्हे सुख हो वैसा करो, प्रमाद न करो।"

उसके बाद अरिहत अरिष्टनेमि की अनुज्ञा प्राप्त होने पर हम जीवन भर के लिये निरतर वेले—वेले की तपस्या करते हुए विचरण करने लगे। तो इस प्रकार आज हम छहो भाई वेले की तपस्या के पारणा के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय कर, द्वितीय प्रहर मे ध्यान कर, तृतीय प्रहर मे अरिहत अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर, तीन सघाटको मे उच्च-निम्न एव मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए तुम्हारे घर आ पहुचे हैं। तो देवानुप्रिये! ऐसी वात नही है कि पहले दो सघाटको मे जो मुनि तुम्हारे यहाँ आये थे वे हम ही हैं। वस्तुत हम दूसरे है।" उन मुनियो ने देवकी देवी को इस प्रकार कहा और यह कहकर वे जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर चले गये।

विवेचन—साधु-युगल की तीसरी टोली का भी देवकी के घर मे भिक्षार्थ गमन के समय आकृति और रूप के साम्य के कारण देवकी को मुनियुगल (जो पहले आये थे) का तीसरी वार आना समझ लेने मे शका होती है, क्योकि सयमशील मुनि विशिष्ट भिक्षा हेतु किसी गृहस्थ के घर मे पुन. पुन नहीं आते है। प्रस्तुत सूत्र मे देवकी के मन मे उठी शका का मुनि-युगल ने समाधान प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत समाधान ने देवकी के मन मे जो नयी उथल-पुथल मचाई, इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार आगे कहते हैं—

पुत्रों की पहचान

१०—तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे-एव खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेण वालत्तणे वागरिआ-तुमण्ण देवाणुप्पिए! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव नलकुव्वरसमाणे, नो चेव णं भरहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्सति। तं ण मिच्छा। इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ-भरहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव [सरिसए सरित्तए सरिव्वए नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासे, सिरिवच्छंकियवच्छे, कुसुम-कुंडल-भद्दालए नलकुव्वरसमाणे] पुत्ते पयायाओ। तं गच्छामि ण अरहं अरिट्ठणेमि वदामि नमसामि, वंदित्ता नमंसित्ता इम च ण एयारूव वागरण पुच्छिस्सामित्ति कट्टु एव सपेहेइ, संपेहेत्ता कोडुंवियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

लहुकरणप्पवरं जाव [जुत्त-जोइय-सम-खुर-वालिहाण-समालिहियसिंगेहिं, जवूणयामयकलावजुत्त-परिविसिट्ठेहिं, रययामयघंटा-सुत्तरज्जुयपवरकंचणणत्थपग्गहोग्गहियएहिं, णीलुप्पलकयामेलएहिं, पवरगोणजुवाणएहिं णाणामणि-रयण-घंटियाजाल-परिगय, सुजायजुगजोत्तरज्जुयजुग-पसत्थसुविरचियणिम्मियं, पवरलक्खणोववेयं धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडु बिय—पुरिसा एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया, करयल एवं तहत्तिआणाए विणएणं वयण जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव] उवट्ठवेंति । जहा देवाणदा जाव [तए ण सा देवई देवी अतो अतेउरंसि ण्हाया, कयवलिकम्मा, कयकोउय-मगलपायच्छित्ता, किंच वरपायपत्तणेउर-मणिमेहला हार-रचिय उचियकडग-खुड्डाग-एगावली-कंठसुत्त-उरत्थगेवेज्ज-सोणिसुत्तग-णाणामणि-रयण-भूसणविराइयगी, चीणंसुयवत्थपवरपरिहिया, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जा, सव्वोउयसुरभिकुसुमवरियसिरिया, वरचंदणवदिया, वराभरणभूसियगी, कालागरुधूवधूविया, सिरिसमाणवेसा, जाव अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरा, वहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, णाणादेस-विदेसपरिमडियाहिं, सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं, इगिय-चिंतिय-पत्थियवियाणियाहिं, कुसलाहिं, विणीयाहिं, चेडियाचक्कवालवरिसधर-थेरकंचुइज्ज-महत्तरगवदपरिक्खित्ता अतेउराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव धम्मिय जाणप्पवर दुरूढा ।

तए ण सा देवई देवी धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वहूहिं खुज्जाहिं जाव महत्तरगवंदपरिक्खित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, तं जहा—सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए, अचित्ताण दव्वाणं अविमोयणयाए, विणयोणयाए गायलट्ठीए, चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेण, मणस्स एगत्तीभावकरणेणं; जेणेव भगवं अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वदित्ता णमसित्ता सुस्सूसमाणी, णमसमाणी, अभिमुहा विणएणं पजलिउडा जाव] पज्जुवासइ ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी देवइं देविं एवं वयासी—'से नूण तव देवई ! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एव खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं जाव[1] तं णिग्गच्छसि, णिग्गच्छित्ता जेणेव मम अंतियं तेणेव हव्वमागया, से नूणं देवई ! अट्ठे समट्ठे ?'

'हंता अत्थि ।'

इस प्रकार की वात कहकर उन श्रमणो के लौट जाने के पश्चात् देवकी देवी को इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और सकल्पित विचार उत्पन्न हुआ कि "पोलासपुर नगर मे अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मुझे बचपन मे इस प्रकार कहा था—हे देवानुप्रिये देवकी ! तुम आठ पुत्रों को जन्म दोगी, जो परस्पर एक दूसरे से पूर्णत समान [आकार, त्वचा और अवस्था वाले, नील कमल, महिष के शृ ग के अन्तर्वर्ती भाग, गुलिका-रग विशेष और अलसी के समान वर्ण वाले, श्रीवत्स से अकित वक्षवाले, कुसुम के समान कोमल और कु डल के समान घु घराले वालो वाले] नलकूवर के समान प्रतीत होगे । भरतक्षेत्र मे दूसरी कोई माता वैसे पुत्रो को जन्म नही देगी । पर वह कथन मिथ्या निकला, क्योकि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है कि अन्य माताओ

१ प्रस्तुत सूत्र मे ऊपर देखिए ।

ने भी ऐसे यावत् पुत्रो को जन्म दिया है। अत मैं अरिहत अरिष्टनेमि भगवान् की सेवा मे जाऊ, वदन-नमस्कार करू, और वदन-नमस्कार करके इस प्रकार के उक्तिवैपरीत्य के विषय मे पूछू। ऐसा सोचकर तुम ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुलाकर कहा—"शीघ्रगामी यानप्रवर—[समान रूपवाले, समान खुर और पू छ वाले, समान सीग वाले, स्वर्ण-निर्मित कण्ठ के आभूषणो से युक्त, उत्तम गति वाले, चाँदी की घटियो से युक्त, स्वर्णमय नासारज्जु से वधे हुए, नील-कमल के सिरपेच वाले दो उत्तम युवा बैलो से युक्त, अनेक प्रकार की मणिमय घण्टियो के समूह से व्याप्त उत्तम काष्ठमय धोसरा (जुआ) और जोत की दो उत्तम डोरियो से युक्त, प्रवर (श्रेष्ठ) लक्षण युक्त धार्मिक श्रेष्ठ यान (रथ) तैयार करके यहाँ उपस्थित करो और आज्ञा का पालन कर निवेदन करो अर्थात् कार्य सम्पूर्ण हो जाने की सूचना दो।" देवकी देवी की इस प्रकार की आज्ञा होने पर वे सेवक पुरुष प्रसन्न यावत् आनन्दित हृदय वाले हुए और मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार वोले—'आपकी आज्ञा हमे मान्य है' ऐसा कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया और आज्ञानुसार शीघ्र चलने वाले दो वैलो से युक्त यावत् धार्मिक श्रेष्ठ रथ को शीघ्र] उपस्थित किया।

तव देवानन्दा व्राह्मणी की तरह देवकी देवी ने भी [अत पुर मे स्नान किया, वलिकर्म किया, कौतुक (मपि-तिलक) किया। फिर पैरो मे पहनने के सु दर नूपुर, मणियुक्त मेखला (कन्दोरा) हार, उत्तम ककण अँगूठियाँ, विचित्र मणिमय एकावलि (एक लडा) हार, कण्ठ-सूत्र, ग्रैवेयक (वक्षस्थल पर रहा हुआ गले का लम्बा हार), कटिसूत्र और विचित्र मणि तथा रत्नो के आभूषण, इन सव से शरीर को सुशोभित करके, उत्तम चीनाशुक (वस्त्र) पहनकर शरीर पर सुकुमाल रेशमी वस्त्र ओढकर, सव ऋतुओ के सुगन्धित फूलो से अपने केशो को गूँथकर, कपाल पर चन्दन लगा कर, उत्तम आभूषणो से शरीर को अलकृत कर, कालागुरु के धूप से सुगन्धित होकर, लक्ष्मी के समान वेष वाली यावत् अल्प भार और वहुमूल्य वाले आभरणो से शरीर को अलकृत करके, वहुत सी कुब्जा दासियो, चिलात देश की दासियो, यावत् अनेक देश विदेशो से आकर एकत्रित हुई दासियो, अपने देश के वेप धारण करने वाली, इगित-आकृति द्वारा चिन्तित और इष्ट अर्थ को जाननेवाली कुशल और विनयसम्पन्न दासियो के परिवार सहित तथा स्वदेश की दासियो, खोजा पुरुष, वृद्ध कचुकी और मान्य पुरुषो के समूह के साथ वह देवकी देवी अपने अन्त पुर से निकली और जहाँ वाहर की उपस्थानशाला थी और जहाँ धार्मिक श्रेष्ठ रथ खडा था वहाँ आई और उस धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढी।

(जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् थे वहाँ आई, आकर, तीर्थंकर के अतिशयो को देखकर) धार्मिक रथ से नीचे उतरी और अपनी दासियो आदि परिवार से परिवृत होकर भगवान् अरिष्टनेमि के पास पाच प्रकार के अभिगमो से युक्त होकर जाने लगी। वे अभिगम इस प्रकार है—(१) सचित्त द्रव्यो का त्याग करना, (२) अचित्त द्रव्यो को त्याग नही करना, (३) विनय से शरीर को अवनत करना (नीचे की ओर झुका देना), (४) भगवान् के दृष्टिगोचर होते ही दोनो हाथ जोडना और (५) मन को एकाग्र करना। इन पाँच अभिगमो के साथ देवकी देवी जहाँ अरिष्टनेमि भगवान् थे वहाँ आई और भगवान् को तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके शुश्रूपा करती हुई, विनयपूर्वक हाथ जोडकर] उपासना करने लगी।

तदनन्तर अरिहत अरिष्टनेमि देवकी को सम्वोधित कर इस प्रकार वोले—"हे देवकी!

क्या इन छह अनगारो को देखकर तुम्हारे मन मे इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत और सकल्पित विचार उत्पन्न हुआ है कि—पोलासपुर नगर मे अतिमुक्त कुमार ने तुम्हे एक समान, नलकूबरवत् आठ पुत्रो को जन्म देने का और भरतक्षेत्र मे अन्य माताओ द्वारा इस प्रकार के पुत्रो को जन्म नही देने का भविष्य-कथन किया था, वह मिथ्या सिद्ध हुआ, क्योकि भरतक्षेत्र मे भी अन्य माताओ ने ऐसे यावत् पुत्रो को जन्म दिया है। ऐसा जानकर इस विषय मे पृच्छा करने के लिये तुम यावत् वन्दन को निकली और निकलकर शीघ्रता से मेरे पास चली आई हो।

देवकी देवी! क्या यह बात सत्य है ?

देवकी ने कहा—'हाँ प्रभु, सत्य है।'

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि के शिष्यो को तीसरी बार अपने घर मे आया देखकर देवकी देवी के हृदय मे जो सकल्प उत्पन्न हुआ, उसके विषय मे निश्चय करने के लिये वह भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित हुई। भगवान् ने उसके हृदयगत सकल्प का स्पष्ट शब्दो मे वर्णन किया। इन सब बातो का प्रस्तुत सूत्र मे दिग्दर्शन कराया गया है।

"अज्झत्थिए समुप्पण्णे" का अर्थ इस प्रकार है—अज्झत्थिए अर्थात् आध्यात्मिक—आत्मगत। कप्पिए-कल्पित अर्थात् हृदय मे उठनेवाली अनेकविध कल्पनाए। चिन्तिए—चिन्तित अर्थात् बार-बार किया गया विचार। पत्थिए-प्रार्थित अर्थात् "इस दशा का मूल कारण क्या है ?" इस जिज्ञासा का पुन पुन होना। मणोगए—मनोगत अर्थात् जो विचार अभी मन मे है प्रकट नही किये गये हैं। सकप्प—सकल्प अर्थात् सामान्य विचार।

अइमुत्तेण कुमारसमणेण' का अर्थ है—अतिमुक्त नामक कुमार श्रमण। अतिमुक्त कुमार श्रमण (सुकुमार शरीरवाले, या कुमारावस्था वाले श्रमण) कस के छोटे भाई थे। जिस समय कस की पत्नी जीवयशा देवकी के साथ क्रीडा कर रही थी उस समय अतिमुक्त कुमार जीवयशा के घर मे भिक्षा के लिये गये थे। आमोद-प्रमोद मे मग्न जीवयशा ने अपने देवर को मुनि के रूप मे देखकर उपहास करना प्रारभ किया। वह बोली—देवर! आओ तुम भी मेरे साथ क्रीडा करो, इस आमोद-प्रमोद मे तुम भी भाग लो। इस पर मुनि अतिमुक्त कुमार जीवयशा से कहने लगे—जीवयशे! जिस देवकी के साथ तुम इस समय क्रीडा कर रही हो इस देवकी के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न होगे। ये पुत्र इतने सुन्दर और पुण्यात्मा होगे कि भारतवर्ष मे अन्य किसी स्त्री के ऐसे पुत्र नही होगे। परतु इस देवकी का सातवा पुत्र तेरे पति को मारकर आधे भारतवर्ष पर राज्य करेगा। यह बात देवकी देवी ने बचपन मे सुनी थी। अत इसी के समाधान हेतु उसने भगवान् अरिष्टनेमि के पास जाने का निश्चय किया।

अरिहत परमात्मा या साधु-साध्वियो के पास जाते समय जो आवश्यक नियम अपनाने होते है, उन्हे अभिगम कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे सूत्रकार ने देवकी देवी के हृदयगत सकल्प-विकल्प का चित्रण किया है। देवकी देवी अपने हृदय की बात अरिष्टनेमि भगवान् के चरणो मे निवेदन करने के लिये चल पड़ी और वहा उपस्थित हो गई। तदनन्तर देवकी देवी के मानस को समाहित करने के लिये अरिष्टनेमि भगवान् ने जो कुछ कहा, अग्रिम सूत्र मे इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

११—एवं खलु देवाणुप्पिए! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे। तस्स ण नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था। तए णं सा सुलसा बालत्तणे चेव हरिणेगमेसीभत्तया यावि होत्था। नेमित्तिएण वागरिया-एस ण दारिया णिंदू भविस्सइ। तए णं सा सुलसा बालप्पभिइ चेव हरिणेगमेसिस्स पडिम करेइ, करेत्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव[1] पायच्छित्ता उल्लपडसाडया महरिह पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जण्णुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा वरइ वा।

तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाणसुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था। तए णं से हरि-णेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकपणट्ठयाए सुलसं गाहावइणिं तुमं च दो वि समउउयाओ करेइ। तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह। तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयायइ। तए णं से हरि-णेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठयाए विणिहायमावण्णे दारए करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता तव अंतियं साहरइ। तं समयं च णं तुम पि नवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसि। जे वि य णं देवाणुप्पिए! तव पुत्ता ते वि य तव अंतिआओ करयल-संपुडेणं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ। त तव चेव णं देवई! एए पुत्ता। णो सुलसाए गाहावइणीए।

अरिहंत अरिष्टनेमि ने कहा—'देवानुप्रिये! उस काल उस समय मे भद्दिलपुरनामक नगर मे नाग नाम का गाथापति रहता था। वह पूर्णतया सम्पन्न था। नागरिको मे उसकी वडी प्रतिष्ठा थी। उस नाग गाथापति की सुलसा नाम की भार्या थी। उस सुलसा गाथापत्नी को बाल्यावस्था मे ही किसी निमित्तज्ञ ने कहा था—'यह बालिका निंदु अर्थात् मृतवत्सा (मृत बालको को जन्म देने वाली) होगी। तत्पश्चात् वह सुलसा बाल्यकाल से ही हरिणैगमेषी देव की भक्त बन गई। उसने हरिणैगमेषी देव की प्रतिमा बनवाई। प्रतिमा बनवा कर प्रतिदिन प्रात काल स्नान करके यावत् दु स्वप्न निवारणार्थ प्रायश्चित्त कर आर्द्र (गीली) साडी पहने हुए उसकी बहुमूल्य पुष्पो से अर्चना करती। पुष्पों द्वारा पूजा के पश्चात् घुटने टेककर पाचो अग नमा कर प्रणाम करती, तदनन्तर आहार करती, निहार करती एव अपनी दैनन्दिनी के अन्य कार्य करती।

तत्पश्चात् उस सुलसा गाथापत्नी की उस भक्ति-बहुमानपूर्वक की गई शुश्रूषा से देव प्रसन्न हो गया। प्रसन्न होने के पश्चात् हरिणैगमेषी देव सुलसा गाथापत्नी को तथा तुम्हे—दोनो को समकाल मे ही ऋतुमती (रजस्वला) करता और तब तुम दोनो समकाल मे ही गर्भ धारण करती, समकाल मे ही गर्भ का वहन करती और समकाल मे ही बालक को जन्म देती। प्रसवकाल मे वह सुलसा गाथापत्नी मरे हुए बालक को जन्म देती। तब वह हरिणैगमेषी देव सुलसा पर अनुकपा करने के लिये उसके मृत बालक को हाथो मे लेता और लेकर तुम्हारे पास लाता। इधर उसी समय तुम भी नव मास का काल पूर्ण होने पर सुकुमार बालक को जन्म देती। हे देवानुप्रिये! जो तुम्हारे पुत्र होते उनको हरिणैगमेषी देव तुम्हारे पास से अपने दोनो हाथो मे ग्रहण करता और उन्हे ग्रहण कर सुलसा गाथापत्नी के पास लाकर रख देता (पहुँचा देता)। अत वास्तव मे हे देवकी! ये तुम्हारे ही पुत्र है, सुलसा गाथापत्नी के पुत्र नही है।'

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि ने देवकी देवी के समाधान के लिये नाग की धर्मपत्नी सुलसा

---

१ देखिए पिछला सूत्र।

का निन्दू होना, उसका हरिणैगमेषी देव की आराधना करना, देवका प्रसन्न होकर देवकी देवी के पुत्रो को सुलसा के पास पहुचाना तथा सुलसा के मृतपुत्रो को देवकी देवी के पास पहुचाना आदि जो कथन किया उसी का प्रस्तुत सूत्र मे वर्णन दिया गया है।

'नेमित्तिएण' शब्द का अर्थ होता है नैमित्तिक। भविष्य की वात वताने वाले ज्योतिषी को नैमित्तिक कहा जाता है।

'णिंदू'—शब्द का अर्थ है—मृत-प्रसविनी। जिसके बच्चे मृत पैदा हो, उसे निन्दू कहते है। मृत बालक दो तरह के होते है—एक तो गर्भ से ही मरे हुए पैदा होने वाले, दूसरे पैदा होने के वाद मर जाने वाले। प्रस्तुत प्रकरण मे निन्दू से प्रथम अर्थ का ग्रहण ही अभीष्ट प्रतीत होता है।

हरिणैगमेषी—शब्द का अर्थ करते हुए कल्पसूत्र (प्रदीपिका टीका के गर्भ परिवर्तन-प्रकरण) मे लिखा है—'हरे इन्द्रस्य नैगमम् आदेशमिच्छतीति हरिनैगमेषी, केचित् हरेरिन्द्रस्य सवधी नैगमेपी, नाम देव इति'—अर्थात् हरिनैगमेषी शब्द के दो अर्थ है—१ हरि-इन्द्र के नैगम—आदेश की इच्छा करने वाला देव तथा २ हरि-इन्द्र का नैगमेषी अर्थात् सवधी एक देव। हरिनैगमेषी सौधर्म देवलोक के स्वामी महाराज शकेन्द्र का सेनापति देव है। इन्द्र की आज्ञा मिलने पर भगवान् महावीर के गर्भ का परिवर्तन इसी देव ने किया था।

'उल्ल-पड-साडया' का अर्थ है—जिसने आर्द्र (भीगा हुआ) पट और शाटिका धारण कर रखी है। पट ऊपर ओढने के वस्त्र का नाम है। शाटिका शब्द से नीचे पहनने की धोती या साडी का बोध होता है।

'आहारेइ वा, नीहारेइ वा, वरइ वा' का अर्थ है—आहार करती थी—भोजन खाती थी। निहारेइ अर्थात् शौचादि क्रियाओ से निवृत्त होती थी। वरइ-शब्द वृ धातु से वनता है जिसका अर्थ है—विचार करना, चुनना, सगाई करना, याचना करना, आच्छादन करना, सेवा करना। प्रस्तुत मे वृ धातु विचार करने के अर्थ मे प्रयुक्त हुई प्रतीत होती है। तव 'वरइ' का अर्थ होगा विचार करती थी, अन्य कार्यो के सम्बन्ध मे चिन्तन करती थी।

"भत्ति-बहुमाण-सुस्सूसाए" का अर्थ है—भक्ति-बहुमान तथा शुश्रूषा के द्वारा। भक्ति शब्द अनुराग, वहुमान शब्द अत्यधिक सत्कार तथा शुश्रूषा शब्द सेवा का परिचायक है। इन पदो द्वारा सूत्रकार ने हरिणैगमेषी देव को आराधित—सिद्ध या प्रसन्न करने के तीन साधनो का निर्देश किया है। देव को सिद्ध करने के लिये उक्त तीन वातो की अपेक्षा हुआ करती है। देव को सिद्ध करने के लिये सर्वप्रथम साधक के हृदय मे देव के प्रति अनुराग होना चाहिए, तदनन्तर साधक के हृदय मे देव के लिये अत्यधिक सत्कार-सम्मान की भावना होनी चाहिये। देव को सिद्ध करने के लिये तीसरा साधन देव की सेवा है।

सुलसा ने हरिणैगमेषी देव की आराधना की, उसकी पूजा की, परिणाम स्वरूप उसने अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर लिया। इससे भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि देवता के प्रति की जाने वाली आराधना साधक की कामना पूर्ण करने मे सहायक वन सकती है। देव अपने भक्त की रक्षा करने तथा उस पर अनुग्रह करने मे सशक्त होता है।

लोग पुत्रादि को उपलब्ध करने के लिये देव-पूजन करते हैं और पूर्वोपार्जित किसी पुण्य कर्म

के सहयोगी होने के कारण पुत्रादि की प्राप्ति कर लेने पर भक्ति के अतिरेक से उसे देव-प्रदत्त ही मान लेते हैं। पुत्रादि की प्राप्ति मे देव को ही प्रधान कारण मान लेते है, वे भूल करते है, क्योकि यदि पूर्वोपार्जित कर्म के फल को प्रकट करने मे देव निमित्त कारण वन सकता है। इसके विपरीत, यदि पूर्व कर्म सहयोगी नही है तो एक वार नही, अनेको वार देवपूजा की जाए या देव की अनेको मनौतिया मान ली जाये तो भी देव कुछ नही कर सकते। वस्तुत किसी भी कार्य की सिद्धि मे देव केवल निमित्त कारण वन सकता है, उपादान कारण नही।

भगवान् अरिष्टनेमि के श्रीमुख से छहो मुनियो के इतिवृत्त को सुनकर देवकी देवी की क्या दशा हुई, इसका वर्णन अग्रिम सूत्र मे किया जा रहा है—

१२—तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियया अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता आगयपण्हुया, पप्फुयलोयणा, कंचुयपरिक्खित्तया, दरियवलय-वाहा, धाराहय-कलब-पुप्फगं विव समूससिय-रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी-पेहमाणी सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वदइ नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागया, धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागया सयसि सयणिज्जसि निसीयइ।

तदनन्तर उस देवकी देवी ने अरिहत अरिष्टनेमि भगवान् के पास से उक्त वृत्तान्त को सुनकर और उस पर चिन्तन कर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदया होकर अरिष्टनेमि भगवान् को वदन नमस्कार किया। वदना नमस्कार करके वे छहो मुनि जहाँ विराजमान थे वहाँ आई। आकर वह उन छहो मुनियो को वदना नमस्कार करती है। उन अनगारो को देखकर पुत्र-प्रेम के कारण उसके स्तनो से दूध झरने लगा। हर्ष के कारण लोचन प्रफुल्लित हो उठे, हर्ष के मारे कचुकी के वन्धन टूटने लगे, भुजाओ के आभूषण तग हो गये, उसकी रोमावली मेघधारा से अभिताडित हुए कदम्ब पुष्प की भाँति खिल उठी। वह उन छहो मुनियो को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई चिरकाल तक निरखती ही रही। तत्पश्चात् उन छहो मुनियो को वन्दन-नमस्कार किया, वदन-नमस्कार करके जहाँ भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे वहाँ आई, आकर अरिहन्त अरिष्टनेमि को दक्षिण तरफ से तीन वार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करती है। वन्दन-नमस्कार करके उसी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ होती है। रथारूढ हो जहा द्वारका नगरी थी, वहाँ आती है, आकर द्वारका नगरी मे प्रविष्ट होती है, प्रवेश कर जहा अपने प्रासाद के वाहर की उपस्थानशाला अर्थात् बैठक थी वहाँ आती है, आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरती है, नीचे उतर कर जहा अपना वासगृह था, जहा अपनी शय्या थी उस पर वैठ जाती है।

१　देखिए वर्ग ३, सूत्र ७

विवेचन—भगवान् अरिष्टनेमि से छहो मुनियो का वृत्तान्त सुनने पर "ये छहो मेरे ही पुत्र है" इस प्रकार की प्रतीति हो जाने पर वह देवकी देवी छहो मुनियो के दर्शन करती है और पुन पुन उन्हे देखकर हर्षित होती है, ऐसी स्थिति मे उसका छिपा हुआ वात्सल्य उजागर हुआ, और स्तन-दुग्ध द्वारा प्रकट हो गया। तदनन्तर अपनी स्थिति मे समाहित वह अपने भवन मे वापस लौटी और विशेष विचारधारा मे डूब गई। अग्रिम सूत्र मे सूत्रकार उसकी विचारधारा और परिणामधाराओ का दिग्दर्शन कराते है।

देवकी की पुत्राभिलाषा

१३—तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु अहं सरिसए जाव नलकुब्बर-समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुब्भूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, पुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ ण ताओ अम्मयाओ, जासिं मण्णे णियग-कुच्छि-संभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुर-समुल्लावयाइं मम्मण-पजंपियाइं थण-मूला कक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमल-कमलोवमेहिं गिण्हिऊण उच्छगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए। अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एक्कतरमवि ण पत्ता, ओहय जाव [मणसकप्पा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया] झियायइ।

उस समय देवकी देवी को इस प्रकार का विचार, चिन्तन और अभिलाषापूर्ण मानसिक सकल्प उत्पन्न हुआ कि अहो! मैंने पूर्णत समान आकृति वाले यावत् नलकूबर के समान सात पुत्रो को जन्म दिया पर मैंने एक की भी बाल्यक्रीडा का आनन्दानुभव नही किया। यह कृष्ण वासुदेव भी छह-छह मास के अनन्तर चरण-वन्दन के लिये मेरे पास आता है, अत मैं मानती हूँ कि वे माताए धन्य है, जिनकी अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, स्तन-पान के लोभी बालक, मधुर आलाप करते हुए, तुतलाती बोली से मन्मन बोलते हुए जिनके स्तनमूल कक्षा-भाग मे अभिसरण करते हैं, एव फिर उन मुग्ध बालको को जो माताए कमल के समान अपने कोमल हाथो द्वारा पकड कर गोद मे बिठाती है और अपने बालको से मधुर-मजुल शब्दो मे बार बार बाते करती है। मैं निश्चितरूपेण अधन्य और पुण्यहीन हूँ क्योकि मैंने इनमे से एक पुत्र की भी बालक्रीडा नही देखी। इस प्रकार देवकी खिन्न मन से हथेली पर मुख रखकर (शोक-मुद्रा मे) आर्तध्यान करने लगी।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सात-सात पुत्रो की माता बनने पर भी उनकी बाल्यक्रीडा आदि से वचित देवकी देवी की खिन्न अवस्था-विशेष मे उठने वाले सकल्प-विकल्पो का हृदय-द्रावक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण द्वारा चिन्तानिवारण का उपाय

१३—इमं च णं कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव [कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार] विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता देवइं देविं एव वयासी—

अण्णया णं अम्मो! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठतुट्ठा जाव [चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोम-

णस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया] भवह, किण्णं अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहयमणसकप्पा जाव [करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया] झियायह ?

तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेव एवं वयासी—एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव[1] नलकुब्बरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव ण मए एगस्स वि बालत्तणे अणुभूए । तुमं पि य ण पुत्ता ! छण्ह-छण्ह मासाणं मम अंतियं पायवदए हव्वमागच्छसि । तं धण्णाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव[2] झियामि ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइ देविं एवं वयासी—मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहयमणसंकप्पा जाव[3] झियायह । अहण्णं तहा जतिस्सामि जहा णं मम सहोदरे कणीयसे भाउए भविस्सति त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ । तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा अभओ । नवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं पगेण्हइ जाव [पगेण्हइत्ता पोसहसालाए पोसहिए बभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावन्नगविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसथारोवगयस्स अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता हरिणेगमेसिं देव मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ ।

तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे हरिणेगमेसिस्स देवस्स आसण चलइ । तए णं हरिणेगमेसी देवे आसणं चलियं पासइ पासित्ता, ओहिं पउंजति । तए णं तस्स हरिणेगमेसिस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एव खलु जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बारवई नयरीए पोसहसालाए कण्हे नामं वासुदेवे अट्ठमभत्तं परिगिण्हित्ता ण मम मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ । तं सेयं खलु मम कण्हस्स वासुदेवस्स अंतिए पाउब्भवित्तए ।" एवं संपेहेइ, सपेहित्ता उत्तरपुरच्छिम दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता विउव्विय-समुग्घाएण समोहणति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइ दड निसिरइ । त जहा—

(१) रयणाणं, (२) वइराण, (३) वेरुलियाण, (४) लोहियक्खाण, (५) मसारगल्लाणं, (६) हंसगब्भाणं, (७) पुलगाणं, (८) सोगंधियाणं, (९) जोइरसाणं, (१०) अकाण, (११) अंजणाणं, (१२) रययाण, (१३) जायरूवाणं, (१४) अजणपुलयाण, (१५) फलिहाण, (१६) रिट्ठाण अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हत्ति, परिगिण्हइत्ता कण्हमणुकंपमाणे देवे तओ विमाणवरपुण्डरियाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरिय-संजणितगयण-पयारो वाघुण्णितविमलकणगपयरगवडिसगमउडुक्कडाडोवदसिणिज्जो, अणेगमणि-कणग-रयण-पहकर-परिमंडितभत्तिचित्तविणिउत्तमगुणजणियहरिसे, पंखोलमाणवरललितकुंडलुज्जलियवयणगुणजनित-सोमरूवे, उदितो विव कोमुदीनिसाए सणिच्छरगारउज्जलियमज्झभागत्थे णयणाणदो, सरयचदो, दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदंसणाभिरामो उउलच्छिसमत्तजायसोहे पइट्ठगधुद्धुयाभिरामो मेरुरिव नगवरो, विगुव्वियविचित्तवेसे, दीवसमुद्दाण असंखपरिमाणनामधेज्जाण मज्झकारेण वीइवयमाणो, उज्जोयंतो पभाए विमलाए जीवलोग बारावइं पुरवर च कण्हस्स य तस्स पास उवयइ दिव्वरूवधारी ।

तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिखिणियाइ पवरवत्थाइं परिहिए-(एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो-) ताओ उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सीहाए उद्धुयाए

---

१ वर्ग ३ का सूत्र-५.   २ वर्ग ३ का सूत्र-१२

३ इसी सूत्र में ऊपर आ गया है ।

जइणाए छेयाए दिव्वाए देवगतीए जेणामेव बारवईए नयरे पोसहसालाए कण्हे वासुदेवे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंतरिक्खपडिवन्ने दसद्धवन्नाइं सखिखिणियाइं पवरवत्थाइ परिहिए-कण्ह वासुदेवं एवं वयासी—

"अहं ण देवाणुप्पिया! हरिणेगमेसी देवे महिड्ढिए, जं णं तुमं पोसहसालाए अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता ण ममं मणसि करेमाणे चिट्ठसि, तं एस णं देवाणुप्पिया! अहं इहं हव्वमागए। संदिसाहि णं देवाणुप्पिया! किं करेमि? किं दलामि? किं पयच्छामि? किं वा ते हिय-इच्छितं।"

तए ण से कण्हे वासुदेवे तं हरिणेगमेसिं देवं अतिलिक्खपडिवन्नं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसह पारेइ, पारित्ता करयलपरिग्गहिय] अजंलि कट्टु एवं वयासी—

इच्छामि ण देवाणुप्पिया! सहोदर कणीयसं भाउयं विदिण्णं।

उसी समय वहा श्रीकृष्ण वासुदेव स्नान कर, वलिकर्म कर, कौतुक-मगल और प्रायश्चित्त कर, वस्त्रालकारो से विभूषित होकर देवकी माता के चरण-वदन के लिये शीघ्रतापूर्वक आये। वे कृष्ण वासुदेव देवकी माता के दर्शन करते है, दर्शन कर देवकी के चरणो मे वदन करते है। चरणवन्दन कर देवकी देवी से इस प्रकार पूछने लगे—

"हे माता! पहले तो मै जव-जव आपके चरण-वन्दन के लिये आता था, तव-तव आप मुझे देखते ही हृष्ट तुष्ट यावत् आनदित हो जाती थी, पर माँ! आज आप उदास, चिन्तित यावत् आर्तध्यान मे निमग्न-सी क्यो दिख रही हो?"

कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर देवकी देवी कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगी—हे पुत्र! वस्तुत वात यह है कि मैंने समान आकृति यावत् समान रूप वाले सात पुत्रो को जन्म दिया। पर मैने उनमे से किसी एक के भी वाल्यकाल अथवा वाल-लीला का सुख नही भोगा। पुत्र! तुम भी छह छह महीनो के अन्तर से मेरे पास चरण-वदन के लिये आते हो। अत मैं ऐसा सोच रही हूँ कि वे माताए धन्य हैं, पुण्यशालिनी है जो अपनी सन्तान को स्तनपान कराती है, यावत् उनके साथ मधुर आलाप-सलाप करती है, और उनकी वालक्रीडा के आनन्द का अनुभव करती है। मैं अधन्य हूँ अकृत-पुण्य हूँ। यही सब सोचती हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार का आर्तध्यान कर रही हूँ।

माता की यह वात सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव देवकी महारानी से इस प्रकार बोले—"माताजी! आप उदास अथवा चिन्तित होकर आर्तध्यान मत करो। मैं ऐसा प्रयत्न करूगा जिससे मेरा एक सहोदर छोटा भाई उत्पन्न हो।" इस प्रकार कह कर श्रीकृष्ण ने देवकी माता को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ वचनो द्वारा धैर्य वधाया, आश्वस्त किया। इस प्रकार अपनी माता को आश्वस्त कर श्रीकृष्ण अपनी माता के प्रासाद से निकले, निकलकर जहा पौषधशाला थी वहा आये। आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टमभक्त तप (तेला) स्वीकार करके अपने मित्र देव की आराधना की थी, उसी प्रकार श्रीकृष्ण वासुदेव ने भी की। विशेपता यह कि इन्होने हरिणैगमेषी देव की आराधना की। आराधना मे अष्टम भक्त तप ग्रहण किया, ग्रहण करके पौषधशाला मे पौषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अगीकार करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलकारो का त्याग करके, माला, वर्णक और विलेपन का त्याग करके, शस्त्र-मूसल आदि अर्थात् समस्त आरभ-समारभ को छोडकर

एकाकी होकर, डाभ के सथारे पर स्थित होकर, तेला की तपस्या ग्रहण करके, हरिणैगमेषी देव का मन मे पुन पुन चिन्तन करने लगे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव का अष्टम भक्त तप प्राय पूर्ण होने आया, तव हरिणैगमेषी देव का आसन चलायमान हुआ। अपने आसन को चलित हुआ देखकर उसने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तव हरिणैगमेषी देव को इस प्रकार का यह आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—"जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे दक्षिणार्ध भरत मे द्वारका नगरी मे, पौषधशाला मे, कृष्ण वासुदेव अष्टमभक्त ग्रहण करके मन मे पुन पुन मेरा स्मरण कर रहा है, अतएव मुझे कृष्ण वासुदेव के समीप प्रकट होना (जाना) योग्य है।" देव इस प्रकार विचार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) मे जाता है और वैक्रियसमुद्घात करता है अर्थात् उत्तर वैक्रिय शरीर वनाने के लिये जीव-प्रदेशो को वाहर निकालता है। जीव-प्रदेशो को वाहर निकालकर सख्यात योजन का दड वनाता है। वह इस प्रकार—(१) कर्केतन रत्न, (२) वज्ररत्न, (३) वैडूर्य रत्न, (४) लोहिताक्ष रत्न, (५) मसारगल्ल रत्न, (६) हसगर्भ रत्न, (७) पुलक रत्न, (८) सौगधिक रत्न, (९) ज्योतिरस रत्न, (१०) अक रत्न, (११) अजन रत्न, (१२) रजत रत्न, (१३) जातरूप रत्न, (१४) अजनपुलक रत्न, (१५) स्फटिक रत्न, (१६) रिष्ट रत्न—इन रत्नो के यथावादर अर्थात् असार पुद्गलो का त्याग करता है और यथासूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलो को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर वनाता है) फिर कृष्ण वासुदेव पर अनुकपा करते हुए उस देव ने अपने रत्नो के उत्तम विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लिये शीघ्र ही गति का प्रचार किया, अर्थात् वह शीघ्रतापूर्वक चल पडा। उस समय चलायमान होते हुए निर्मल स्वर्ण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के उत्कट आडम्वर से वह दर्शनीय लग रहा था। अनेक मणियो, सुवर्ण और रत्नो के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुडलो से उज्ज्वल मुख की दीप्ति से उसका रूप वडा ही सौम्य हो गया। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि मे, शनि और मगल के मध्य मे स्थित और उदयप्राप्त शारद-निशाकर के समान वह देव दर्शको के नयनो को आनन्द दे रहा था। तात्पर्य यह है कि शनि और मगल ग्रह के समान चमकते हुए दोनो कुण्डलो के वीच मे उसका मुख शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य ओषधियो (जडी-वूटियो) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान, रूप से मनोहर, समस्त ऋतुओ की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभावाले तथा प्रकृष्ट गध के प्रसार से मनोहर मेरु पर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेष की विक्रिया की। वह असख्य-सख्यक और असख्य नामो वाले द्वीपो और समुद्रो के मध्य मे होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर द्वारका नगरी को प्रकाशित करता हुआ दिव्य रूपधारी देव कृष्ण वासुदेव के पास आ पहुँचा।

तत्पश्चात् दश के आधे अर्थात् पाँच वर्णवाले तथा घु घरूवाले उत्तम वस्त्रो को धारण किया हुआ वह देव आकाश मे स्थित होकर [कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार वोला—(यह एक प्रकार का गम (पाठ) है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है जो इस प्रकार है—] वह देव उत्कृष्ट त्वरावाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण उद्धत, शत्रु को जीतने वाली होने से जय करने वाली, निपुणता वाली और दिव्य देवगति से जहाँ जवूद्वीप था, जहाँ भारतवर्ष था और जहाँ दक्षिणार्ध भरत था, वही आता है, आकर के आकाश मे स्थित होकर पाँच वर्णवाले एव

घु घरूवाले उत्तम वस्त्रो को धारण किये हुए वह देव कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहने लगा—हे देवानुप्रिय ! मैं महान् ऋद्धिधारक हरिणैगमेषी देव हूँ। क्योंकि तुम पौषधशाला मे अष्टम-भक्त तप ग्रहण करके मुझे मन मे रखकर स्थित हो, इस कारण हे देवानुप्रिय ! मैं शीघ्र यहाँ आया हूँ। हे देवानुप्रिय ! बताओ तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ ? तुम्हे क्या दूँ ? तुम्हारे किसी सम्बन्धी को क्या दूँ ? तुम्हारा मनोवांछित क्या है ? तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने आकाशस्थित उस हरिणैगमेषी देव को देखा, और देखकर वह हृष्ट तुष्ट हुआ। पौषध को पाला-पूर्ण किया, फिर दोनो हाथ मस्तक पर जोडकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है।

देवकी देवी को आश्वासन

१४—तए णं से हरिणेगमेसी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोदरे कणीयसे भाउए। से णं उम्मुक्क जाव [वालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणग] मणुपत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मु डे जाव [भवित्ता आगाराओ अणगारियं] पव्वइस्सइ। कण्हं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदइ, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिवत्तइ, पडिणिवत्तित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

"होहिइ ण अम्मो ! मम सहोदरे कणीयसे भाउए त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं जाव [कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं वग्गूहिं] आसासेई, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तब हरिणैगमेषी देव श्रीकृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रिय ! देवलोक का एक देव वहाँ का आयुष्य पूर्ण होने पर देवलोक से च्युत होकर आपके सहोदर छोटे भाई के रूप मे जन्म लेगा और इस तरह आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा, पर वह बाल्यकाल बीतने पर, विज्ञ और परिणत होकर युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान् श्रीअरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर श्रमण-दीक्षा ग्रहण करेगा।" श्रीकृष्ण वासुदेव को उस देव ने दूसरी बार, तीसरी बार भी यही कहा और यह कहने के पश्चात् जिस दिशा से आया था उसी मे लौट गया।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण-वासुदेव पौषधशाला से निकले, निकलकर देवकी माता के पास आये, आकर देवकी देवी का चरण-वदन किया, चरण-वदन कर वे माता से इस प्रकार बोले—

"हे माता ! मेरा एक सहोदर छोटा भाई होगा। अब आप चिंता न करे। आपकी इच्छा पूर्ण होगी।" ऐसा कह करके उन्होने देवकी माता को मधुर एव इष्ट, कात, प्रिय, मनोज्ञ वचनो द्वारा आश्वस्त किया। आश्वस्त करके जिस दिशा से प्रादुर्भूत—प्रकट हुए थे उसी दिशा मे लौट गये।

विवेचन—प्रसन्न हुआ हरिणैगमेषी देव श्रीकृष्ण को उनके सहोदर भाई होने का आश्वासन देता है परतु साथ ही उसके दीक्षित हो जाने का सूचन भी करता है। श्रीकृष्ण माता देवकी के पास जाकर इस कार्य-सिद्धि की सूचना देते हैं। प्रस्तुत सूत्र मे कृष्ण द्वारा देवकी देवी को आश्वासन देने का उल्लेख किया गया है।

गजसुकुमार का जन्म

१५—तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव [वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे, बाहिरओ दूमिय-घट्ठमट्ठे, विचित्तउल्लोय-चिल्लियतले, मणि-रयण-पणासियंधयारे, बहुसम-सुविभत्तदेसभाए, पंचवण्ण-सरस-सुरभिमुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलिए, कालागुरुपवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवमघमघतगंधुद्धयाभिरामे, सुगंधि-वरगंधिए, गंधवट्टिभूए, तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगणवट्टिए, उभओविब्बोयणे, दुहओ उण्णए, मज्झे णय-गंभीरे, गंगा-पुलिण-वालुय-उद्दाल-सालिसए, उवचिय-खोमिय-दुगुल्लपट्टपडिच्छायणे, सुविरइयरयत्ताणे, रत्तंसुय-संवुए, सुरम्मे, आइणग-रुय-बूर-णवणीय-तूलफासे, सुगंध-वरकुसुम-चुण्ण-सयणोवयारकलिए, अद्धरत्तकालसमयंसि सुत्त-जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी अयमेयारूवं ओरालं, कल्लाणं, सिवं, धण्णं, मंगल्लं सस्सिरियं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा।

हार-रयय-खीरसागर-ससंककिरण-दगरय-रययमहसिल-पंडुरतरोरुरमणिज्ज-पेच्छणिज्जं, थिर-लट्ठ-पउट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्खदाढाविडंबियमुहं, परिकम्मियजच्चकमलकोमल-माइअसोभंतलट्ठउट्ठं, रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालुजीहं, मूसगयपवर-कणगतावियआवत्तायंत-वट्ट-तडिविमलसरिसणयणं, विसालपीवरोरुं, पडिपुण्णविपुलखंधं, मिउसिविसयसुहुमलक्खण-पसत्थ-विच्छिण्ण-केसरसडोवसोभियं, ऊसिय-सुणिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-लंगूलं, सोमं, सोमाकारं, लीलायंतं, जंभायंतं, णहयलाओ ओवयमाणं णिययवयणमइवयंतं], सीहं सुविणे पासित्ता पडिबुद्धा।

जाव [तए णं सा देवई देवी अयमेयारूवं ओरालं जाव-सस्सिरियं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समूसियरोमकूवा तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव वसुदेवस्स रण्णो सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वसुदेव-रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं, पियाहिं, मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं मिय-महुर-मंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ, पडिबोहित्ता वसुदेवेण अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि णिसीयइ णिसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया वसुदेवं रायं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव-संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगण० तं चेव जाव-णियगवयणमइवयंतं सीहं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तण्णं देवाणुप्पिया! एयस्स ओरालस्स जाव महासुविणस्स के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ? तए णं से कण्हे राया देवईए देवीए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० जाव हयहियए धाराहयणीवसुरभिकुसुमचंचुमालइयतणुय-ऊसवियरोमकूवे तं सुविणं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, ईहं पविसित्ता अप्पणो साभाविएण मइपुव्वएण बुद्धिविण्णाणेणं तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहणं करेइ तस्स० देवइ देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव मंगल्लाहिं मिय-महुर-सस्सिरि० संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी—

ओराले णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, कल्लाणे णं तुमे जाव सस्सिरीए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारए णं तुमे देवी! सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए! रज्जलाभो देवाणुप्पिए! एवं खलु

तुमं देवाणुप्पिए ! णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणराइंदियाण विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं, कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडेंसय, कुलतिलग, कुलकित्तिकर, कुलणदिकरं, कुलजसकरं, कुलाधारं, कुलापायव, कुलविवद्धणकरं, सुकुमालपाणि-पाय, अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं, जाव ससिसोमाकारं, कतं, पियदंसणं, सुरूवं, देवकुमारसमप्पभं दारगं पयाहिसि।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते वित्थिण्ण-विउल-बल-वाहणे रज्जवई राया भविस्सइ। तं उराले णं तुमे जाव सुमिणे दिट्ठे, आरोग्ग-तुट्ठि, जाव मंगलकारए ण तुमे देवी ! सुविणे दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो भुज्जो अणुवूहेइ।

देवई देवी वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल० जाव एवं वयासी—"एवमेय देवाणुप्पिया ! तहमेय देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! असंदिद्धमेय देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेय देवाणुप्पिया ! से जहेयं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु तं सुविण सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता वसुदेवेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी णाणामणि-रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियम-चवल जाव गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी—'मा मे से उत्तमे पहाणे मंगल्ले सुविणे अण्णेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्सइ' त्ति कट्टु देव-गुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं कहाहिं सुविणजागरय पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

तए णं वसुदेवे राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंगमहाणिमित्त-सुत्तत्थधारए, विविहसत्थकुसले, सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह।' तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता वसुदेवस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता सिग्घ तुरियं चवल चंड वेइय जेणेव सुविणलक्खणपाढगाण गिहाइ तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता ते सुविणलक्खणपाढए सद्दावेंति। तए ण ते सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ० ण्हाया कय० जाव सरीरा सिद्धत्थग-हरियालिय-कयमंगलमुद्धाणा सएहिं सएहिं गेहेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव कण्हस्स रण्णो भवणवरवडेंसए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल वसुदेव जएण विजएण वद्धावेंति। तए ण ते सुविणलक्खणपा-ढगा वसुदेवेणं रण्णा वंदिय-पूइअ-सक्कारिअ-सम्माणिआ समाणा पत्तेयं पत्तेय पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति। तए णं से वसुदेवे राया देवइ देविं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावेत्ता पुप्फ-फल पडिपुण्णहत्थे परेणं विणएण ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! देवई देवी अज्ज तंसि तारिसगंसि वासघरंसि जाव सीहं सुविणे पासित्ता ण पडिबुद्धा, तण्ण देवाणुप्पिया ! एयस्स ओरालस्स जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ?

तए ण सुविणलक्खणपाढगा वसुदेवस्स रण्णो अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० तं सुविणं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता तस्स सुविणस्स अत्थोग्गहण करेंति, तस्स० अण्णमण्णेणं सद्धिं संचालेंति, संचालित्ता तस्स सुविणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अभिगयट्ठा वसुदेवस्स रण्णो पुरओ सुविणसत्थाइ उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एव वयासि—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुविणसत्थंसि बायालीसं सुविणा, तीसं महासुविणा, बावत्तरिं सव्वसुविणा दिट्ठा। तत्थ ण देवाणुप्पिया ! तित्थयरमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा तित्थयरंसि वा चक्कवट्टिंसि

वा गब्भ वक्कममाणसि एएसि तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झति। तं जहा—

"गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभ।
पउमसर-सागर-विमाण-भवण-रयणुच्चय-सिहिं च॥"

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणसि एएसि चोद्दसण्हं महासुविणाण अण्णयरे सत्त महासुविणे पासित्ता ण पडिबुज्झति। बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भ वक्कममाणसि एएसि चोद्दसण्ह महासुविणाण अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता ण पडिबुज्झंति। मंडलियमायरो वा मडलियंसि गब्भं वक्कममाणसि एएसि चोद्दसण्ह महासुविणाणं अण्णयरे एग महासुविण पासित्ता णं पडिबुज्झति। इमे य णं देवाणुप्पिया! देवईए देवीए एगे महासुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग-तुट्ठि० जाव मंगल्लकारए ण देवाणुप्पिया! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, अत्थलाभो देवाणुप्पिया! भोगलाभो देवाणुप्पिया! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया! रज्जलाभो देवाणुप्पिया! एवं खलु देवाणुप्पिया! देवई देवी णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाण जाव वीइक्कताण तुम्ह कुलकेउं जाव पयाहिइ। से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे जाव रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा। त ओराले णं देवाणुप्पिया! देवईए देवीए सुविणे दिट्ठे, जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउअ-कल्लाण० जाव दिट्ठे।

तए ण से वसुदेवराया सुविणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० करयल जाव कट्टु ते सुविणलक्खणपाढगे एव वयासी—"एवमेय देवाणुप्पिया! जाव से जहेय तुब्भे वयह" ति कट्टु सुविण सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुविगलक्खण]पाढया [विउलेण असण-पाण-खाइम-साइम-पुप्फ-वत्थ-गध-मल्लालंकारेण सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता विउलं जीवियारिह पीइदाणं दलयइ, दलयित्ता पडिविसज्जेइ।] हट्ठहियया त गब्भ सुहंसुहेण परिवहइ।

तए णं सा देवई देवी नवण्ह मासाण पडिपुण्णाणं जासुमण-रत्तबधुजीवयलक्खारस-सरसपारिजातक-तरुणदिवायर-समप्पभ सव्वणयणकतं-सुकुमाल जाव [पाणिपाय अहीण-पडिपुण्ण-पंचिदिय-सरीरं लक्खण-वजण-गुणोववेअ माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुदरंगं ससि-सोमाकार-कत-पिय-दसण] सुरूव गयतालुसमाण दारय पयाया। जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव [तए णं ताओ अगपडियारिओ देवइं देविं नवण्हं मासाणं जाव दारयं पयाय पास ति, पासित्ता सिग्घ तुरिय चवल वेइयं, जेणेव वसुदेवे राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता वसुदेव राय जएण विजएणं वद्धावेंति। वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु एव वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! देवई देवी नवण्ह मासाणं जाव दारगं पयाया। तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो, पिय मे भवउ।

तए ण से वसुदेवे राया तासिं अंगपडियारियाणं अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विपुलेण य पुप्फगंधमल्लालकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थयधोयाओ करेइ, पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेइ, कप्पित्ता पडिविसज्जेइ।

तए ण से वसुदेवे राया कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बारवइ नयरिं आसित्त जाव परिगीय करेह, करित्ता चारगपरिसोहण करेह, करित्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह। जाव पच्चप्पिणंति।

तए ण से वसुदेवे राया अट्ठारससेणीप्पसेणीओ सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए अब्भितरवाहिरिए उस्सुक्कं उक्करं अभडप्पवेसं अंदडिम-कुडडिम अधरिम अधारणिज्ज अणुद्धुयमुइग अमिलायमल्लदाम गणियावरणाडइज्जकलियं अणेग-तालायराणुचरितं पमुइयपक्कीलियाभिराम जहारिहं ठिइवडियं दसदिवसियं करेह, करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

ते वि करेन्ति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणति ।

तए ण से वसुदेवे राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहिं दाएहिं भोगेहिं दलयमाणे दलयमाणे पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे एव च णं विहरइ ।

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेन्ति, करित्ता वितियदिवसे जागरियं करेन्ति, करित्ता ततिय दिवसे चदसूरदंसणिय करेन्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असुइजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे विपुल असण पाणं खाइम साइम उवक्खडावेन्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ-णियग सयण-सबधि-परिजणं बल च बहवे गणणायग-दंडनायग जाव आमंतेइ ।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मगल-पायच्छित्ता सव्वालकारविभूसिया महइ-महालयंसि भोयणमडवसि तं विपुलं असण पाणं खाइमं साइम मित्तणाइ० गणणायग जाव सद्धि आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च ण विहरइ ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य ण समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया त मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरिजण० गणणायग० विपुलेणं पुप्फगंधमल्लालकारेण सक्कारेंति, संमाणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एव वयासी—] "जम्हा ण अम्हं इमे दारगे गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्ह एयस्स दारगस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले २ । तए ण तस्स दारगस्स अम्मापियरे नाम करेंति गयसुकुमालोत्ति सेसं जहा मेहे जाव[1] अल भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।

तदनन्तर वह देवकी देवी अपने आवासगृह मे शय्या पर सोई हुई थी । वह वासगृह (शयनकक्ष) [भीतर से चित्रित था, बाहर से श्वेत और घिसकर चिकना बनाया हुआ था । उसका उपरिभाग विविध चित्रो से युक्त था और नीचे का भाग सुशोभित था । मणियो और रत्नो के प्रकाश से उसका अधकार नष्ट हो गया था । वह एकदम समतल सुविभक्त भाग वाला, पचवर्ण के सरस और सुवासित पुष्प-पुजो के उपचार से युक्त था । उत्तम-कालागुरु, कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस) की धूप से चारो ओर सुगन्धित, सुगन्धी पदार्थों से सुवासित एव सुगन्धित द्रव्य की गुटिका के समान था । उसमे जो शय्या थी वह तकिया सहित, सिरहाने और पायते दोनो ओर तकियायुक्त थी । दोनो ओर से उन्नत और मध्य मे कुछ नमी (झुकी हुई) थी । विशाल गगा के किनारे की रेती के अवदाल (पैर रखने से फिसल जाने) के समान कोमल, क्षोमिक—रेशमी दुकूलपट से आच्छादित, रजस्त्राण (उडती हुई धूल को रोकने वाले वस्त्र) से ढँकी हुई, रक्ताशुक (मच्छरदानी) सहित, सुरम्य आजिनक (एक प्रकार का चमडे का कोमल वस्त्र) रुई, बूर, नवनीत, अर्कतूल (आक की रुई) के समान कोमल स्पर्श वाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प, चूर्ण और अन्य शयनोपचार से युक्त थी । ऐसी शय्या पर सोई हुई देवकी देवी ने अर्द्ध निद्रित अवस्था मे अर्द्ध रात्रि के समय उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मगलकारक और शोभन महास्वप्न देखा और जागृत हुई ।

१ वर्ग ३, सूत्र २

मोतियो के हार, रजत, क्षीरसमुद्र, चन्द्रकिरण, पानी के विन्दु और रजत-महाशैल (वैताढच पर्वत के समान) श्वेत वर्णवाला, विशाल, रमणीय और दर्शनीय स्थिर और सुन्दर प्रकोष्ठवाला, गोल-पुष्ट-सुश्लिष्ट, विशिष्ट एव तीक्ष्ण दाढाओ से युक्त, मुँह को फाड़े हुए, सुसस्कृत उत्तम कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत, अत्यन्त सुशोभित ओष्ठवाला, रक्तकमल के पत्र के समान अत्यन्त कोमल जीभ और तालुवाला, मूस मे रहे हुए एव अग्नि से तपाये हुए तथा आवर्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्णवाली गोल विजली के समान आँखो वाला विशाल और पुष्ट जघा वाला, सपूर्ण और विपुल स्कन्ध वाला, कोमल, विशद-सूक्ष्म एव प्रशस्त लक्षणवाली केशर से युक्त, अपनी सुन्दर तथा उन्नत पूँछ को पृथ्वी पर फटकारता हुआ, सौम्य आकार वाला, लीला करता हुआ एव उवासी लेता हुआ सिंह अपने मुँह मे प्रवेश करता स्वप्न मे देखा ।]

वह देवकी देवी इस प्रकार के उदार यावत् शोभावाले महास्वप्न को देखकर जागृत हुई। वह हर्षित, सतुष्टहृदय यावत् मेघ की धारा से विकसित कदम्व पुष्प के समान रोमाचित होती हुई स्वप्न का स्मरण करने लगी । फिर रानी अपनी शय्या से उठी और शीघ्रता, चपलता, सभ्रम एव विलम्ब से रहित राजहस के समान उत्तम गति से चलकर, वसुदेव राजा के शयनगृह मे आयी। आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मगल, सुन्दर, मित, मधुर और मजुल (कोमल) वाणी से वोलती हुई वसुदेव राजा को जगाने लगी। राजा जागृत हुआ। राजा की आज्ञा होने पर, रानी विचित्र मणि और रत्नो की रचना से चित्रित भद्रासन पर वैठी। सुखद आसन पर वैठने के वाद स्वस्थ एव शात वनी हुई देवकी देवी इष्ट, प्रिय यावत् मधुर वाणी से इस प्रकार वोली—देवानुप्रिय ! आज तथाप्रकार की (उपर्युक्त वर्णनवाली) सुखशय्या मे सोते हुए मैंने, अपने मुख मे प्रवेश करते हुए सिंह के स्वप्न को देखा है। हे देवानुप्रिय ! इस उदार महास्वप्न का क्या फल होगा ? देवकी देवी की यह वात सुनकर और हृदय मे धारण करके राजा हर्षित और सतुष्ट हृदयवाला हुआ। मेघ की धारा से विकसित कदम्व के सुगन्धित पुष्प के समान रोमाचित वना हुआ वह राजा, उस स्वप्न का अवग्रहण (सामान्य विचार) तथा ईहा (विशेष विचार) करने लगा। ऐसा करके अपने स्वाभाविक वुद्धि-विज्ञान से उस स्वप्न के फल का निश्चय किया। तत्पश्चात् राजा इष्ट, कान्त, मगल, मित, मधुर वाणी से वोलता हुआ इस प्रकार कहने लगा—

हे देवी ! तुमने उदार स्वप्न देखा है। हे देवी ! तुमने कल्याणकारक स्वप्न देखा है यावत् हे देवी ! तुमने शोभा युक्त स्वप्न देखा है। हे देवी ! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष्य, कल्याण और मगलकारक स्वप्न देखा है। हे देवानुप्रिये ! तुम्हे अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा। देवानुप्रिये ! नव मास और साढे सात दिन बीतने के वाद तुम अपने कुल मे ध्वजा समान, दीपक समान, पर्वत समान, शिखर समान, तिलक समान और कुल की कीर्ति करने वाले, कुल को आनन्द देने वाले, कुल का यश वढाने वाले, कुल के लिये आधारभूत, कुल मे वृक्ष समान, कुल की वृद्धि करने वाले, सुकुमाल हाथ पाव वाले, हीनतारहित पचेन्द्रिय युक्त सपूर्ण शरीर वाले यावत् चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रिय-दर्शन, सुरूप एव देवकुमार के समान कान्ति-वाले पुत्र को तुम जन्म दोगी।

वह वालक वाल वय से मुक्त होकर विज्ञ और परिणत होकर, युवावस्था को प्राप्त करके शूरवीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल वल (सेना) तथा वाहन वाला, राज्य का स्वामी होगा। हे देवी ! तुमने उदार (प्रधान) स्वप्न देखा है। इस प्रकार हे देवी ! तुमने आरोग्य तुष्टि यावत

मगलकारक स्वप्न देखा है। इस प्रकार वसुदेव राजा ने इष्ट यावत् मधुर वचनो से देवकी देवी को यही बात दो तीन बार कही। वसुदेव राजा की पूर्वोक्त बात सुनकर और अवधारण कर देवकी देवी हर्षित एव सतुष्ट हुई और हाथ जोडकर इस प्रकार बोली—"हे देवानुप्रिय! आपने जो कहा है वह यथार्थ है, सत्य है और सन्देह रहित है। मुझे इच्छित और स्वीकृत है। पुन पुन इच्छित एव स्वीकृत है। इस प्रकार स्वप्न के अर्थ को स्वीकार कर वसुराजा की अनुमति से भद्रासन से उठी और शीघ्रता, एव चपलता रहित गति से अपने शयनागार मे आकर शय्या पर बैठी। रानी ने विचार किया 'यह मेरा उत्तम, प्रधान और, मगलरूप स्वप्न दूसरे पाप-स्वप्नो से विनष्ट न हो जाय' अत वह देव गुरु सम्बन्धी प्रशस्त और मगलरूप धार्मिक कथाओ और विचारणाओ से स्वप्न-जागरण करती हुई बैठी रही।

प्रात काल होने पर वसुदेव राजा ने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो! तुम शीघ्र जाओ और ऐसे स्वप्नपाठको को बुलाओ—जो अष्टाग महानिमित्त के सूत्र एव अर्थ के ज्ञाता हो और विविध शास्त्रो के ज्ञाता हो! राजाज्ञा को स्वीकार कर कौटुम्बिक पुरुष शीघ्र, चपलतायुक्त, वेगपूर्वक एव तीव्र गति से द्वारका नगरी के मध्य होकर स्वप्नपाठको के घर पहुचे और उन्हे राजाज्ञा सुनायी। स्वप्नपाठक प्रसन्न हुए। उन्होने स्नान करके शरीर को अलकृत किया। वे मस्तक पर सर्षप और हरी दूब से मगल करके अपने-अपने घर से निकले और राज्य-प्रासाद के द्वार पर पहुचे। फिर वे सभी स्वप्नपाठक एकत्रित होकर बाहर की उपस्थानशाला मे आये। उन्होने हाथ जोडकर जय-विजय शब्दो से वसुराजा को वधाया। वसुदेव राजा से वन्दित, पूजित, सत्कृत और सम्मानित किये हुए वे स्वप्नपाठक, पहले से रखे हुए उन भद्रासनो पर बैठे। वसुराजा ने देवकी देवी को बुलाकर यवनिका के भीतर बैठाया। तत्पश्चात् हाथो मे पुष्प और फल लेकर राजा ने अतिशय विनयपूर्वक उन स्वप्नपाठको से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो! आज देवकी देवी ने तथारूप (पूर्ववर्णित) वासगृह मे शयन करते हुए स्वप्न मे सिह देखा। हे देवानुप्रियो! इस प्रकार के स्वप्न का क्या फल होगा?"

वसु राजा का प्रश्न सुनकर, उसका अवधारण करके स्वप्नपाठक प्रसन्न हुए। उन्होने उस स्वप्न के विषय मे सामान्य विचार किया, विशेष विचार किया, स्वप्न के अर्थ का निश्चय किया, परस्पर एक दूसरे के साथ विचार-विमर्श किया और स्वप्न का अर्थ स्वय जानकर, दूसरे से ग्रहण कर तथा शका-समाधान करके अर्थ का अन्तिम निश्चय किया और वसुदेव राजा को सबोधित करते हुए इस प्रकार बोले—"देवानुप्रिय! स्वप्नशास्त्र मे बयालीस प्रकार के सामान्य स्वप्न और तीस महास्वप्न, इस प्रकार कुल बहत्तर प्रकार के स्वप्न कहे है। इनमे से तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती की माताए, जब तीर्थंकर या चक्रवर्ती गर्भ मे आते है, चौदह महास्वप्न देखती है—(१) हाथी, (२) वृषभ, (३) सिह, (४) अभिषेक की हुई लक्ष्मी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य, (८) ध्वजा, (९) कुम्भ (कलश), (१०) पद्म-सरोवर, (११) समुद्र, (१२) विमान अथवा भवन, (१३) रत्न-राशि और (१४) निर्धूम अग्नि।

इन चौदह महास्वप्नो मे से वासुदेव की माता, जब वासुदेव गर्भ मे आते है तब, सात स्वप्न देखती है। बलदेव की माता, जब बलदेव गर्भ मे आते है तब, इन चौदह स्वप्नो मे से चार महास्वप्न देखती हैं और माडलिक राजा की माता, इन चौदह महास्वप्नो मे से कोई एक महास्वप्न देखती है। हे देवानुप्रिय! देवकी देवी ने एक महास्वप्न देखा है। यह स्वप्न उदार, कल्याणकारी, आरोग्य, तुष्टि एव मगलकारी है। सुखसमृद्धि का सूचक है। इससे आपको अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ

और राज्य लाभ होगा। नव मास और साढे सात दिन व्यतीत होने पर देवकी देवी आपके कुल मे ध्वज समान पुत्र को जन्म देगी। यह बालक बाल्यावस्था पार कर युवक होने पर राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगार होगा। अत हे देवानुप्रिय! देवकी देवी ने यह उदार यावत् महाकल्याणकारी स्वप्न देखा है।

स्वप्नपाठको से यह स्वप्न-फल सुनकर एव अवधारण करके वसुदेव राजा हर्षित हुआ, सन्तुष्ट हुआ और हाथ जोडकर यावत् स्वप्नपाठको से इस प्रकार बोला—"देवानुप्रियो! जैसा आपने स्वप्नफल बताया वह उसी प्रकार है। इस प्रकार कहकर स्वप्न का अर्थ भली-भाति स्वीकार किया। फिर स्वप्न-पाठको को विपुल असन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलकारो से सत्कृत किया, सन्मानित किया और जीविका के योग्य बहुत प्रीतिदान दिया और उन्हे जाने की अनुमति दी।] तत्पश्चात् हर्षित एव हृष्ट-तुष्ट-हृदया होती हुई वह देवकी देवी सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन-पोषण करने लगी।

तत्पश्चात् उस देवकी देवी ने नवमास का गर्भ-काल पूर्ण कर जपा-कुसुम, लाल बन्धुजीवक-पुष्प के समान, लाक्षारस, श्रेष्ठ पारिजात एव प्रात कालीन सूर्य के समान कान्तिवाले, सर्वजन-नयनाभिराम सुकुमाल [हाथ पाव वाले, अगहीनतारहित, सपूर्ण पचेन्द्रियो से युक्त शरीर वाले, (स्वरूप की अपेक्षा से) परिपूर्ण व पवित्र (स्वस्तिक आदि) लक्षण, (तिल मष आदि) व्यजन और गुणो से युक्त, माप, भार और आकार-विस्तार से परिपूर्ण और सुन्दर बने हुए समस्त अगोवाले चन्द्र के समान सौम्य आकार वाले, कान्त और प्रियदर्शी सुन्दर गज-तालु के समान रूपवान् पुत्र को जन्म दिया। जन्म का वर्णन मेघकुमार के समान समझे। वह इस प्रकार है—तत्पश्चात् दासियाँ देवकीदेवी को नौ मास पूर्ण होने पर पुत्र उत्पन्न हुआ देखती है, देखकर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली काय से चपल एव वेग वाली वे दासियाँ जहाँ वसुदेव राजा है वहा आती है। आकर वसुदेव राजा को जय-विजय शब्द कहकर बधाई देती है, बधाई देकर दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर आवर्तन करके अजलि करके इस प्रकार कहती है—"हे देवानुप्रिय! देवकी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्र का प्रसव किया है। हम देवानुप्रिय को यह प्रिय (समाचार) निवेदन करती हैं। आपको प्रिय हो। तत्पश्चात् वसुदेव राजा उन दासियो से यह अर्थ सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट तुष्ट हुआ। उसने उन दासियो का मधुर वचनो से तथा विपुल पुष्पो, गधमालाओ और आभूषणो से सत्कार और सन्मान करके उन्हे मस्तक-धौत किया अर्थात् दासीपन से मुक्त कर दिया। उन्हे ऐसी आजीविका कर दी कि उनके पुत्र-पौत्र आदि तक चलती रहे। इस प्रकार विपुल द्रव्य देकर उन्हे विदा किया। तत्पश्चात् वसुदेव राजा कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाता है, बुलाकर इस प्रकार आदेश देता है—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही द्वारका नगरी मे सुगन्धित जल छिडको, यावत् सर्वत्र (मगल गान कराओ। कारागार से कैदियो को मुक्त करो। यह सब करके यह आज्ञा वापस सौपो यावत् कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा के अनुसार कार्य करके आज्ञा वापस सौपते है। तत्पश्चात् वसुदेव राजा कुभकार आदि जाति रूप अठारह श्रेणियो को और उनके उपविभागरूप अठारह प्रश्रेणियो को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहते है—देवानुप्रियो! तुम जाओ और द्वारका नगरी के भीतर और बाहर दस दिन की स्थितिपतिका (कुल मर्यादा के अनुसार होने वाली पुत्र-जन्मोत्सव की विशिष्ट रीति) कराओ। वह इस प्रकार है—दस दिनो तक शुल्क (चुगी) बन्द किया जाय, प्रतिवर्ष लगने वाला कर माफ किया जाय, कुटुम्बियो और किसानो आदि के घर मे बेगार लेने आदि के लिये

राजपुरुषो का प्रवेश निषिद्ध किया जाय, दड (अपराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य) और कुदड (अल्प दड—बडा अपराध करने पर भी लिया जाने वाला थोडा द्रव्य) न लिया जाय, किसी को ऋणी न रहने दिया जाय अर्थात् राजा की ओर से सव का ऋण चुका दिया जाय। किसी देनदार को पकडा न जाय, ऐसी घोषणा कर दो। तथा सर्वत्र मृदग आदि वाजे वजवाओ। चारो ओर विकसित ताजा फूलो की मालाएँ लटकाओ। गणिकाएँ जिनमे प्रधान है, ऐसे पात्रो से नाटक करवाओ। अनेक तालाचारो (प्रेक्षाकारियो) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर क्रीडा करे। इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो कराओ और मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस सौपो।

राजा वसुदेव का यह आदेश सुनकर वे इसी प्रकार करते है और राजाज्ञा वापिस करते है।

तत्पश्चात् वसुदेव राजा वाहर की उपस्थानशाला (सभा) मे, पूर्व की ओर मुख करके, श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा और सैकडो, हजारो और लाखो के द्रव्य से याग (पूजन) एव दान दिया। आय मे से अमुक भाग दिया। और प्राप्त होने वाले द्रव्य को ग्रहण करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जातकर्म (नाल काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि-जागरण) किया। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर वारहवाँ दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार तैयार करवाया। तैयार करवाकर मित्रो, वन्धु आदि ज्ञातिजनो, पुत्र आदि निजको, काका आदि स्वजनो, श्वसुर आदि सम्बधिजनो, दास आदि परिजनो तथा सेना—और वहुत से गणनायक, दडनायक आदि को आमत्रण दिया।

उसके पश्चात् स्नान किया, बलिकर्म किया, मषितिलक आदि कौतुक किया, मगल किया, प्रायश्चित्त किया और सर्व अलकारो से विभूषित हुआ। फिर वहुत विशाल भोजन-मडप मे, उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र, ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन, विस्वादन, परस्पर विभाजन और परिभोग करता हुआ विचरने लगा।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् वे सव बैठने के स्थान पर आये। शुद्ध जल से आचमन (कुल्ला) किया। हाथ-मुँह धोकर स्वच्छ हुए, परम शुचि हुए। फिर उन मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन, सम्बन्धीजन, परिजन आदि तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गध, माला और अलकार से सत्कार किया, सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके इस प्रकार कहा]—"क्योकि हमारा यह बालक गज के तालु के समान सुकोमल एव सुन्दर है, अत हमारे इस बालक का नाम गजसुकुमाल (गज-सुकुमार) हो।" इस प्रकार विचार कर उस बालक के माता-पिता ने उसका "गजसुकुमार" यह नाम रखा। शेष वर्णन मेघकुमार के समान समझना। क्रमश गजसुकुमार भोग भोगने मे समर्थ हो गया।

विवेचन—इस सूत्र मे माता देवकी का स्वप्न मे सिंह देखना, जागने पर पतिदेव को अपने स्वप्न का हाल कहना, पतिदेव द्वारा स्वप्नपाठको को बुलवाना, स्वप्न-पाठको द्वारा स्वप्नो का विवरण प्रस्तुत करना और स्वप्न का फल बतलाना, गर्भ-सरक्षण करना, यथासमय (नौ मास व्यतीत होने पर) हाथी के तालु के समान रक्त एव कोमल पुत्र का जन्म होना, और उसका गजसुकुमार नाम-सस्कार करना, अन्त मे गजसुकुमार का बाल्यावस्था से युवावस्था मे पदार्पण करना, इन सव वातो का वर्णन किया गया है।

तीर्थंकर और चक्रवर्ती के गर्भ मे आने पर उनकी माताए चौदह महास्वप्न देखती है। उनमे मे बारहवे स्वप्न मे 'विमान या भवन' देखती है। यहाँ विमान या भवन के विकल्प का आशय यह है कि जो जीव देवलोक से आकर तीर्थंकर रूप मे जन्म लेता है उसकी माता स्वप्न मे विमान देखती है और जो जीव नरक मे आकर तीर्थंकर के रूप मे जन्म लेता है उसकी माता स्वप्न मे भवन देखती है।

जासुमणा समप्पभ पद की व्याख्या इस प्रकार है—जासुमणा-जयसुमन—जया एक वनस्पति विशेष का नाम है। इसे जासु या अडहुल भी कहते है। संस्कृत-शब्दार्थकौस्तुभ नामक संस्कृत कोष मे जया का अर्थ—"सदाबहार गुलाब का फूल या पौधा" ऐसा लिखा है। जया के फूलो को 'जासुमन' कहा जाता है, ये पुष्प रक्तवर्ण होते है।

रत्तबंधुजीवग—रक्तबधु-जीवक यह शब्द रक्त और बन्धुजीवक इन दो पदो से बना है। रक्त लाल वर्ण को कहते हैं, बधुजीवक शब्द का अर्थ होता है—गुल्म-विशेष—दुपहरिया का पौधा, जिसमे लाल रग के फूल लगते हैं और जो बरसात मे फूलता है। दोनो का सम्मिलित अर्थ है—लाल रग का दुपहरियानामक एक गुल्म विशेष। आचार्य अभयदेव सूरि के अनुसार बन्धुजीवक पाच वर्णवाले पुष्प विशेष होते हैं।[1] प्रस्तुत मे रक्तवर्ण अभीष्ट है, अत सूत्रकार ने बन्धुजीवक शब्द के साथ रक्त शब्द का प्रयोग किया है। सचित्र अर्धमागधी कोष मे रक्त बधुजीवक का अर्थ—वर्षा ऋतु मे उत्पन्न होने वाला, गोगलगाय, देवगाय, इन्द्रगोप, नामक लाल रग का जीव। अर्धमागधी कोषकार ने रक्तबन्धुजीवक शब्द का जो अर्थ लिखा है, उसे लोकभाषा मे इन्द्रगोप या (वीर बहूटी) कहते हैं। यह जीव रक्तवर्ण का तथा मखमल जैसा नरम होता है।

लक्खारस—लाक्षारस—महावर, लाख के रग का नाम है। यह रक्त होता है, इसे स्त्रिया अपने पावो मे लगाती हैं।

सरस—पारिजातक—मे सरस शब्द विकसित—खिला हुआ, इस अर्थ का बोधक है। पारिजातक शब्द के अनेको अर्थ उपलब्ध होते है, १—पुष्प-विशेष, २—फरहद का फूल जो रक्त वर्ण का और अत्यन्त शोभायमान होता है, ३—देववृक्ष-विशेष, ४—कल्पतरु-विशेष। प्रस्तुत मे पारिजातक का अर्थ रक्तवर्णीय पुष्प ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

तरुण दिवायर—इस पद मे प्रयुक्त 'तरुण' शब्द युवा अर्थ का बोधक है और मध्याह्नकाल मे ही सूर्य तरुण-युवा अवस्था को प्राप्त हुआ माना जाता है, अत मध्याह्न के सूर्य को ही 'तरुण दिवाकर' कह सकते हैं, परन्तु प्रस्तुत मे यह अर्थ इष्ट नही है। राजकुमार गजसुकुमार का वर्ण रक्त होन से दोपहर के सूर्य के साथ उसका सादृश्य नही हो सकता। यही कारण है कि आचार्य अभयदेव सूरि ने तरुण-दिवाकर का अर्थ उदीयमान—उदय होता हुआ सूर्य किया है। यह अर्थ उचित भी है, क्योकि उदीयमान सूर्य का वर्ण लाल होता है, अत राजकुमार गजसुकुमार के रक्त वर्ण के साथ इसका सम्बन्ध ठीक बैठ जाता है। इसके अतिरिक्त तरुण शब्द रक्त अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के ३४ वे अध्ययन के तेजोलेश्या-प्रकरण मे लिखा है—

"हिंगुल धाउ सकासा, तरुणाइच्चसनिभा।
सुयतु डपईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ॥"

---

१. वृत्ति-पत्र-९

अर्थात् हिगुल धातु, तरुण सूर्य, तोते की चोच और दीपशिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है। प्रस्तुत सूत्र मे तरुण शब्द रक्त अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, अन्यथा तेजोलेश्या के वर्ण सम्बन्धी अर्थ की सगति नही हो सकती।

जपासुमन, रक्तबन्धु-जीवक, लाक्षारस, सरस पारिजातक और तरुण दिवाकर समान जिसकी प्रभा हो, कान्ति हो, चमक हो, वर्ण हो, उसको 'जपासुमन—रक्तवन्धुजीवक-लाक्षारस-सरस पारिजातक-तरुण दिवाकर-समप्रभ' कहते है।

गय-तालुय-समाण—अर्थात्—गज हाथी को कहते हैं। तालु अर्थात् ऊपर के दातो और कौवे के बीच का गड्ढा। गज के तालु को गजतालु कहते है। गज के तालु के समान जिसका तालु हो वह 'गज-तालु-समान' कहलाता है। वैसे सभी प्राणियो का तालु रक्त और कोमल होता है पर हाथी का तालु विशेष रूप से रक्त और कोमल माना गया है।

राजकुमार गजसुकुमार के युवक हो जाने पर उसके विवाह आदि के सम्बन्ध मे क्या हुआ? इस जिज्ञासा के सम्बन्ध मे सूत्रकार कहते है—

सोमिल ब्राह्मण

१६—तत्थ ण बारवईए नयरीए सोमिले नाम माहणे परिवसइ—अड्ढे। रिउव्वेय जाव [जजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहासपंचमाण, निघंटुछट्ठाणं चउण्ह वेदाणं संगोवंगाणं-सरहस्साणं सारए, वारए, धारए, पारए, सडगवी, सट्ठिततविसारए, सखाणे, सिक्खाकप्पे, वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे, अन्नेसु य बहूसु बम्हण्णएसु परिवायएसु नयेसु] सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिल-माहणस्स सोमसिरी नाम माहणी होत्था। सूमाल०। तस्स ण सोमिलस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था। सोमाला जाव[1] सुरूवा। रूवेण जाव (जोव्वणेणं) लावण्णेण उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था। तए ण सा सोमा दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया जाव[2] विभूसिया, बहूहि खुज्जाहि जाव[3] परिक्खित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गसि कणगतिंदूसएण कीलमाणी चिट्ठइ।

उस द्वारका नगरी मे सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समृद्ध था और ऋग्वेद, [यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इन चारो वेदो, पाचवे इतिहास, तथा छट्ठे निघण्टु, इन सबके अगोपाग सहित रहस्य का ज्ञाता था। वह इनका 'सारक' (स्मारक) अर्थात् इनको पढानेवाला था, अत इनका प्रवर्तक था अथवा जो कोई वेदादि को भूल जाता था उसको पुन याद कराता था, अत वह स्मारक था। वह वारक था अर्थात् जो कोई दूसरे लोग वेदादि का अशुद्ध उच्चारण करते थे, उनको रोकता था, इसलिये वह 'वारक' था। वह 'धारक' था अर्थात् पढे हुए वेदादि को नही भूलनेवाला था अपितु उनको अच्छी तरह धारण करनेवाला था। वह वेदादि का 'पारक'—पारगत था। छह अगो का ज्ञाता था। षष्ठितन्त्र (कापिलीय शास्त्र) मे विशारद (पडित) था। वह गणितशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, आचारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, इन सब शास्त्रो मे तथा दूसरे बहुत से] ब्राह्मण और पारिव्राजक सम्बन्धी शास्त्रो

१ देखिए, तृतीय वर्ग का प्रथमसूत्र।
२ देखिए, तृतीय वर्ग का नवमसूत्र।
३ देखिए, वर्ग ३, अ १, सूत्र २।

मे वडा निपुण था। उस सोमिल ब्राह्मण के सोमश्री नामकी ब्राह्मणी (पत्नी) थी। सोमश्री सुकुमार एव रूपलावण्य और यौवन से सम्पन्न थी। उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री और सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा नाम की कन्या थी, जो सुकोमल यावत् वडी रूपवती थी। रूप, आकृति तथा लावण्य-सौन्दर्य की दृष्टि से उस मे कोई दोष नही था, अतएव वह उत्तम तथा उत्तम शरीरवाली थी। वह सोमा कन्या अन्यदा किसी दिन स्नान कर यावत् वस्त्रालकारो से विभूषित हो, वहुत सी कुब्जाओ, यावत् महत्तरिकाओ से घिरी हुई अपने घर से वाहर निकली। घर से बाहर निकल कर जहा राजमार्ग था, वहाँ आई और राजमार्ग मे स्वर्ण की गेद से खेल खेलने लगी।

सोमिलकन्या का अन्त पुर मे प्रवेश

१७—तेणं कालेण तेण समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे। परिसा निग्गया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धि हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेण छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्व-माणीहिं बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवदए निग्गच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सोमिलं माहणं जायित्ता सोमं दारियं गेण्हह, गेण्हित्ता कण्णंतेउरंसि पक्खिवह। तए ण एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ। तए णं कोडु बिय जाव [पुरिसा सोमं दारिय गेण्हित्ता कण्णतेउरसि] पक्खिवति।

उस काल और उस समय मे अरिहत अरिष्टनेमि द्वारका नगरी मे पधारे। परिषद् धर्म-कथा मुनने को आई।

उस समय कृष्ण वासुदेव भी भगवान् के शुभागमन के समाचार से अवगत हो, स्नान कर, यावत् वस्त्रालकारो से विभूषित हो गजसुकुमाल कुमार के साथ हाथी के होदे पर आरूढ होकर कोरट पुष्पो की माला सहित छत्र धारण किये हुए, श्वेत एव श्रेष्ठ चामरो से दोनो ओर से निरन्तर वीज्यमान होते हुए, द्वारका नगरी के मध्य भाग से होकर अर्हत् अरिष्टनेमि के चरण-वन्दन के लिये जाते हुए, राज-मार्ग मे खेलती हुई उस सोमा कन्या को देखते है। सोमा कन्या के रूप, लावण्य और कान्ति-युक्त यौवन को देखकर कृष्ण वासुदेव अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए। तव वह कृष्ण वासुदेव आज्ञाकारी पुरुषो को बुलाते है। बुलाकर इस प्रकार कहते है—

"हे देवानुप्रियो! तुम सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ और उससे इस सोमा कन्या की याचना करो, उसे प्राप्त करो और फिर उसे लेकर कन्याओ के अन्त पुर मे पहुँचा दो। यह सोमा कन्या, मेरे छोटे भाई गजकुसुमाल की भार्या होगी।" तव आज्ञाकारी पुरुषो ने यावत् वैसा ही किया।

विवेचन—'कन्नतेउरसि'—इस पद मे कन्या और अन्त पुर ये दो शब्द हैं। कन्या, कुमारी या अविवाहिता लडकी का नाम है। अन्त पुर—स्त्रियो के राजकीय आवास भवन को कहते हैं। दोनो शब्दो को मिलाने पर अर्थ होता है—वह राजमहल जिसमे अविवाहित लडकियाँ रहती हैं। प्रस्तुत सूत्र मे 'कन्न तेउरसि' शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि उस समय गजसुकुमाल के विवाहार्थ अनेक कुमारिया एकत्रित की गई थी।

भगवान् अरिष्टनेमि की उपासना

१८—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जाव [जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स छत्तातिछत्तं पडागातिपडाग विज्जाहरचारणे जंभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासइ, पासित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं पंचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ। तंजहा—(१) सचित्ताणं दव्वाण विउसरणयाए (२) अचित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए (३) एगसाडियं उत्तरासंगकरणेण (४) चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं (५) मणसो एगत्तीकरणेण। जेणामेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमसमाणे पंजलिउडे अभिमुहे विणएणं] पज्जुवासइ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य भाग से होते हुए निकले, [निकलकर जहा सहस्राम्रवन उद्यान था और भगवान् अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये। आकर अरिहत अरिष्टनेमि स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओ पर पताका आदि अतिशयो को देखा तथा विद्याधरो, चारण मुनियो और जृभक देवो को नीचे उतरते हुए एव ऊपर उठते हुए देखा। देखकर पांच प्रकार अभिगम करके अरिहत अरिष्टनेमि स्वामी के सन्मुख चले। वे पाच अभिगम इस प्रकार हैं—(१) पुष्प-पान आदि सचित्त द्रव्यो का त्याग, (२) वस्त्र-आभूषण आदि अचित्त द्रव्यो का अत्याग, (३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासग, (४) भगवान् पर दृष्टि पडते ही दोनो हाथ जोडना और (५) मन को एकाग्र करना। ये अभिग्रह करके जहा अर्हत् भगवान् अरिष्टनेमि थे वहा आये। आकर अरिहत अरिष्टनेमि को दक्षिण दिशा से आरम्भ करके (तीन बार) प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान् को स्तुतिरूप वन्दन किया और नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके भगवान् के अत्यन्त समीप नही और अत्यन्त दूर भी नही, ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर. धर्मोपदेश सुनने की इच्छा करते हुए, नमस्कार करते हुए, दोनो हाथ जोडे, सन्मुख रहकर] उपासना करने लगे।

धर्मदेशना और विरक्ति

१९—तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य धम्मं कहेइ, कण्हे पडिगए। तए णं से गयसुकुमाले अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा, [जं नवरं, अम्मापियरं आपुच्छामि जहा मेहो महेलियावज्ज जाव वड्ढियकुले][1] [निसम्म हट्ठतुट्ठे अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भते! निग्गंथं पावयणं,

१ यहाँ सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को "जहा मेहो" यह कहकर मेघकुमार के समान बताकर आगे "महेलियावज्ज" पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है महिलारहित या अविवाहित। ज्ञाता० मे मेघकुमार को विवाहित व्यक्त किया है। अत यहाँ प्रस्तुत शब्द से दोनो की स्थिति की विभिन्नता दर्शायी है। यहाँ 'जाव' पाठ की पूर्ति हेतु इस विभिन्नता को दृष्टि मे रख कर उपयुक्त पूर्ति-पाठो को नये पैरेग्राफ से शुरू किया गया है।

अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं । एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह ! नवरि देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि । तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

तए णं से गयसुकुमाले अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणामेव हत्थिरयणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधवरगए महयाभड—चडगर—पहकरेणं बारवईए नयरीए मज्झमज्झेणं जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊणं पायवडणं करेइ, करित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अम्मापियरो एवं वयासी धन्नोसि तुमं जाया ! सपुण्णोसि तुमं जाया ! कयत्थोसि तुमं जाया ! कयलक्खणोसि तुमं जाया ! जण्णं तुमे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए णं से गयसुकुमाले अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! मए अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं सा देवई देवी तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं असुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म इमेणं एयारूवेणं मणोमाणसिएणं महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूया समाणी सेयागय—रोमकूवपगलंत-चिलिणगाया[1] सोयभर-पवेवियंगी नित्तेया दीण-विमण-वयणा करयलमालिय व्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीर-लावण्णसुन्न-निच्छाय-गयसिरीया पसिढिलभूसण-पडंतखुम्मिय-संचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ठ-उत्तरिज्जा सूमालविकिण्ण-केसहत्था मुच्छावसनट्ठचेय-गरुई परसुनियत्त व्व चंपगलया निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी विमुक्कसंधि-बंधणा कोट्टिमलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति पडिया ।

तए णं सा देवई देवी ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गय-सीयल-जलविमल-धाराए परिसिंचमाणनिव्वावियगायलट्ठी उक्खेवय-तालविंट-वीयणग-जणियवाएणं सफुसिएणं अंतेउर-परिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगास-पवडंत-अंसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे, कलुण-विमण-दीणा रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी गयसुकुमालं कुमारं एवं वयासी—

"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-ऊसासिए हियय-णंदि-जणणे उंबरपुप्फं व दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए । तं भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो ! तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतु-कज्जम्मि निरावयक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।

---

१ पाठान्तर—विलीणगाया

तए ण से गयसुकुमाले अम्मापिऊहिं एव वुत्ते समाणे अम्मापियरो एव वयासी—तहेव णं तं अम्मो ! जहेव ण तुब्भे मम एव वयह—"तुम सि ण जाया ! अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मए बहुमए अणुमए भडकरडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविय-उस्सासिए हियय-णदि करे उबरपुप्फ व दुल्लहे सवणयाए, किमग पुण पासणयाए ? नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए । त भुंजाहि ताव जाया ! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वय जीवामो । तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहि परिणयवए वड्ढिय-कुलवंसतंतुकज्जम्मि निराव-यक्खे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।" एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणितिए असासए वसणसओवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सब्भब्भरागसरिसे सुविणदसणोवमे सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मे पच्छा पुर च णं अवस्सविप्पजहणिज्जे । से के ण जाणइ अम्मयाओ । के पुव्वि गमणाए के पच्छा गमणाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता ण अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए ण त गयसुकुमाल कुमार अम्मापियरो एव वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य सुवण्णे य कसे य दूसे य मणिमोत्तिय-सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-सतसार-सावएज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पगाम दाउं पगाम भोत्तुं पगामं परिभाएउ । तं अणुहोही ताव जाया ! विपुलं माणुस्सग इड्ढिसक्कारसमुदयं । तओ पच्छा अणुभूय-कल्लाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।

तए ण से गयसुकुमाले अम्मापियरं एवं वयासी—तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एव वयह—"इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग-पिउपज्जयागए जाव पव्वइस्ससि ।"- एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य जाव सावएज्जे य अग्गिसाहिए चोरसाहिए रायसाहिए दाइयसाहिए मच्चु-साहिए, अग्गिसामण्णे चोरसामण्णे रायसामण्णे दाइयसामण्णे मच्चुसामण्णे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च ण अवस्स विप्पजहणिज्जे । से के णं जाणइ अम्मयाओ ! कि पुव्वि गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो सचाएंति गयसुकुमालं कुमारं बहूहिं विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवित्तए वा पण्णवित्तए वा सण्णवित्तए वा विण्णवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं सजमभउव्वेयकारियाहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी—

एस णं जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे नेयाउए ससुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्खपहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोय-गमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्ख कमियव्वं, गरुअ लबेयव्वं, असिधारव्वयं चरियव्वं ।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा कीयगडे वा ठविए वा रइए वा दुब्भिक्खभत्ते वा कंतारभत्ते वा बद्दलियाभत्ते वा गिलाणभत्ते वा मूलभोयणे वा कंदभोयणे वा फलभोयणे वा बीयभोयणे वा हरियभोयणे वा भोत्तए वा पायए वा ।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव ण दुहसमुचिए, नालं सीयं नालं उण्हं नाल खुह नालं पिवासं नाल वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइए विविहे रोगायके, उच्चावए गामकंटए, बावीसं परीसहोवसग्गे उदिण्णे सम्मं अहियासित्तए । त भुंजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।

तए ण से गयसुकुमाले कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियर एवं वयासी— तहेव णं तं अम्मयाओ ! जं ण तुब्भे मम एव वयह—"एस ण जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे पुणरवि तं चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइस्ससि ।" एव खलु अम्मयाओ ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराण कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोगनिप्पिवासाण दुरणुचरे पाययजणस्स, नो चेव णं धीरस्स । निच्छियव-वसियस्स एत्थ किं दुक्कर करणयाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए ।]

तए ण से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छगे निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी—'तुम मम सहोदरे कणीयसे भाया । तं मा ण तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मु डे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वयाहि । अहण्ण तुमे बारवईए नयरीए महया-महया रायाभिसेएण अभिसिंचिस्सामि ।' तए णं से गयसुकुमाले कण्हेण वासुदेवेण एव वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ । तए णं से गयसुकुमाले कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया काम [भोगा असुई वतासवा पित्तासवा] खेलासवा जाव [सुक्कासवा सोणियासवा दुरूय-उस्सास नीसासा दुरूय-मुत्त-पुरीस-पूय-बहुपडिपुण्णा उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-सुक्क-सोणियसभवा अधुवा अणितिया असासया सडण-पडण-विद्धंसणधम्मा पच्छा पुरं च ण अवस्स] विप्पजहियव्वा भविस्सति, त इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए जाव [मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए ।

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमार कुमार प्रमुख उस सभा को धर्मोपदेश दिया । प्रभु की अमोघ वाणी सुनने के पश्चात् कृष्ण अपने आवास को लौट गये । तदनन्तर गजसुकुमार कुमार भगवान् श्री अरिष्टनेमि के पास धर्मकथा सुनकर विरक्त होकर बोले—भगवन् ! माता-पिता से पूछकर मैं आपके पास दीक्षा ग्रहण करूंगा । मेघ कुमार की तरह, विशेष रूप से माता-पिता ने उन्हे महिलावर्ज (अविवाहित अवस्था-अर्थात् विवाह और) वशवृद्धि होने के बाद दीक्षा ग्रहण करने को कहा ।

[तत्पश्चात् गजसुकुमाल (र) कुमार ने अरिहत अरिष्टनेमि स्वामी के पास से धर्म-श्रवण करके और उसे हृदय मे धारण करके, हृष्ट-तुष्ट होकर अरिहत अरिष्टनेमि स्वामी को तीन बार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन् ! मै निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूँ । मैं उस पर प्रतीति करता हूँ । मुझे निर्ग्रन्थ-प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिनशासन के अनुसार आचरण करने की अभिलाषा करता हूँ । भगवन् ! मै निर्ग्रन्थप्रवचन को अगीकार करना

चाहता हूँ। भगवन् ! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं), यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन् ! मैंने इसकी इच्छा की है, पुन पुन इच्छा की है, भगवन् ! यह इच्छित और पुन पुन. इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप फरमाते हैं। विशेष वात यह है कि, हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा ले लूँ, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूँगा।"

भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय ! जिससे तुझे सुख उपजे वह कर, परतु उसमे विलम्ब न करना।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल (र) कुमार ने अरिहत अरिष्टनेमि को वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की, नमस्कार किया, स्तुति-नमस्कार करके जहा हस्तिरत्न था, वहा गये। जाकर हाथी के कन्धे पर बैठकर महान् सुभटो और विपुल समूह वाले परिवार के साथ द्वारका नगरी के बीचो-बीच होकर जहा अपना घर था, वहा आये, आकर हस्ति-स्कन्ध से उतरकर, माता-पिता के पैरो मे प्रणाम करके इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैंने भगवान् अरिष्टनेमि के समीप धर्म श्रवण किया है और मैंने उसकी प्राप्ति की इच्छा की है, वार-वार इच्छा की है। वह मुझे रुचा है।'

तत्पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता इस प्रकार वोले—'पुत्र ! तुम धन्य हो, पुत्र ! तुम पुण्यवान् हो, हे पुत्र ! तुम कृतार्थ हो, कि तुमने भगवान् अरिष्टनेमि के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म भी तुम्हे इष्ट पुन पुन इष्ट और रुचिकर हुआ है।'

तत्पश्चात् गजसुकुमाल माता-पिता को दूसरी वार और तीसरी वार इस प्रकार कहने लगा—माता-पिता ! मैंने अरिहत भगवान् अरिष्टनेमि के पास धर्म श्रवण किया है। उस धर्म की मैंने इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है, वह मुझे रुचिकर हुआ है। अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी अनुमति पाकर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अनगारिता की प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् देवकी देवी उस अनिष्ट (अनिच्छित) अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम (मन को न रुचने वाली) पहले कभी न सुनी हुई, कठोर वाणी को सुनकर और हृदय मे धारण करके मनोगत महान् पुत्र-वियोग के दु ख से पीड़ित हुई। उसके रोमकूपो मे पसीना आने से अगो से पसीना झरने लगा। शोक की अधिकता से उसके अग काँपने लगे। वह निस्तेज हो गई। दीन और विमनस्क हो गई। हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई। "मैं प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ," यह शब्द सुनने के क्षण मे ही वह दुखी और दुर्वल हो गई। वह लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई, शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए अलकार अत्यत ढीले हो गये, हाथो मे पहने हुए, उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पडे और चूर-चूर हो गये। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकुमार केशपाश बिखर गया। मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट होने के कारण शरीर भारी हो गया। परशु से काटी हुई चपकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी। उसके शरीर के जोड ढीले पड़ गये। ऐसी वह देवकी देवी सर्व अगो से धस्-धडाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पडी।

तत्पश्चात् वह देवकी देवी, सभ्रम के साथ शीघ्रता से, सुवर्णकलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचन की गई। अतएव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के बास के पखे) से, तालवृन्त (ताड के पत्ते के पखे) से तथा वीजनक (जिसकी डंडी अदर

से पकडी जाय, ऐसे वास के पखे) से उत्पन्न हुए तथा जलकणो से युक्त वायु से अन्त पुर के परिजनो द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तव देवकी देवी मोतियो की लडी के समान अश्रु धारा से अपने स्तनो को सीचने-भिगोने लगी—रुदन करने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एव लार टपकाती हुई हृदय मे शोक करती हुई और विलाप करती हुई गजसुकुमाल से इस प्रकार कहने लगी—

"हे पुत्र! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमे इष्ट है, कात है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैर्य और विश्वास का स्थान है। कार्य करने मे सम्मत (माना हुआ) है, वहुत कार्यो मे वहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणो की पेटी के समान है। मनुष्य जाति मे उत्तम होने के कारण रत्न है। रत्न रूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की तो वात क्या है? हे पुत्र! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नही सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र! प्रथम तो जव तक हम जीवित है, तव तक मनुष्य सवधी विपुल काम-भोगो को भोग। फिर जव हम कालगत हो जाएँ और तू परिपक्व उम्र का हो जाय-तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, कुल-वश (पुत्र-पौत्र आदि) रूप ततु का कार्य वृद्धि को प्राप्त जाय, जव सासारिक कार्य की अपेक्षा न रहे, उस समय तू भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अगीकार कर लेना।"

तत्पश्चात् माता-पिता के द्वारा इस प्रकार कहने पर गजसुकुमाल ने माता-पिता से इस प्रकार कहा "हे माता-पिता! आप मुझ से यह जो कहते हैं कि हे पुत्र! तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, इत्यादि सव पूर्ववत् कहना चाहिए, यावत् सासारिक कार्य से निरपेक्ष होकर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रजित होना—सो ठीक है, परन्तु हे माता-पिता! यह मनुष्य भव ध्रुव नही है, अर्थात् सूर्योदय के समान नियमित समय पर पुन पुन प्राप्त होने वाला नही है, नियत नही है अर्थात् इस जीवन मे उलट-फेर होते रहते हैं, अशाश्वत है अर्थात् क्षण विनश्वर है, सैकडो सकटो एव उपद्रवो से व्याप्त है, विजली की चमक के समान चचल है, अनित्य है, जल के वुलवुले के समान है, दूव की नोक पर लटकने वाले जलविन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के वादलो के सदृश है, स्वप्न-दर्शन के समान है—अभी है और अभी नही है, कुष्ठ आदि से सडने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होने के स्वभाव वाला है। तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता! कौन जानता है कि कौन पहले जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा? अतएव हे माता-पिता! मै आपकी आज्ञा प्राप्त करके भगवान् अरिष्टनेमि के समीप यावत् प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ।"

तत्पश्चात् माता-पिता ने गजसुकुमाल से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह वहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कासा, दूष्य-वस्त्र, मणि, मोती, शख, सिला, मूंगा, लाल रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह इतना है कि सात पीढियो तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूव दान करो, स्वय भोग करो और वटवारा करो। हे पुत्र! यह जितना मनुष्य सम्वन्धी ऋद्धि-सत्कार का समुदाय है, उतना सव तुम भोगो। उसके वाद अनुभूत-कल्याण होकर तुम भगवान् अरिष्टनेमि के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेना।'

तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने माता-पिता से कहा—हे माता-पिता! आप जो कहते है सो ठीक

है कि—हे पुत्र ! यह दादा, पडदादा और पिता के पडदादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है, इसे भोगो और फिर अनुभूतकल्याण होकर दीक्षा ले लेना। परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे अग्नि भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बँटवारा करा सकते है और मृत्यु आने पर यह अपना नही रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिये समान है, अर्थात् द्रव्य उसके स्वामी का है, उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिये भी सामान्य है। यह सडने, पडने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है। (मरण) के पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता ! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जायगा और पीछे कौन जायगा ? अतएव मैं यावत् दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता जब गजसुकुमाल को विषयो के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, सज्ञापना (सबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से समझाने बुझाने, सबोधन करने और अनुनय करने मे समर्थ न हुए तब प्रतिकूल तथा सयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य (सत्पुरुषो के लिये हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक-सर्वज्ञ कथित अथवा अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणो से परिपूर्ण है, नैयायिक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाने वाला है, सशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्तन अर्थात् माया आदि शल्यो का नाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग (पापो के नाश का उपाय) है, निर्याण का (सिद्धि क्षेत्र का) मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दु खो को पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है। जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने मे निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन मे दृष्टि निश्चल रखनी पडती है। यह छुरे के समान एक धार वाला है, अर्थात् इस मे दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओ का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चबाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गगा नामक महानदी के पूर मे सामने तिरने के समान कठिन है, भुजाओ से महासमुद्र को पार करना है, तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला जैसी भारी वस्तुओ को गले मे बाँधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणो को आधाकर्मी, औद्देशिक क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोडा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुन साधु के लिए मोदक रूप मे तैयार किया हुआ, दुर्भिक्ष भक्त (साधु के लिये दुर्भिक्ष के समय बनाया हुआ भोजन) कान्तार भक्त (साधु के निमित्त अरण्य मे बनाया हुआ आहार), वर्दलिका भक्त (वर्षा के समय उपाश्रय मे आकर बनाया भोजन) ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नही कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कद का भोजन, फल का भोजन, बीजो का भोजन अथवा हरित का भोजन करना भी नही कल्पता है। इसके अतिरिक्त हे पुत्र ! तू सुख भोगने योग्य है, दु ख सहने योग्य नही है। तू शीत सहने मे समर्थ नही है, उष्ण सहने मे समर्थ नही है। भूख नही सह सकता,

प्यास नही सह सकता, वात, पित्त, कफ और सन्निपात से होने वाले विविध रोगो (कोढ आदिको) तथा आतको (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊँचे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनो को, उत्पन्न हुए वाईस परीषहो और उपसर्गो को सम्यक् प्रकार सहन नही कर सकता। अतएव हे लाल! तू मनुष्य सवधी कामभोगो को भोग। बाद मे भुक्तभोगी होकर अरिहत अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या अगीकार करना।

तत्पश्चात् माता-पिता के इस प्रकार कहने पर गजसुकुमार कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आप मुझे जो यह कहते है सो ठीक है कि—'हे पुत्र! निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, आदि पूर्वोक्त कथन यहाँ दोहरा लेना चाहिए, यावत् बाद मे भुक्तभोगी होकर प्रव्रज्या अगीकार कर लेना। परन्तु हे माता-पिता! इस प्रकार यह निर्ग्रन्थ प्रवचन क्लीव-हीन सहनन वाले, कायर-चित्त की स्थिरता रहित, कुत्सित, इस लोक सवधी विपय सुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की इच्छा न करने वाले, सामान्य जन के लिये ही दुष्कर है। धीर एव दृढ सकल्प वाले पुरुप को इसका पालन करना कठिन नही है। इसका पालन करने मे कठिनाई क्या है? अतएव हे माता-पिता! आपकी अनुमति पाकर मैं अरिहत अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ]।

तदनन्तर कृष्ण वासुदेव गजसुकुमार के विरक्त होने की वात सुनकर गजसुकुमार के पास आये और आकर उन्होने गजसुकुमार कुमार का आलिंगन किया, आलिंगन कर गोद मे बिठाया, गोद मे विठाकर इस प्रकार वोले—

'हे देवानुप्रिय! तुम मेरे सहोदर छोटे भाई हो, इसलिये मेरा कहना है कि इस समय भगवान् अरिष्टनेमि के पास मुडित होकर अगार से अनगार वनने रूप दीक्षा ग्रहण मत करो। मै तुमको द्वारका नगरी मे वहुत वडे समारोह के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त करूंगा।" तब गजसुकुमार कुमार कृष्ण वासुदेव द्वारा ऐसा कहे जाने पर मौन रहे। कुछ समय मौन रहने के वाद गजसुकुमार अपने वडे भाई कृष्ण वासुदेव एव माता-पिता को दूसरी वार और तीसरी वार भी इस प्रकार वोले—

"हे देवानुप्रियो! वस्तुत मनुष्य के कामभोग एव देह [अपवित्र, अशाश्वत क्षणविध्वसी और मल-मूत्र-कफ-वमन-पित्त-शुक्र एव शोणित के भडार है। गदे उच्छ्वास-निश्वास वाले है, खराब मूत्र, मल और पीव से अत्यन्त परिपूर्ण है, मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले है। यह मनुष्य-शरीर और ये कामभोग अस्थिर है, अनित्य है एव सडन-गलन एव विध्वसी होने के कारण आगे पीछे कभी न कभी अवश्य] नष्ट होने वाले है। इसलिये हे देवानुप्रियो! मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा मिलने पर मैं अरिहत अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या (श्रमण दीक्षा) ग्रहण कर लू।"

गजसुकुमार की दीक्षा

२०—तए णं तं गयसुकुमालं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएन्ति बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव[1] आघवित्तए ताहे अकामाइ चेव (गयसुकुमाल कुमार) एव वयासी—त इच्छामो ण ते जाया! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए।

---

१. पूर्व सूत्र मे आगया है।

तए णं गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरं च अणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। जाव—[तए णं से गयसुकुमालस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! गयसुकुमालस्स कुमारस्स महत्थं, महग्घं, महरिहं विपुलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह। तए ण ते कोडुंबियपुरिसा तहेव जाव पच्चप्पिणंति। तए णं त गयसुकुमालं कुमारं अम्मा-पियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं णिसीयावेंति जहा रायप्पसेणइज्जे, जाव अट्ठसएण सोवण्णियाण कलसाणं सव्विड्ढीए जाव महया रवेण महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचति।

महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचित्ता करयल—जाव जएण विजएण वद्धावेंति, जएणं विजएण वद्धावित्ता एव वयासी—भण जाया! किं देमो, किं पयच्छामो, किणा वा ते अट्ठो?

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अम्मा-पियरो एव वयासी—इच्छामि ण अम्म-याओ कुत्तिया-वणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणिउं कासवग च सद्दाविउं। णिक्खमणं जहा महब्बलस्स[1]।

तए ण गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मापियरो कोडंवियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गह च उवणेह, सयसहस्सेण कासवगं सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ करयल जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं, तहेव जाव कासवगं सद्दावेंति। तए ण से कासवए गय-कुमारस्स पिउणा कोडुंविय-पुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० गयसुकुमालस्स कुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं मए करणिज्ज? तए णं से गय-सुकुमालस्स पिया तं कासवगं एव वयासी—तुमं देवाणुप्पिया! गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। तए ण से कासवे एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ करयल जाव एवं सामी! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएण हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ट-पडलाए पोत्तीए मुह बधइ, मुह बधित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स परेण जत्तेणं चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ।

तए णं सा गयसुकुमालस्स कुमारस्स माया देवई देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, अग्गकेसे पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएणं पक्खालेइ, सुरभिणा गधोदएण पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चेइ, अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं, मल्लेहिं अच्चित्ता सुद्धे वत्थे वधइ, सुद्धे वत्थे बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिण्णमुत्तावलिप्पगासाइं सुयवियोग-दूसहाइं अंसूइ विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी एवं वयासी—एस णं अम्हं गयसुकुमालस्स कुमारस्स बहुसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ इत्ति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेइ।

तए ण तस्स गय-सुकुमालस्स अम्मापियरो दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेंति, दोच्च पि उत्तरावक्कमण सीहासण रयावित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स सेयापीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति

१ महावल के वर्णन मे इस पाठ हेतु—किं पयच्छामो, सेस जहा जमालिस्स तहेव जाव तएण"—दिया है। अत प्रस्तुत जाव का पूरक पाठ महावल, जमालि आदि के वर्णनो के आधार पर यथावश्यक रूप से गुंफित किया है।

सेया० ण्हावित्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेति, लूहित्ता सरसेण गोसीस-चदणेण गायाइं अणुलिंपति अणुलिंपित्ता णासाणिस्सासवायवोज्झं, चक्खुहर, वण्ण-फरिसजुत्त, हयलालापेलवाऽइरेग, धवल, कणगखचिततकम्मं, महरिह, हसलक्खणपडसाडग परिहिंति, परिहित्ता हारं पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता अद्धहार पिणद्धेंति, पिणद्धित्ता एव जहा सूरियाभस्स अलंकारो तहेव जाव चित्त रयणसकडुक्कड मउड पिणिद्धंति; किं बहुणा ? गथिम-वेढिम-पूरिम संघाइमेण चउव्विहेण मल्लेणं कप्परुक्खग पिव अलकिय-विभूसिय करेंति ।

तए ण तस्स गय-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखभसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठियसालभजियाग जहा रायप्पसेणइज्जे विमाण-वण्णओ, जाव मणिरयणघटियाजालपरिक्खित्त पुरिससहस्सवाहिणि सीय उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । तए ण ते कोडुबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणति । तए ण से गयसुकुमाले कुमारे केसालकारेण, वत्थालकारेण, मल्लालकारेण, आभरणालकारेण चउव्विहेण अलकारेण अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता सीय अणुप्पदा-हिणीकरेमाणे सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाऽभिमुहे सण्णिसण्णे ।

तए ण तस्स गयकुमारस्स माया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव सरीरा हसलक्खण पडसाडग गहाय सीय अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीय दुरूहइ, दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मधाई ण्हाया जाव सरीरा, रयहरण पडिग्गह च गहाय सीह अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीय दुरूहइ, सीय दुरूहित्ता गयसुकुमालस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा सगयगय जाव रूप-जोव्वण-विलासकलिया सुंदर-थण० हिम-रयय-कुमुद-कुंदेन्दुप्पगासं सकोरटमल्लदाम धवल आयवत्त गहाय सलील उवरिं धारेमाणी धारमाणी चिट्ठइ । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स उभओ पासिं दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारु जाव कलियाओ, णाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिहतवणिज्जुज्जलविचित्त-दडाओ, चिल्लियाओ, सखक-कुन्देन्दु-दगरय-अमयमहियफेणपुंजसण्णिकासाओ धवलाओ चामराओ गहाय सलील वीयमाणीओ वीयमाणीओ चिट्ठंति । तए ण तस्स गयसुकुमालस्स उत्तरपुरत्थिमेण एगा वरतरुणी सिंगारगार जाव कलिया सेय रययामय विमलसलिलपुण्ण मत्तगयमहामुहाकिइसमाण भिंगारं गहाय चिट्ठइ । तए ण तस्स गयसुकुमा-लस्स दाहिणपुरत्थिमेण एगा वरतरुणी सिंगारागार जाव कलिया चित्तकणगदड तालवेंट गहाय चिट्ठइ ।

तए ण तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयं, सरित्तय, सरिव्वय, सरिसलावण्ण-रूप-जोव्वण-गुणोववेय, एगाभरण-वसणगहियणिज्जोय कोडुंबियवरतरुणसहस्स सद्दावेह । तए ण ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सरिसय सरित्तयं जाव सद्दावेंति । तए ण ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठ ण्हाया, कयबलिकम्मा, कयकोउय-मगल-पायच्छित्ता एगाभरण-वसण-गहिय-णिज्जोया जेणेव गयकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावित्ता एव वयासी-सदिसतु ण देवाणुप्पिया ! जं अम्हेहिं करणिज्जं । तए ण से गयकुमारस्स पिया त कोडुंबियवरतरुणसहस्सं पि एव वयासी-तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव गहियणिज्जोआ गयसुकुमालस्स कुमारस्स सीय परिवहेह । तए ण ते कोडुंबियपुरिसा गयसुकुमालस्स जाव पडिसुणित्ता ण्हाया जाव गहिय-णिज्जोआ गयसुकु-मालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीय परिवहति ।

तए णं गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया; तं जहा-सोत्थिय-सिरिवच्छ जाव दप्पणा; तयाणंतर च णं पुण्णकलसभिंगारं जहा उववाइए, जाव गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, एव जहा उववाइए तहेव भाणियव्व जाव आलोय च करेमाणा जयजयसद्दं च पउजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च ण बहवे उग्गा भोगा जहा उववाइए जाव महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता, गयसुकुमालस्स कुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

तए णं से गयसुकुमाल-कुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहि उद्धुव्वमाणीहि हय-गय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धि सपरिवुडे, महयाभडचडगर जाव परिक्खित्ते गयसुकुमालस्स कुमारस्स पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए ण तस्स गयसुकुमालस्स—कुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासि णागा, णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसगेल्ली। तए ण से गयसुकुमाल-कुमारे अब्भुग्गयभिंगारे, परिगहियतालियंटे, ऊसवियसेयछत्ते, पवीइयसेयचामरबालवीयणाए, सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं, तयाणंतरं च बहवे लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा जाव पुत्थयग्गाहा, जाव वीणग्गाहा; तयाणतर च णं अट्ठसयं गयाण, अट्ठसय तुरयाण अट्ठसय रहाण; तयाणतर च ण लउड-असि-कोतहत्थाण बहूणं पायत्ताणीणं पुरओ संपट्ठिय; तयाणंतर च ण बहवे राईसर-तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ संपट्ठिया बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहओ अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए ण तस्स गयसुकुमाल-कुमारस्स बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छमाणस्स सिंघाडग-तिय-चउक्क जाव पहेसु बहवे अत्थत्थिया जहा उववाइए, जाव अभिणंदंता य अभित्थुणता य एवं वयासी-जय जय णदा! धम्मेण, जय जय णंदा! तवेणं, जय जय णदा! भद्दं ते अभग्गेहिं णाण-दसण-चरित्तमुत्तमेहिं, अजियाइ जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्म; जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, णिहणाहि य राग-दोसमल्ले, तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठ कम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च धीर! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च णाण, गच्छ य मोक्ख परं पदं जिणवरोवदिट्ठेणं सिद्धिमग्गेण अकुडिलेणं, हंता परीसहचमुं, अभिभविय गामकंटकोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घमत्थु, त्ति कट्टु अभिणदंति, य अभित्थुणंति य।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसेए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणि सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ। तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु भंते! गयसुकुमाले कुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते जाव किमग! पुण पासणयाए, से जहाणामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा जाव सहस्सपत्ते इ वा पके जाए जले सवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं, णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव गयसुकुमाले कुमारे कामेहिं जाए, भोगेहिं संवुड्ढे णोवलिप्पइ कामरएणं णोवलिप्पइ भोगरएणं णोवलिप्पइ मित्त-णाइ-णियग-सयण-सबधिपरिजणेणं। एस णं देवाणुप्पिया! संसारभयुव्विग्गे भीए

जम्मण-मरणेणं; देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वतेइ; तं एयं णं देवाणुप्पियाण अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छतु णं देवाणुप्पिया ! सीसभिक्खं ।

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी गयसुकुमालं कुमारं एव वयासी-अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं ! तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहया अरिट्ठणेमिणा एव वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठे अरह अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो जाव णमंसित्ता उत्तर—पुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्ला-लंकारं ओमुयइ । तए णं सा गयसुकुमाल-कुमारस्स माया हसलक्खणेण पडसाडएण आभरण-मल्ला-लंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि जाव विणिम्मुयमाणी विणिम्मुयमाणी गयसुकुमाल कुमारं एवं वयासी-घडियव्वं जाया ! जइयव्व जाया ! परिक्कमियव्व जाया ! अस्सिं च ण अट्ठे, णो पमाएयव्वं ति कट्टु गयसुकुमालस्स कुमारस्स अम्मा-पियरो अरिट्ठणेमिं वदंति नमंसति, वदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

तए णं से गयसुकुमाले कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव अरिट्ठनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता जाव नमसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते णं भते ! लोए जराए मरणेण य । से जहाणामए केई गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि, जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए, तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि एगे आया भंडे इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए संमए अणुमए बहुमए भंडकरंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा ण उण्ह, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा ण वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खेमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । तं इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मु डावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खाविय, सयमेव आयार-गोयरं विणयवेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खियं ।

तए ण अरिट्ठनेमी अरहा गयसुकुमालं कुमार सयमेव पव्वावेइ, जाव धम्ममाइक्खइ-एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं, एवं चिट्ठियव्वं, एवं निसीयव्वं, एव तुयट्टियव्वं, एवं भुंजियव्व, एवं भासियव्वं, एवं उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेण सजमियव्वं, अस्सि च णं अट्ठे णो किंचि पि पमाइयव्वं । तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठनेमिस्स इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्म संपडिवज्जइ], तमाणाए तहा जाव [गच्छइ, तह चिट्ठइ, तह निसीयइ, तह तुयट्टइ, तह भुजइ, तह भासइ, तह उट्ठाए उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहि सत्तेहिं संजमेणं सजमेइ,] से गयसुकुमाले अणगारे जाए ईरियासमिए जाव [भासासमिए एसणासमिए आयाणभडमत्तनिक्खेवणासमिए, उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल-सिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्तिदिए] गुत्तबंभयारी, इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ काउ विहरइ ।

तदन्तर गजसुकुमाल कुमार को कृष्ण-वासुदेव और माता-पिता जब बहुत-सी अनुकूल और स्नेह भरी युक्तियो से भी समझाने मे समर्थ नही हुए तब निराश होकर श्रीकृष्ण एव माता-पिता इस प्रकार बोले—

"यदि ऐसा ही है तो हे पुत्र ! हम एक दिन ही तुम्हारी राज्यश्री (राजवैभव की शोभा) देखना चाहते है। इसलिये तुम कम से कम एक दिन के लिये तो राजलक्ष्मी को स्वीकार करो।" तब गजसुकुमार कुमार वासुदेव कृष्ण और माता-पिता की इच्छा का अनुसरण करके चुप रह गए।

इसके बाद गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और इस प्रकार कहा—[देवानुप्रियो ! शीघ्र ही इस द्वारका नगरी के बाहर और भीतर पानी का छिटकाव करो। झाड-बुहार कर जमीन को साफ करो, इत्यादि औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार कार्य करके उन पुरुषो ने आज्ञा वापस सौपी।] इसके पश्चात् उसने सेवक पुरुषो से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र गजसुकुमाल कुमार के महार्थ, महामूल्य, महार्ह (महान् पुरुषो के योग्य) और विपुल राज्याभिषेक की तैयारी करो। सेवक पुरुषो ने आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी। इसके पश्चात् गजसुकुमाल के माता-पिता ने उन्हे उत्तम सिंहासन पर पूर्व की ओर मुह करके बैठाया। और एक सौ आठ सुवर्ण-कलशो से राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशो से सर्वऋद्धि द्वारा यावत् महाशब्दो द्वारा राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके हाथ जोडकर यावत् जय-विजय शब्दो से बधाया। बधाकर वे इस प्रकार बोले—"हे पुत्र ! हम तुझे क्या देवें ? तेरे लिये क्या कार्य करे ? तेरा क्या प्रयोजन है ?" तब गजसुकुमाल ने इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता ! मैं कुत्रिकापण (कु अर्थात् पृथ्वी, त्रिक अर्थात् तीन, आपण अर्थात् दूकान। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल रूप तीन लोको मे रही हुई वस्तुएँ मिलने का देवाधिष्ठित स्थान,) से रजोहरण और पात्र मगवाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूँ। तब गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही भडार मे से तीन लाख सोनैये निकालो। उनमे से दो लाख सोनैया देकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मँगाओ और एक लाख सोनैया देकर नाई को बुलाओ। उपर्युक्त आज्ञा सुनकर हर्षित और तुष्ट हुए सेवको ने हाथ जोडकर स्वामी के वचनो को स्वीकार किया और भडार मे से तीन लाख सुवर्ण-मुद्राए निकालकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाए तथा नाई को बुलाया। गजसुकुमाल के पिता के सेवक पुरुषो द्वारा बुलाये जाने पर नाई बडा प्रसन्न हुआ। उसने स्नानादि किया और अपने शरीर को अलकृत किया। फिर गजसुकुमाल के पिता के पास आया, आकर उन्हे जय-विजय शब्दो से बधाया और इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय ! मेरे करने योग्य कार्य कहिये।" गजसुकुमाल के पिता ने नापित से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय ! गजसुकुमाल कुमार के अग्रकेश अत्यन्त यत्नपूर्वक चार अगुल छोडकर निष्क्रमण के योग्य काटो।" तब गजसुकुमाल कुमार के पिता की आज्ञा सुनकर नापित अत्यत प्रसन्न हुआ और दोनो हाथ जोडकर बोला—'स्वामिन् ! जैसी आपकी आज्ञा' इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक उनके वचनो को स्वीकार किया। फिर सुगन्धित गन्धोदक से हाथ-पैर धोये और शुद्ध आठ पट वाले वस्त्र से मुँह बाँधा, फिर अत्यन्त यत्नपूर्वक गजसुकुमाल कुमार के, निष्क्रमण योग्य चार अगुल अग्रकेश छोडकर शेष केशो को काटा।

तदनन्तर गजसुकुमाल की माता ने हस के समान श्वेत वस्त्र मे उन अग्रकेशो को ग्रहण किया। सुगन्धित गन्धोदक से धोया। उत्तम और प्रधान गन्ध तथा माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्र मे बाँधकर उन्हे रत्नकरडिये मे रखा। इसके बाद गजसुकुमाल कुमार की माता, पुत्र-वियोग से रोती हुई हार, जल-धारा, सिन्दुवार वृक्ष के पुष्प और टूटी हुई मोतियो

की माला के समान आँसू गिराती हुई इस प्रकार बोली—"ये केश हमारे लिये बहुत-सी तिथियो, पर्वों, उत्सवो, नागपूजादि रूप यज्ञो और महोत्सवो मे गजसुकुमाल कुमार के अन्तिम दर्शन-रूप या पुन पुन दर्शनरूप होगे। ऐसा विचार कर उसने उन्हे अपने तकिये के नीचे रख लिया।

इसके बाद गजसुकुमाल कुमार के माता-पिता ने उत्तर दिशा की ओर दूसरा सिंहासन रखवाया और गजसुकुमाल कुमार को सोने चाँदी के कलशो से स्नान करवाया। फिर सुगन्धित गन्धकाषायित (गन्ध-प्रधान लाल) वस्त्र से उसके अग पोछे। गोशीर्ष चन्दन से गात्रो का विलेपन किया। तत्पश्चात् उसे पटशाटक (रेशमी वस्त्र) पहनाया। वह नासिका के निश्वास की वायु से भी उड जाय ऐसा हल्का था, नेत्रो को अच्छा लगने वाला, सुन्दर वर्ण और कोमल स्पर्श से युक्त था। वह वस्त्र घोडे के मुख की लार से भी अधिक मुलायम था, श्वेत था, उसके किनारो मे सोने के तार थे। महामूल्यवान् और हस के चिह्न से युक्त था। फिर हार (अठारह लडी वाला) और अर्द्ध हार पहनाया। अधिक क्या कहा जाय, ग थिम (गूँथी हुई) वेष्टित (वीटी हुई) पूरिम (पूर कर बनाई हुई) और सघातिम (परस्पर सघात की हुई) मालाओ से कल्प वृक्ष के समान गजसुकुमार को अलकृत एव विभूषित किया गया। इसके बाद उसके पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! सैकडो स्तम्भो से युक्त लीला करती पुतलियो से युक्त इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र मे वर्णित विमान के समान यावत् मणिरत्नो की घण्टिकाओ के समूहो से युक्त, हजार पुरुषो द्वारा उठाने योग्य शिविका (पालकी) तैयार करके मुझे निवेदन करो।" इसके बाद गजसुकुमाल कुमार केशालकार, वस्त्रालकार, मालालकार और आभरणालकार, इन चार प्रकार के अलकारो से अलकृत और विभूपित होकर सिंहासन से उठा। वह प्रदक्षिणा करके शिविका पर चढा और पूर्व की ओर मुँह करके श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार की माता, स्नानादि करके यावत् शरीर को अलकृत करके हस के चिह्न का पटशाटक लेकर प्रदक्षिणा करके शिविका पर चढी और गजसुकुमाल के दाहिनी ओर उत्तम भद्रासन पर बैठी। फिर गजसुकुमाल की धायमाता स्नानादि करके यावत् शरीर को अलकृत करके रजोहरण और पात्र लेकर प्रदक्षिणा करके शिविका पर चढी और गजसुकुमाल के बाँई ओर उत्तम भद्रासन पर बैठी। इसके बाद गजसुकुमाल के पीछे मनोहर आकार और सुन्दर वेष वाली, सुन्दर गतिवाली, सुन्दर शरीरवाली यावत् रूप और यौवन के विलास से युक्त एक युवती हिम, रजत, कुमुद, मोगरे के फूल और चन्द्रमा के समान श्वेत कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र हाथ मे लेकर, लीलापूर्वक धारण करती हुई खडी हुई। फिर गजसुकुमाल के दाहिनी तथा बाँयी ओर, शृ गार के आगार के समान मनोहर आकार वाली और सुन्दर वेषवाली उत्तम दो युवतियाँ दोनो ओर चामर ढुलाती हुई खडी हुईं। वे चामर मणि, कनक, रत्न, और महामूल्यवान् विमल तपनीय (रक्त सुवर्ण) से बने हुए, विचित्र दण्ड वाले थे और शख, अकरत्न, मोगरा के फूल, चन्द्र, जल-बिन्दु और मथे हुए अमृत के फेन के समान श्वेत थे। इसके बाद गजसुकुमाल के उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) मे शृ गार सहित उत्तम वेषवाली एक उत्तम स्त्री श्वेत रजतमय पवित्र पानी से भरा हुआ, उन्मत्त हाथी के मुख के आकार वाला कलश लेकर खडी हुई। गजसुकुमाल के दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) मे, शृ गार के घर के समान उत्तम वेषवाली एक उत्तम स्त्री विचित्र सोने के दण्डवाला पखा लेकर खडी हुई।

तब गजसुकुमाल के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानु-

प्रियो ! समान त्वचावाले, समान उम्रवाले, समान रूप-लावण्य और यौवन गुणो से युक्त तथा एक समान आभूषण और वस्त्र पहने हुए एक हजार उत्तम युवक पुरुषो को बुलाओ।" सेवक पुरुषो ने स्वामी के वचन स्वीकार कर शीघ्र ही हजार पुरुषो को बुलाया। वे हजार पुरुष हर्षित और तुष्ट हुए। वे स्नानादि करके एक समान आभूषण और वस्त्र पहनकर गजसुकुमाल के पिता के पास आये और हाथ जोडकर, बधाकर, इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिय! हमारे योग्य जो कार्य हो वह कहिये।' तब गजसुकुमाल के पिता ने उनसे कहा—"देवानुप्रियो! तुम सब गजसुकुमाल कुमार की शिबिका को वहन करो। उन्होने शिविका वहन की। जब गजसुकुमार शिबिका पर आरूढ हो गए तो सब से आगे आठ मगल अनुक्रम से चले। यथा :—(१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्दावर्त, (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य और (८) दर्पण। इन आठ मगलो के पीछे पूर्ण कलश चला, इत्यादि औपपातिक सूत्र मे कहे अनुसार यावत् गगनतल को स्पर्श करती हुई वैजयन्ती (ध्वजा) चली। लोग जय-जयकार करते हुए अनुक्रम से आगे चले। इसके बाद उग्रकुल, भोगकुल मे उत्पन्न पुरुष यावत् बहुसख्यक पुरुषो के समूह गजसुकुमाल के आगे पीछे और आसपास चलने लगे।

स्नात एव विभूषित गजसुकुमाल के पिता हाथी के उत्तम कधे पर चढे। कोरण्टक पुष्प की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, दो श्वेत चामरो से बिजाते हुए, अश्व, हाथी, रथ और सुभटो से युक्त, चतुरगिनी सेना सहित और महासुभटो के वृन्द से परिवृत गजसुकुमाल के पिता उसके पीछे चलने लगे।

गजसुकुमाल के आगे महान् और उत्तम घोडे, दोनो ओर उत्तम हाथी, पीछे रथ और रथ का समूह चला। इस प्रकार ऋद्धि सहित यावत् वाद्यो के शब्दो से युक्त गजसुकुमाल चलने लगे। उनके आगे कलश और तालवृन्त लिये हुए पुरुष चले। उनके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। दोनो ओर श्वेत चामर और पखे बिजाये जा रहे थे। इनके पीछे बहुत-से लाठी वाले, भाला वाले, पुस्तकवाले यावत् वीणावाले पुरुष चले। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी, एक सौ आठ घोडे और एक सौ आठ रथ चले। उसके बाद लकडी, तलवार, भाला लिये हुए पदाति पुरुष चले। उनके पीछे बहुत-से युवराज, धनिक, तलवर, यावत् सार्थवाह आदि चले। इस प्रकार द्वारका नगरी के बीच मे चलते हुए नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान मे अरिहत अरिष्टनेमि के पास जाने लगे।

द्वारका नगरी के बीच से निकलते हुए गजसुकुमाल कुमार को शृगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों मे बहुत से धनार्थी, भोगार्थी और कामार्थी पुरुष, अभिनन्दन करते हुए एव स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्द (आनन्द दायक)! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। हे नन्द! अखण्डित उत्तम ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा अविजित इन्द्रियो को जीतो और श्रमण धर्म का पालन करो। धैर्य रूपी कच्छ को मजबूत बाँधकर सर्व विघ्नो को जीतो। इन्द्रियो को वश करके परिषह रूपी सेना पर विजय प्राप्त करो। तप द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लो पर विजय प्राप्त करो और उत्तम शुक्ल-ध्यान द्वारा अष्ट कर्म रूपी शत्रुओ का मर्दन करो। हे धीर! तीन लोक रूपी विश्व-मण्डप मे आप आराधना रूपी पताका लेकर अप्रमत्ततापूर्वक विचरण करे और निर्मल, विशुद्ध, अनुत्तर केवल-ज्ञान प्राप्त करे तथा जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धि-मार्ग द्वारा परम पद रूप मोक्ष को प्राप्त करे। आपके धर्म-मार्ग मे किसी प्रकार का विघ्न नही हो।" इस प्रकार लोग अभिनन्दन और स्तुति करने लगे।

तव वे गजसुकुमाल कुमार द्वारका नगरी के मध्य से होते हुए नगरी के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान मे आये और तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयो को देखते ही सहस्रपुरुषवाहिनी शिविका से नीचे उतरे। फिर गजसुकुमाल को आगे करके उनके माता-पिता, अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुए और भगवान् को तीन वार प्रदक्षिणा करके इस प्रकार वोले—"भगवन् ! यह गजसुकुमाल कुमार हमारा इकलौता प्रिय और इष्ट पुत्र है। इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है, तो दर्शन दुर्लभ हो इसमे तो कहना ही क्या। जिस प्रकार कीचड़ मे उत्पन्न और पानी मे वडा होने पर भी कमल, पानी और कीचड से निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार गजसुकुमाल कुमार भी काम से उत्पन्न हुआ और भोगो से वडा हुआ, परन्तु वह काम-भोगो मे किंचित् भी आसक्त नहीं है। मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्वन्धी और परिजनो मे लिप्त नही है। भगवन् ! यह गजसुकुमाल ससार के भय से उद्विग्न हुआ है, जन्म-मरण के भय से भयभीत हुआ है। यह आपके पास मुण्डित होकर अनगारधर्म स्वीकार करना चाहता है। अत हे भगवन् ! हम आपको शिष्य रूपी भिक्षा देते है। आप इसे स्वीकार करे।"

तत्पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल कुमार से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्व मत करो।" भगवान् के ऐसा कहने पर गजसुकुमाल कुमार हर्षित और तुष्ट हुआ और भगवान् को तीन वार प्रदक्षिणा कर यावत् वन्दना नमस्कार कर, उत्तर पूर्व (ईशानकोण) मे गया। उसने स्वयमेव आभरण माला और अलकार उतारे। उसकी माता ने उन्हे हस के चिह्न वाले पटशाटक (वस्त्र) मे ग्रहण किया। फिर हार और जलधारा के समान आसू गिराती हुई, अपने पुत्र से इस प्रकार वोली—"हे पुत्र ! सयम मे यत्न करना, सयम मे पराक्रम करना। सयम मे किंचित्मात्र भी प्रमाद मत करना।" इस प्रकार कहकर गजसुकुमाल कुमार के माता-पिता भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा मे वापस लौट गये।

तत्पश्चात् गजसुकुमाल कुमार ने स्वय ही पचमुष्टि लोच किया और लोच करके जहाँ अरिहत अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये। आकर भगवान् अरिष्टनेमि को तीन वार दाहिनी ओर से आरभ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—

"भगवन् ! यह ससार जरा-मरण रूप अग्नि से आदीप्त है, प्रदीप्त है। हे भगवन् ! यह ससार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथापति घर मे आग लग जाने पर, उस घर मे जो अल्प भार वाली और वहुमूल्य वस्तु होती है उसे, ग्रहण करके स्वय एकान्त मे चला जाता है। वह सोचता है कि—"अग्नि मे जलने से वचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिये आगे-पीछे हित के लिये, सुख के लिये, क्षमा (समर्थता) के लिये, कल्याण के लिये और भविष्य मे उपयोग के लिये होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह आत्मा रूपी भाड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्मा को मैं निकाल लूँगा—जरा-मरण की अग्नि मे भस्म होने से वचा लूँगा, तो यह ससार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मैं चाहता हूँ कि देवानुप्रिय (आप) स्वय ही मुझे प्रव्रजित करे—मुनिवेष प्रदान करें, स्वय ही मुझे मुडित करे—मेरा लोच करे, स्वय ही प्रतिलेखन आदि सिखाएँ, स्वय ही सूत्र और उसका अर्थ प्रदान करके शिक्षा दे, स्वय ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल) चरणसत्तरी, करणसत्तरी, सयमयात्रा और मात्रा (भोजन के परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करे।

तत्पश्चात् अरिहृत अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल को स्वयं ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वय ही यावत् आचार गोचर आदि धर्म की शिक्षा दी कि—हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार—पृथ्वी पर युग मात्र दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार—निर्जीव भूमि पर खडा होना चाहिए, इस प्रकार—भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार सामायिक का उच्चारण करके शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार—वेदना आदि के कारणो से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार—हित, मित और मधुर भाषण करना चाहिए । इस प्रकार अप्रमत्त एव सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय) भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पचेन्द्रियो) और सत्त्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा करके सयम का पालन करना चाहिए । इस विषय मे तनिक भी प्रमाद नही करना चाहिए । तत्पश्चात् गजसुकुमाल ने अरिष्टनेमि अर्हत् के निकट इस प्रकार का धर्म सम्बन्धी यह उपदेश सुनकर और हृदय मे धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अगीकार किया । वह भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करते, उसी प्रकार बैठते, यावत् सावधान रहकर अर्थात् प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणो भूतो जीवो और सत्वो की यतना करके सयम की आराधना करने लगे] अनगार बनकर वे गजसुकुमाल मुनि ईर्यासमिति, [भाषा समिति, एषणासमिति, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणसमिति और उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिस्थापनिकासमिति, एव मन समिति, वचनसमिति, काय समिति का सावधानीपूर्वक पालन करने लगे । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से रहने लगे । इन्द्रियो को वश मे रखने वाले] गुप्तब्रह्मचारी बन कर एव इसी निर्ग्रन्थप्रवचन को सन्मुख रख कर विचरने लगे ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो मे श्रीकृष्ण महाराज तथा राजकुमार गजसुकुमाल का भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे उपस्थित होना, भगवान् का मगलमय उपदेश सुनकर चरमशरीरी गजसुकुमाल के हृदय मे वैराग्य उत्पन्न होना, फिर दीक्षित होने के लिये माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करना, कृष्ण महाराज द्वारा तथा माता देवकी द्वारा उन्हे दीक्षा न लेने के लिये समझाना (इस विषय मे विस्तृत सवाद), गजसुकुमाल को एक दिन के लिये राज्याभिषिक्त करना, प्रव्रज्याभिषेक महोत्सव और अन्त मे अनगार बनकर यथाविधि विचरण आदि अनेक विषयो का वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

'महेलियावज्ज'—इस पद के दो अर्थ किये जाते है । महिलारहित और अविवाहित । जिस का विवाह नही हुआ वह महिलावर्ज है । सूत्रकार ने गजसुकुमाल के जीवन को 'जहा मेहो' यह कह कर मेघकुमार के समान बताया है । 'ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र' के प्रथमाध्ययन मे मेघकुमार को विवाहित कहा है और गजसुकुमाल अविवाहित थे, अत सूत्रकार ने इस विभिन्नता को 'महेलियावज्ज' शब्द से सूचित किया है ।

अभिषेक का अर्थ है—सर्व औषधियो से युक्त पवित्र जलद्वारा मन्त्रोपचारपूर्वक पदवी का आरोपण करने के लिये मस्तक पर जल छिडकने की क्रिया—राज्याभिषेकक्रिया, राजगद्दी पर बैठने का महोत्सव, राजा का सिंहासनारोहण, राजतिलक ।

गजमुनि का महाप्रतिमा-वहन

२१—तए णं से गयसुकुमाले जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि[1]

१ पाठान्तर—अगसुत्ताणि—"पच्चावरण्ह०" ३/५६३ ।

जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण—पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइय महापडिम उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।

तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता ईसिं पब्भारगएणं काएण जाव [वग्घारियपाणी अणिमिसनयणे सुक्कपोग्गल-निरुद्धदिट्ठी] दोवि पाए साहट्टु एगराइं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

श्रमणधर्म मे दीक्षित होने के पश्चात् गजसुकुमाल मुनि जिस दिन दीक्षित हुए, उसी दिन के पिछले भाग मे जहाँ अरिहत अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होने भगवान् नेमिनाथ की दक्षिण की ओर से तीन वार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वे इस प्रकार बोले—'भगवन् ! आपकी अनुज्ञा प्राप्त होने पर मै महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महापडिमा (महाप्रतिमा) धारण कर विचरना चाहता हूँ।'

प्रभु ने कहा—"हे देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हे सुख प्राप्त हो वही करो।"

तदनन्तर वह गजसुकुमाल मुनि अरिहत अरिष्टनेमि की आज्ञा मिलने पर, भगवान् नेमिनाथ को वदन नमस्कार करते हैं। वदन-नमस्कार कर, अर्हत् अरिष्टनेमि के सान्निध्य से चलकर सहस्राम्रवन उद्यान से निकले। वहाँ से निकलकर जहाँ महाकाल श्मशान था, वहाँ आते है। महाकाल श्मशान मे आकर प्रासुक स्थडिल भूमि की प्रतिलेखना करते हैं। प्रतिलेखन करने के पश्चात् उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) त्याग के योग्य भूमि का प्रतिलेखन करते है। प्रतिलेखन करने के पश्चात् एक स्थान पर खडे हो अपनी देह-यष्टि को किंचित् झुकाये हुए, [हाथो को घुटनो तक लवा करके, शुक्ल पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमेष नेत्रो से निश्चलतापूर्वक सब इन्द्रियो को गोपन करके दोनो पैरो को (चार अगुल के अन्तर से) एकत्र करके एक रात्रि की महाप्रतिमा अगीकार कर ध्यान मे मग्न हो जाते है।

विवेचन—'पुव्वावरण्हकालसमयसि-' अर्थात् दिन के पिछले आधे भाग—दोपहर से लेकर सूर्यास्त तक के काल को अपराह्न कहते है। दिन का तीसरा प्रहर पूर्वापराह्न कहा जाता है। काल सामान्य और समय विशिष्ट होता है। प्रस्तुत सूत्र मे काल शब्द से तृतीय प्रहर तथा समय शब्द से उस विशिष्ट क्षण का ग्रहण करना सूत्रकार को इष्ट है जिसमे यह घटना घटित हुई है।

'थडिल्ल' शब्द का अर्थ है प्रासुक भूमि, जीव-जन्तु रहित प्रदेश, निवृत्तिमय स्थान, जहाँ किसी प्रकार की कोई वाधा न हो।

सोमिल द्वारा उपसर्ग

२२—इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए। समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडं य गेण्हइ, गेण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ, पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—

"एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय-जाव [पत्थिए, दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपत्तियं कालवत्तिणिं विप्पजहित्ता मुंडे जाव पव्वइए। तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स कुमारस्स वेरनिज्जायणं करेत्तए; एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करेत्ता सरसं मट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुयसमाणे खइरंगाले कहल्लेणं[1] गेण्हइ, गेण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

इधर सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकडी) लाने के लिये द्वारका नगरी के बाहर सुकुमाल अणगार के श्मशानभूमि मे जाने से पूर्व ही निकला था। वह समिधा, दर्भ, कुश, डाभ एव मे पत्रामोडो को लेता है। उन्हे लेकर वहाँ से अपने घर की तरफ लौटता है। लौटते समय महाकाल श्मशान के निकट (न अति दूर न अति सन्निकट) से जाते हुए सध्या काल की बेला मे, जबकि मनुष्यो का गमनागमन नही के समान हो गया था, उसने गजसुकुमाल मुनि को वहाँ ध्यानस्थ खडे देखा। उन्हे देखते ही सोमिल के हृदय मे वैर भाव जागृत हुआ। वह क्रोध से तमतमा उठता है और मन ही मन इस प्रकार बोलता है—

अरे ! यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला), [दुरन्त-प्रान्त-लक्षण वाला, पुण्यहीन चतुर्दशी मे उत्पन्न हुआ ह्री और श्री (लज्जा तथा लक्ष्मी) से] परिवर्जित, गजसुकुमाल कुमार है, जो मेरी सोमश्री भार्या की कुक्षि से उत्पन्न, यौवनावस्था को प्राप्त निर्दोष पुत्री सोमा कन्या को अकारण ही त्याग कर मुडित हो यावत् श्रमण बन गया है ! इसलिये मुझे निश्चय ही गजसुकुमाल से इस वैर का बदला लेना चाहिये। इस प्रकार वह सोमिल सोचता है और सोचकर सब दिशाओ की ओर देखता है कि कही से कोई देख तो नही रहा है। इस विचार से चारो ओर देखता हुआ पास के ही तालाब से वह गीली मिट्टी लेता है, लेकर गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर पाल बाँधता है। पाल बाँधकर जलती हुई चिता मे से फूले हुए किंशुक (पलाश) के फूल से समान लाल-लाल खेर के अगारो को किसी खप्पर (ठीकरे) मे लेकर उन दहकते हुए अगारो को गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रख देता है। रखने के बाद इस भय से कि कही उसे कोई देख न ले, भयभीत होकर घबरा कर, त्रस्त होकर एव उद्विग्न होकर वह वहाँ से शीघ्रतापूर्वक पीछे की ओर हटता हुआ भागता है। वहाँ से भागता हुआ वह सोमिल जिस ओर से आया था उसी ओर चला जाता है।

---

१ पाठान्तर—कभल्लेण।

विवेचन—गजसुकुमाल के उग्र वैराग्य से अनभिज्ञ होने से तथा अपनी पुत्री के साथ विवाह नही करने के कारण क्रोध मे अधा हो कर सोमिल, ध्यानस्थ गजसुकुमाल मुनि के प्रति अत्यन्त क्रूर एव नृशस व्यवहार करता है। प्रस्तुत सूत्र मे उसके पैशाचिक कृत्य का हृदयविदारक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

'सामिधेयस्स' की व्याख्या करते हुए टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि कहते है "सामिधेय-स्सत्ति—"समित्समूहस्य।" यहाँ समित् का अर्थ है हवन मे जलाई जाने वाली लकडी। आगे 'दब्भे कुसे पत्तामोडे' शब्दो का प्रयोग हुआ है, जिनका टीका मे इस प्रकार अर्थ किया है 'समिहाउत्ति' इन्धनभूता काष्ठिका, 'दब्भेत्ति' समूलान् दर्भान्, 'कुसेत्ति' दर्भाग्राणीति, पत्तामोडय ति शाखिशाखा-शिखामोटितपत्राणि देवतार्चनार्थानीत्यर्थ —अर्थात्-समिधा इन्धनभूत लकडी को, मूलसहित डाभ-जडो वाली घास को दर्भ, डाभ के अग्रभाग को कुशा तथा देवपूजन के लिये वृक्षो की शाखाओ के अग्रभाग से मुडे हुए पत्तो को पत्रामोटित कहते हैं।

सोमिल ब्राह्मण द्वारा की जाने वाली इस कल्पनातीत असह्य महावेदना के बाद भी मुनि गजसुकुमाल की क्या स्थिति रही, इसका हृदय-स्पर्शी वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते है—

गजसुकुमाल मुनि की सिद्धि

२३—तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया-उज्जला जाव [विउला कक्खडा पगाढा चंडा रुद्दा दुक्खा] दुरहियासा। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे त उज्जलं जाव [विउलं कक्खडं पगाढं चडं रुद्दं दुक्खं दुरहियासं वेयणं] अहियासेइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं, पसत्थज्झवसाणेण, तदावरणिज्जाण कम्माणं खएण कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणते अणुत्तरे जाव [निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे] केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे। तओ पच्छा सिद्धे जाव [वुद्धे मुत्ते अंतयडे परिनिव्वुए सव्वदुक्ख]प्पहीणे।

तत्थ णं अहासनिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहिए त्ति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे; दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए; चेलुक्खेवे कए; दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।

सिर पर उन जाज्वल्यमान अगारो के रखे जाने से गजसुकुमाल मुनि के शरीर मे महा भयकर वेदना उत्पन्न हुई जो अत्यन्त दाहक, दु खपूर्ण [अत्यधिक हृदयविदारक, अत्यधिक भयकर, उग्र, तीव्र, भीपण और दुस्सह] थी। इतना होने पर भी गजसुकुमाल मुनि सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी, लेश मात्र भी द्वेप नही करते हुए उस एकान्त दु खरूप [हृदय-विदारक, भयकर, उग्र, तीव्र भीपण, दुस्सह] वेदना को समभावपूर्वक सहन करने लगे। उस समय उस एकान्त दु खपूर्ण दु सह दाहक वेदना को समभाव से सहन करते हुए शुभ परिणामो तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायो (भावनाओ) के फलस्वरूप आत्मगुणो को आच्छादित करनेवाले कर्मों के क्षय से समस्त कर्म-रज को झाडकर साफ कर देने वाले, कर्म-विनाशक अपूर्ण-करण मे प्रविष्ट हुए। उन गजसुकुमाल अनगार को अनत-अतरहित अनुत्तर-सर्वश्रेष्ठ [निर्व्याघात निरावरण सपूर्ण एव परिपूर्ण] केवलज्ञान एव केवलदर्शन की उपलब्धि हुई। तत्पश्चात् आयुष्यपूर्ण हो जाने पर वे सिद्ध-कृतकृत्य, [बुद्ध-सकलपदार्थों के ज्ञाता, मुक्त-सकल कर्मो] और सर्व प्रकार के दु खो से रहित हो गये। उस समय वहाँ समीपवर्ती देवो ने "अहो! इन

गजसुकुमाल मुनि ने श्रमणधर्म की अत्यन्त उत्कृष्ट आराधना की है" यह जान कर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल की तथा पाच वर्णों के दिव्य अचित्त फूलो एव वस्त्रो की वर्षा की और दिव्य मधुर गीतो तथा गन्धर्ववाद्ययन्त्रो की ध्वनि से आकाश को गु जा दिया ।

विवेचन—परम आत्मस्थ, आत्म-समाधि मे लीन मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल-ब्राह्मण द्वारा की गई यह भीषणातिभीषण हृदयविदारक महावेदना पूर्ण समभावपूर्वक निर्द्वेप भाव से सहन की । परिणामत केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर वे मोक्ष मे पधार गये ।

मोक्ष-प्राप्ति मे परमसहयोगी रूप (१) शुभ परिणाम और (२) प्रशस्त अध्यवसाय इन दो पदो का "सुभेण परिणामेण पसत्थज्झवसाणेण" शब्दो से सूत्र मे उल्लेख किया है । दोनो का अर्थ-विभेद इस प्रकार—१ सामान्य रूप से शुभ निष्पाप विचारो को शुभ परिणाम कहते है । २ विशेप रूप से आत्म-समाधि मे लग जाने या गभीर आत्मचिन्तन मे सलग्न होने की दशा को प्रशस्त अध्यवसाय कहा गया है ।

"तदावरणिज्जाण कम्माण"—इस पद मे कर्म विशेष्य है और 'तदावरणीय' यह उसका विशेषण है । कर्म शब्द आत्मप्रदेशो से मिले कर्माणुओ का बोधक है और ज्ञान-दर्शन आदि आत्मिक गुणो को ढँकनेवाले, इस अर्थ का सूचक तदावरणीय शब्द है ।

"कम्मरयविकिरणकर'—कर्म-रजोविकिरण-कर अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप रज-मल का विकिरण—नाश करनेवाले को कमर्रजोविकिरण-कर कहते है ।

"अपुव्वकरण—अपूर्वकरणम्, आत्मनोऽभूतपूर्वं शुभपरिणामम्—अर्थात्—अपूर्णकरण शब्द जिसकी पहले प्राप्ति नही हुई—इस अर्थ का बोधक है । यह आठवे "निवृत्तिबादर गुणस्थान" का भी परिचायक माना गया है । इस गुणस्थान से दो श्रेणिया आरभ होती हैं । उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी—उपशम श्रेणीवाला जीव मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का उपशम करता हुआ ग्यारहवे गुणस्थान तक जाकर रुक जाता है और नीचे गिर जाता है । क्षपक श्रेणी वाला जीव दशवे गुणस्थान से सीधा बारहवे गुणस्थान पर जाकर अप्रतिपाती हो जाता है । आठवे गुणस्थान मे आरूढ हुआ जीव क्षपक श्रेणी से उत्तरोत्तर बढता हुआ जव बारहवे गुणस्थान मे पहुच जाता है तव समस्त धाती कर्मो का क्षय करता हुआ कैवल्य प्राप्त कर लेता है । तत्पश्चात् तेरहवे गुणस्थान मे स्थिर होता है । आयु पूर्ण होने पर चौदहवा गुणस्थान प्राप्त करके परम कल्याण रूप मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है । प्रस्तुत मे सूत्रकार ने "अपुव्वकरण" पद देकर गजसुकुमाल के साथ अपूर्वकरण अवस्था का सम्बन्ध सूचित किया है । भाव यह है कि गजसुकुमाल मुनि ने आठवे गुणस्थान मे प्रविष्ट होकर क्षपक श्रेणी को अपना लिया था ।

अणते दसणे आदि पदो की व्याख्या इस प्रकार है—१ अनत—अत रहित, जिसका कभी अन्त न हो, जो सदा काल बना रहे । २ अनुत्तर-प्रधान—जिससे बढकर अन्य कोई ज्ञान नही है, सबसे ऊँचा । ३ निर्व्याघात-व्याघात—रुकावट रहित । ४ निरावरण—जिस पर कोई आवरण-पर्दा नही है, चारो ओर से ज्ञान-प्रकाश की वर्पा करने वाला । ५ कृत्स्न-सपूर्ण, जो अपूर्ण नही है । ६ प्रतिपूर्ण—ससार के सब ज्ञेय पदार्थो को अपना विपय बनानेवाला, जिससे ससार का कोई पदार्थ ओझल नही है ।

सिद्ध-बुद्ध आदि शब्दो का अर्थ इस प्रकार है—१ सिद्ध—जो कृतकृत्य हो गये है, जिनके समस्त कार्य सिद्ध-पूर्ण हो चुके हैं। २ बुद्ध—जो लोक अलोक के सर्व पदार्थों के ज्ञाता है। ३ मुक्त—जो समस्त कर्मो से रहित हो चुके हैं। ४ परिनिर्वात—समस्त कर्म-जनित विकारो के नष्ट हो जाने से जो शान्त हैं। ५ सर्वदु ख-प्रहीण—जिनके समस्त शारीरिक तथा मानसिक दु ख नष्ट हो चुके हैं।

वासुदेव कृष्ण द्वारा वृद्ध की सहायता

२४—तए ण से कण्हे वासुदेवे कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव [फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि, अहपंडुरे पभाए,रत्तासोगपगास-किंसुय-सुयमुह-गु जद्धराग-बधुजीवग-पारावयचलण-नयण-परहुयसुरत्तलोयण-जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियर-रूवाइरेगरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए, तस्स दिणकर-परंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे, बालातवकु कुमेणं खइए व्व जीवलोए, लोयणविसअाणुआसविगस तविसददसियम्मि लोए, कमलागरसडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलते] ण्हाए जाव[1] विभूसिए हत्थिखधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं महयाभड-चडगर-पहकरवद-परिक्खित्ते बारवइं नयरिं मज्झमज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं जुण्णं जरा-जज्जरिय-देहं जाव [आउरं भूसियं पिवासियं दुब्बल] किलतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टग गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकपणट्ठाए हत्थिखधवरगए चेव एगं इट्टग गेण्हइ, गेण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

तए णं कण्हेण वासुदेवेण एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिसेहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अतोघरंसि अणुप्पवेसिए।

तदनन्तर कृष्ण वासुदेव दूसरे दिन प्रात काल सूर्योदय होने पर [जब प्रफुल्लित कमलो के पत्ते विकसित हुए, काले मृग के नेत्र निद्रारहित होने से विकस्वर हुए। फिर वह प्रभात पाण्डुर-श्वेत वर्ण वाला हुआ। लाल अशोक की कान्ति, पलाश के पुष्प, तोते की चोच, चिरमी के अर्द्ध भाग, दुपहरी के पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, जासोद के फूल, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश तथा हिंगलू के समूह की लालिमा से भी अधिक लालिमा से जिसकी श्री सुशोभित हो रही है, ऐसा सूर्य क्रमश उदित हुआ। सूर्य की किरणो का समूह नीचे उतर कर अधकार का विनाश करने लगा। बाल-सूर्य रूपी कु कुम से मानो जीवलोक व्याप्त हो गया। नेत्रो के विषय का प्रचार होने से विकसित होने वाला लोक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। सरोवरो मे स्थित कमलो के वन को विकसित करने वाला तथा सहस्र किरणो वाला दिवाकर तेज से जाज्वल्यमान हो गया। ऐसा होने पर] कृष्ण वासुदेव स्नान कर वस्त्रालकारो से विभूषित हो, हाथी पर आरूढ हुए। कोरट पुष्पो की माला वाला छत्र धारण किया हुआ था। श्वेत एव उज्ज्वल चामर उनके दाये-बाये ढोरे जारहे थे। वे जहाँ भगवान् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ के लिये रवाना हुए।

१ देखिए—तृतीय वर्ग का तेरहवा सूत्र।

तब कृष्ण वासुदेव ने द्वारका नगरी के मध्य भाग से जाते समय एक पुरुष को देखा, जो अति वृद्ध, जरा से जर्जरित [अति क्लान्त, कुम्हलाया हुआ दुर्बल] एव थका हुआ था। वह बहुत दुखी था। उसके घर के बाहर राजमार्ग पर ईंटो का एक विशाल ढेर पडा था जिसे वह वृद्ध एक-एक ईंट करके अपने घर मे स्थानान्तरित कर रहा था। तब उन कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष की अनुकपा के लिये हाथी पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाई, उठाकर बाहर रास्ते से घर के भीतर पहुचा दी।

तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाने पर (उनके अनुयायी) अनेक सैकडो पुरुषो द्वारा वह बहुत बडा ईंटो का ढेर बाहर गली मे से घर के भीतर पहुचा दिया गया।

गयसुकुमाल की सिद्धि की सूचना

२५—तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता जाव [अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता] वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"कहि णं भंते! से ममं सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे जं णं अहं वंदामि नमसामि?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"साहिए णं कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेण अप्पणो अट्ठे।" तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमि एव वयासी—"कहण्ण भंते! गयसुकुमालेणं अणगारेण साहिए अप्पणो अट्ठे?" तए ण अरहा अरिट्ठनेमी कण्ह वासुदेवं एव वयासी—एवं खलु कण्हा गयसुकुमाले ण अणगारे मम कल्ल पुव्वावरण्हकालसमयंसि वदइ नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'इच्छामि णं जाव[1] उवसंपज्जित्ता ण विहरइ'।"

तए ण त गयसुकुमालं अणगार एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते जाव[2] सिद्धे। तं एव खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेण साहिए अप्पणो अट्ठे।

वृद्ध पुरुष की सहायता करने के अनन्तर कृष्ण वासुदेव द्वारका नगरी के मध्य मे से होते हुए जहाँ भगवन्त अरिष्टनेमि विराजमान थे वहा आ गए। कृष्ण ने दाहिनी ओर से आरभ करके तीन वार भगवान् की प्रदक्षिणा-परिक्रमा की, वदन-नमस्कार किया। इसके पश्चात् गजसुकुमाल मुनि को वहाँ न देखकर उन्होने अरिहत अरिष्टनेमि से वदन-नमस्कार करने के बाद पूछा—"भगवन्! मेरे सहोदर लघुभ्राता मुनि गजसुकुमाल कहा है? मैं उनको वन्दना-नमस्कार करना चाहता हूँ।"

महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए अरिहत अरिष्टनेमि ने कहा—कृष्ण! मुनि गजसुकुमाल ने मोक्ष प्राप्त करने का अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।

अरिष्टनेमि भगवान् से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर कृष्ण वासुदेव अरिष्टनेमि भगवान् के चरणो मे पुन निवेदन करने लगे—

---

१ वर्ग ३, सूत्र २१ २ देखिए—सूत्र २२

भगवन्! मुनि गजसुकुमाल ने अपना प्रयोजन कैसे सिद्ध कर लिया है? महाराज कृष्ण के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अरिष्टनेमि भगवान् कहने लगे—

"हे कृष्ण! वस्तुत कल के दिन के अपराह्न काल के पूर्व भाग मे गजसुकुमाल मुनि ने मुझे वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—हे प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो मैं महाकाल श्मशान मे एक रात्रि की महाभिक्षुप्रतिमा धारण करके विचरना चाहता हूँ। यावत् मेरी अनुज्ञा प्राप्त होने पर वह गजसुकुमाल मुनि महाकाल श्मशान मे जाकर भिक्षु की महाप्रतिमा धारण करके ध्यानस्थ खडे हो गये।

इसके बाद गजसुकुमाल मुनि को एक पुरुष ने देखा और देखकर वह उन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। इत्यादि समस्त पूर्वोक्त घटना सुनाकर भगवान् ने अन्त मे कहा—इस प्रकार गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया।

२६—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—

से के णं भंते! से पुरिसे अपत्थियपत्थिए जाव [दुरंत-पंत-लक्खणे, हीणपुण्णचाउद्दसिए, सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति] परिवज्जिए, जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गजसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ, (ववरोविए)?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"मा णं कण्हा! तुमं तस्स पुरिसस्स पदोसमावज्जाहि। एवं खलु कण्हा! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव भगवान् नेमिनाथ से इस प्रकार पूछने लगे—

"भंते! वह अप्रार्थनीय का प्रार्थी अर्थात् मृत्यु को चाहनेवाला, [दुरन्त प्रान्त लक्षण वाला, पुण्यहीन चतुर्दशी को उत्पन्न, लज्जा और लक्ष्मी से रहित] निर्लज्ज पुरुष कौन है जिसने मेरे सहोदर लघु भ्राता गजसुकुमाल मुनि का असमय मे ही प्राण-हरण कर लिया?"

तब अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले—

"हे कृष्ण! तुम उस पुरुष पर द्वेष-रोष मत करो, क्योकि उस पुरुष ने सुनिश्चित रूपेण गजसुकुमाल मुनि को अपना आत्म-कार्य—अपना प्रयोजन सिद्ध करने मे सहायता प्रदान की है।"

विवेचन—'अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेइ' यहा 'ववरोविए' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अस्तु, इन पदो का अर्थ है—अकाल मे ही जीवन से रहित कर दिया। अकाल मृत्यु शब्द असमय की मृत्यु के लिये प्रयुक्त होता है। जो मृत्यु समय पर हो, व्यावहारिक दृष्टि मे अपना समय पूर्ण कर लेने पर हो, उसे अकाल मृत्यु नही कहते, वह कालमृत्यु है।

जैन शास्त्रो मे आयु के दो प्रकार हैं—एक अपवर्तनीय और दूसरी अनपवर्तनीय। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले ही विष शस्त्र आदि का निमित्त मिलने पर शीघ्र भोगी जा सके वह अपवर्तनीय आयु है, और जो बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके वह अनपवर्तनीय आयु है। इस आयुद्वय का बन्ध स्वाभाविक नही है, परिणामो के तारतम्य पर

आधारित है। आयु बाधते समय अगर परिणाम मद हो तो आयु का वध शिथिल पडेगा, अगर परिणाम तीव्र हो तो बध तीव्र होगा। शिथिल बधवाली आयु निमित्त मिलने पर घट जाती है— नियत काल से पहले ही भोग ली जाती है और तीव्र बधवाली (निकाचित) आयु निमित्त मिलने पर भी नही घटती है। स्थानाग सूत्र मे आयुभेद के सात निमित्त बताये है जो इस प्रकार है—

१ **अज्झवसाण**—अध्यवसान—स्नेह या भय रूप प्रवल मानसिक आघात होने पर आयु समय से पहले ही समाप्त होती है।

२ **निमित्त**—शस्त्र, दण्ड, अग्नि आदि का निमित्त पाकर आयु शीघ्र समाप्त हो जाती है।

३ **आहार**—अधिक भोजन करने से आयु घट जाती है।

४ **वेदना**—किसी भी अग मे असह्य वेदना होने पर आयु के दलिक समय से पूर्व ही उदय मे आकर आत्मा से झड जाते है।

५. **पराघात**—गड्ढे मे गिरना, छत का ऊपर गिर जाना आदि वाह्य आघात पाकर आयु की उदीरणा हो जाती है।

६ **स्पर्श**—सर्प आदि जहरीले जीवो के काटने पर अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श होने पर जिससे शरीर मे विष फैल जाए, आयु असमय मे ही समाप्त हो जाती है।

७ **आण-पाण**—श्वास की गति बन्द हो जाने पर आयु-भेद हो जाता है। निमित्तो को पाकर जो आयु नियत काल समाप्त होने से पहले ही अन्तर्मुहूर्तमात्र मे भोग ली जाती है, उस आयु का नाम अपवर्तनीय आयु है। इसे सोपक्रम आयु भी कहते है। जो उपक्रम सहित हो वह सोपक्रम है। तीव्र शस्त्र, तीव्र विष,तीव्र अग्नि आदि निमित्तो का प्राप्त होना उपक्रम है। अनपवर्तनीय आयु सोपक्रम और निरुपक्रम दोनो प्रकार की होती है। दूसरे शब्दो मे इस अनपवर्तनीय आयु को अकालमृत्यु लानेवाले अध्यवसान आदि उक्त निमित्तो का सनिधान होता भी है और नही भी होता है। उक्त निमित्तो का सनिधान होने पर भी अनपवर्तनीय आयु नियतकाल से पहले पूर्ण नही होती।

यहाँ इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि बन्धकाल मे आयुकर्म के जितने दलिक बधते हैं, उन सब का भोग तो जीव को करना ही पडता है, केवल वह भोग जब स्वल्प काल मे हो जाता है तब वह कालिक स्थिति की अपेक्षा अकालमरण कहा जाता है।

२७—कहण्ण भंते ! तेण पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

से नूणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नयरीए एग पुरिसं—जाव[1] [जुण्णं जराजज्जरियदेह आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं किलंतं महइमहालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेससि। तए णं तुमे एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि] अणुपवेसिए। जहा णं कण्हा ! तुमे तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे, एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभव-सयसहस्स-संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिण्णे।

१ देखिए सूत्र २४

यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने पुन प्रश्न किया—'हे पूज्य ! उस पुरुष ने गजसुकुमाल मुनि को किस प्रकार सहायता दी ?'

अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार उत्तर दिया—

"कृष्ण ! मेरे चरणवदन के हेतु शीघ्रतापूर्वक आते समय तुमने द्वारका नगरी मे एक वृद्ध पुरुष को देखा [जो अति वृद्ध, जरा से जर्जरित, अति क्लान्त, कुम्हलाया हुआ, दुर्बल था, उसके घर के बाहर राजमार्ग पर पडी हुई एक ईंट उस वृद्ध के घर मे जाकर रख दी। तुम्हे एक ईंट रखते देखकर तुम्हारे साथ के सब पुरुषों ने भी एक-एक ईंट उठा कर उस वृद्ध के घर मे पहुँचा दी और ईंटो की वह विशाल राशि तत्काल राजमार्ग से उठकर उस वृद्ध के घर मे चली गई। इस तरह तुम्हारे इस सत्कर्म से वृद्ध पुरुष का कष्ट दूर हो गया।] हे कृष्ण ! वस्तुत जिस तरह तुमने उस पुरुष का दु ख दूर करने मे उसकी सहायता की, उसी तरह हे कृष्ण ! उस पुरुष ने भी अनेकानेक लाखो भवो के सचित कर्मों की राशि की उदीरणा करने मे सलग्न गजसुकुमाल मुनि को उन कर्मों की सपूर्ण निर्जरा करने मे सहायता प्रदान की है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे भगवान् अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण को उन्ही के (श्रीकृष्ण के) जीवन मे घटित उदाहरण से यह समझाया कि वास्तव मे गजसुकुमाल मुनि के कर्मक्षय मे सोमिल सहायक बना।

आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज ने अपने अन्तगड सूत्र की वृत्ति (पृ १८९) मे सोमिल ब्राह्मण तथा मुनि गजसुकुमाल के अतीत कालीन कर्म-सम्बन्ध को लेकर परपरागत कथा दी है—

एक पुरुष की दो पत्नियाँ थी, एक को बच्चा था, एक को नही था। बच्चा-रहित स्त्री ने बहुतेरे उपाय किये परतु उसे बच्चा नही हुआ। ईर्ष्यावश उस ने निर्णय किया कि कभी अवसर पाकर मैं सौत के बच्चे को मार डालू गी।

दुर्भाग्य से बच्चे के सिर मे फु सिया निकली, अनेको इलाज करने पर भी दर्द नही मिटा तब बच्चे की माँ ने सौत से उपाय पूछा और अवसर पाकर उसने पूडा पकाया और गरम-गरम पूडा बच्चे के सिर पर बाँध दिया। परिणामत बच्चे की मृत्यु हुई। इससे वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।

हजारो जन्म-जन्मातर की घाटियाँ पार करती हुई वही नारी एक दिन माता देवकी के घर गजसुकुमाल के रूप मे पैदा हुई और वह बच्चा द्वारका नगरी मे सोमिल ब्राह्मण के रूप मे उत्पन्न हुआ।

कथाकार के अनुसार निन्यानवे लाख जन्म पहले गजसुकुमाल के जीव ने किसी समय सोमिल ब्राह्मण के जीव के सिरपर गरम-गरम पूडा बाँधकर उसे मारा था। अत इस जन्म मे सोमिल ने जलती हुई अगीठी रखकर बदला लिया।

अणेग भव····कम्म—अर्थात् अनेक शब्द एक से अधिक अर्थ का, भव शब्द जन्म का, शत-सहस्र शब्द लाखो और सचित शब्द उपार्जित किए हुए, अर्थ का बोधक है। कर्म उस पौद्गलिक शक्ति का नाम है जो आत्मा को ससार-अटवी मे भ्रमण कराने वाली है।

"उदीरेमाणेण" अर्थात् उदीरणा करके। जैन शास्त्रो मे कर्म की चार अवस्थाएँ बताई

गई हैं—बध, उदय, उदीरणा और सत्ता। मिथ्यात्वादि के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि के रूप मे परिणत होकर कर्म-पुद्गलो का आत्मा के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाना बध है। अबाधाकाल समाप्त होने पर और उदय-काल-फलदान का समय आने पर कर्मो का शुभाशुभ फल देना उदय है। अबाधाकाल (बधे हुए कर्मो का जब तक आत्मा को फल नही मिलता वह काल) व्यतीत हो चुकने पर भी जो कर्म-दलिक बाद मे उदय मे आनेवाले है, उनको प्रयत्न-विशेष से खीच कर उदय-प्राप्त दलिको के साथ भोग लेना उदीरणा है। बधे हुए कर्मो का अपने स्वरूप को न छोड कर आत्मा के साथ लगे रहना सत्ता है। उदय और उदीरणा मे यह अन्तर है कि उदय मे किसी भी प्रकार के प्रयत्न के विना स्वाभाविक क्रम से कर्मो के फल का भोग होता है और उदीरणा मे प्रयत्न करने पर ही कर्मफल का भोग होता है। प्रस्तुत मे मुनि गजसुकुमाल ने जो कर्म-फल का उपभोग किया है, वह स्वाभाविक क्रम से नही किया, किन्तु सोमिल ब्राह्मण के प्रयत्न विशेष से कर्मों का उपभोग कराया गया है, अत यहाँ कर्मो की उदीरणा अर्थ अपेक्षित है।

सोमिल ब्राह्मण का मरण

२८—तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं एवं वयासी—से णं भंते! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे? तए ण अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—जे ण कण्हा! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासेत्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ, तण्ण तुमं जाणिज्जासि "एस णं से पुरिसे।" तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरयण तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए ण तस्स सोमिलमाहणस्स कल्ल जाव[1] जलते अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरह अरिट्ठणेमिं पायवंदए निग्गए। तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ। कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइ नयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं हव्वमागए।

भगवान् अरिष्टनेमि द्वारा अपने प्रश्न का समाधान प्राप्त करके कृष्ण वासुदेव फिर भगवान् के चरणो मे निवेदन करने लगे—"भगवन्! मैं उस पुरुष को किस तरह पहचान सकता हूँ?' श्रीकृष्ण के इस प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् अरिष्टनेमि कहने लगे—'कृष्ण! यहाँ से लौटने पर जब तुम द्वारका नगरी मे प्रवेश करोगे तो उस समय एक पुरुप तुम्हे देखकर भयभीत होगा, वह वहाँ पर खडा-खडा ही गिर जाएगा। आयु की समाप्ति हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। उस समय तुम समझ लेना कि यह वही पुरुष है।' अरिष्टनेमि भगवान् द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर भगवान् अरिष्टनेमि को वदन एव नमस्कार करके श्रीकृष्ण ने वहाँ से प्रस्थान किया और अपने प्रधान हस्तिरत्न पर बैठकर अपने घर की ओर रवाना हुए।

उधर उस सोमिल ब्राह्मण के मन मे दूसरे दिन सूर्योदय होते ही इस प्रकार विचार उत्पन्न

१ देखिए—तृतीय वर्ग, सूत्र २४

हुआ—निश्चय ही कृष्ण वासुदेव अरिहत अरिष्टनेमि के चरणो मे वदन करने के लिये गये हैं। भगवान् तो सर्वज्ञ हैं उनसे कोई बात छिपी नही है। भगवान् ने गजसुकुमाल की मृत्यु सम्बन्धी मेरे कुकृत्य को जान लिया होगा, (आद्योपान्त) पूर्णत विदित कर लिया होगा। यह सब भगवान् से स्पष्ट समझ सुन लिया होगा। अरिहत अरिष्टनेमि ने अवश्यमेव कृष्ण वासुदेव को यह सब बता दिया होगा। तो ऐसी स्थिति मे कृष्ण वासुदेव रुष्ट होकर मुझे न मालूम किस प्रकार की कुमौत से मारेगे। इस विचार से डरा हुआ वह अपने घर से निकलता है, निकलकर द्वारका नगरी मे प्रवेश करते हुए कृष्ण वासुदेव के एकदम सामने आ पडता है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि सोमिल ब्राह्मण श्रीकृष्ण से अपने जीवन को सुरक्षित रखने के विचार से द्वारका नगरी से बाहर भागा जा रहा था, परतु अचानक श्रीकृष्ण भी उसी मार्ग से निकले और अचानक दोनो का सामना हो गया।

इस सूत्र मे प्रयुक्त "ठितिभेएण" का अर्थ है—आयु की स्थिति का नाश। जिस प्रकार जल के सयोग से मिश्री या बताशा अपनी कठिनता को छोडकर जल मे विलीन हो जाता है तथा जैसे अग्नि का सपर्क पाकर घृत पतला हो जाता है, उसी प्रकार सोपक्रम आयुष्यकर्म भी अध्यवसान आदि निमित्त विशेष के मिलने पर क्षय को प्राप्त हो जाता है। अत व्यवहार-नय के अनुसार ससारी जीवो के आयु-क्षय को अकाल मृत्यु के नाम से व्यवहृत किया जाता है।

त नायमेय अरहया ' मिट्ठमेय अरहया—इस पद मे ज्ञात, विज्ञात, श्रुत और शिष्ट ये चार पद हैं। सामान्य रूप से यह जानना कि गजसुकुमाल मुनि का प्राणान्त हो गया है, यह ज्ञात होना है। विशेष रूप से जानना कि सोमिल ब्राह्मण ने अमुक अभिप्राय से गजसुकुमाल मुनि का अग्नि द्वारा घात किया है, विज्ञात होना है। भाव यह है कि सामान्य बोध और विशेष बोध के ससूचक ज्ञात और विज्ञात ये दोनो शब्द हैं। सुयमेय-के दो अर्थ होते हैं —१ स्मृतमेतत् और २ श्रुतमेतत्। आचार्य अभयदेव सूरि ने प्रथम अर्थ ग्रहण कर इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'स्मृत पूर्वकाले ज्ञात सन् कथनावसरे स्मृत भविष्यति'—इस व्याख्या से भाव यह होगा कि सोमिल ब्राह्मण ने विचार किया कि भगवान् अरिष्टनेमि ने गजसुकुमाल की मृत्यु-घटना को घटित होते समय ही स्वय के ज्ञान मे देख लिया होगा, और श्रीकृष्ण के आगमन पर उन्हे इसका स्मरण हुआ ही होगा। दूसरा श्रुत अर्थ लेने पर इसकी व्याख्या होगी—'श्रुतमेतद् अर्हता कस्मादपि देवविशेषाद्वा भगवता श्रुत भविष्यति' अर्थात् सोमिल ब्राह्मण सोचता है—श्री कृष्ण वासुदेव ने मुनि गजसुकुमाल का मृत्यु-वृत्तान्त भगवान् द्वारा अथवा किसी देव विशेष द्वारा सुन लिया होगा। शिष्ट शब्द का अर्थ होता है—कह दिया। भाव यह है कि भगवान् अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण को गजसुकुमाल की मृत्य का वृत्तान्त कह दिया होगा।

सोमिल-शव की दुर्दशा

२६—तए ण से सोमिले माहणे कण्ह वासुदेवं सहसा पासेत्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे सजायभए ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करेइ, धरणितलंसि सव्वंगेहिं "धस" त्ति सण्णिवडिए। तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

"एस णं भो! देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थिय-पत्थिए जाव[1] परिवज्जिए, जेणं

१ देखिए—इस वर्ग का सूत्र २२

ममं सहोयरं कणीयसे भायरं गयसुकुमाले अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावेत्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

उस समय सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को सहसा सम्मुख देख कर भयभीत हुआ और जहाँ का तहाँ स्तम्भित खडा रह गया। वही खडे-खडे ही स्थितिभेद से अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने से सर्वांग-शिथिल हो धडाम से भूमितल पर गिर पडा। उस समय कृष्ण वासुदेव सोमिल ब्राह्मण को गिरता हुआ देखते है और देखकर इस प्रकार वोलते है—

"अरे देवानुप्रियो! यही वह मृत्यु की इच्छा करने वाला तथा लज्जा एव शोभा से रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमाल मुनि को असमय मे ही काल का ग्रास बना डाला।" ऐसा कहकर कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण के उस शव को चाडालो के द्वारा घसीटवा कर नगर के बाहर फिकवा दिया और उस शव के स्पर्श वाली भूमि को पानी से धुलवाया। उस भूमि को पानी से धुलवाकर कृष्ण वासुदेव अपने राजप्रासाद मे पहुँचे और अपने आगार मे प्रविष्ट हुए।

निक्षेप

३०—एव खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेण जाव[1] सपत्तेणं अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जबू को सम्वोधित करते हुए कहते है—हे जबू! यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तकृद्दशाग सूत्र के तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है।

---

१ देखो प्रथम वर्ग, सूत्र २

नवमं अज्झयणं

सुमुख

जिज्ञासा और समाधान

३१—नवमस्स उक्खेवओ—[जइ ण भंते! समणेण भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भते! अज्झयणस्स अंतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?]

एव खलु जबू! तेण कालेण तेण समएण बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया जहा पढमए जाव[1] विहरइ। तत्थ ण बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था-वण्णओ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी नाम देवी होत्था। वण्णओ। तए णं सा धारिणी देवी सीहं सुविणे जहा गोयमे, नवरं वीसं वासाइ परियाओ। सेसं त चेव सेत्तुंजे सिद्धे।

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स नवमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि।

भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडदशा सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवे अध्ययन के जो भाव कहे वे मैंने आपसे सुने। भगवन्! नवमे अध्ययन के भगवान् ने क्या भाव कहे है? यह भी मुझे बताने की कृपा करे।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जबू! उस काल उस समय मे द्वारकानामक नगरी थी, जिसका वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है। एक दिन भगवान् अरिष्टनेमि तीर्थंकर विचरते हुए उस नगरी मे पधारे। वहाँ द्वारका नगरी मे बलदेवनामक राजा था। यहाँ राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए। उस बलदेव राजा की धारिणी नाम की रानी थी। उसका वर्णन भी औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना। उस धारिणी रानी ने सिह का स्वप्न देखा, तदनन्तर पुत्रजन्म आदि का वर्णन गौतमकुमार की तरह जान लेना चाहिए। विशेषता यह कि वह बीस वर्ष की दीक्षापर्यायवाला हुआ। शेष उसी प्रकार यावत् शत्रुजय पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की।

"हे जबू! इस प्रकार यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगड सूत्र के तृतीय वर्ग के नवम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूँ।"

---

१ देखिए—प्रथम वर्ग का सूत्र ६

२ देखिए—प्रथम वर्ग का सूत्र २

१०-१३ अज्झयणाणि

तृतीय वर्ग की समाप्ति

तृतीय वर्ग की समाप्ति

३२—एव दुम्मुहे वि । कूवए वि । तिण्णि वि वलदेव-धारिणी-सुया ।
दारुए वि एव चेव, नवरं- वसुदेव-धारिणी-सुए ।
एवं-अणाहिट्ठी वि वसुदेव-धारिणी-सुए ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक कुमार का वर्णन जानना चाहिये । दोनो के पिता वलदेव और माता धारिणी थी ।

दारुक और अनाधृष्टि भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि वसुदेव पिता और धारिणी माता थी ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने आठवे अग अतगड-दशा सूत्र के तीसरे वर्ग के एक से लेकर तेरह अध्ययनो का यह भाव फरमाया है ।"

---

१. देखिये-प्रथम वर्ग का द्वितीय सूत्र ।

चउत्थो वग्गो

१–१० अज्झयणाणि

उत्क्षेप

१—जइ णं भते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेण तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चउत्थस्स वग्गस्स अतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव[3] संपत्तेण चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, त जहा—

संग्रहणी-गाथा

(१) जालि (२) मयालि (३) उवयाली (४) पुरिससेणे (५) वारिसेणे य ।
(६) पज्जुण्ण (७) संब (८) अणिरुद्ध (९) सच्चणेमि य (१०) दढणेमी ।।१।।

जइ णं भंते ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव[4] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

जालिप्रभृति

एवं खलु जंबू ! तेण कालेणं तेण समएण बारवई नयरी । तीसे णं बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव[5] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[6] विहरइ । तत्थ णं बारवईए नयरीए वसुदेवे राया । धारिणी देवी, वण्णओ । जहा गोयमो, नवरं जालिकुमारे । पण्णासओ दाओ । बारसंगी । सोलसवासा परियाओ । सेसं जहा गोयमस्स जाव[7] सेत्तुज्जे सिद्धे ।

एवं मयाली उवयाली पुरिससेणे य वारिसेणे य ।
एवं पज्जुण्णे वि, नवरं-कण्हे पिया, रुप्पिणी माया ।
एवं सबे वि, नवरं-जववई माया ।
एवं अणिरुद्धे वि, नवर-पज्जुण्णे पिया, वेदब्भी माया ।
एव सच्चणेमी, नवरं-समुद्दविजए पिया, सिवा माया ।
एव दढणेमी वि सव्वे एगगमा ।।

निक्षेप

एव खलु जबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाण चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

---

१ २ ३ ४ देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र २
५ देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र ५, ६.
६ देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र ६
७ देखिये—प्रथम वर्ग, सूत्र ७, ९

श्रीजवू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने आठवे अग अतकृत्दशा के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह सुना। अतगडदशा के चौथे वर्ग के हे पूज्य ! श्रमण भगवान् ने क्या भाव दर्शाये है, यह भी मुझे वताने की कृपा करे।"

सुधर्मा स्वामी ने जवू स्वामी से कहा—"हे जवू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने अतगड-दशा के चौथे वर्ग मे दश अध्ययन कहे है, जो इस प्रकार हैं—

(१) जालि कुमार, (२) मयालि कुमार, (३) उवयालि कुमार, (४) पुरुपसेन कुमार (५) वारिषेण कुमार, (६) प्रद्युम्न कुमार, (७) शाम्व कुमार (८) अनिरुद्ध कुमार, (९) सत्यनेमि कुमार और (१०) दृढनेमि कुमार।

जवू स्वामी ने कहा—भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, तो प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ वताया है।'

जालि प्रभृति

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जवू ! उस काल और उस समय मे द्वारका नामकी नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन मे किया जा चुका है। श्रीकृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे। उस द्वारका नगरी मे महाराज 'वसुदेव' और रानी 'धारिणी' निवास करते थे। यहाँ राजा और रानी का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जान लेना चाहिए। जालिकुमार का वर्णन गौतम कुमार के समान जानना। विशेष यह कि जालिकुमार ने युवावस्था प्राप्तकर पचास कन्याओ से विवाह किया तथा पचास-पचास वस्तुओ का दहेज मिला। दीक्षित होकर जालि मुनि ने वारह अगो का ज्ञान प्राप्त किया, सोलह वर्ष दीक्षापर्याय का पालन किया, शेष सव गौतम कुमार की तरह यावत् शत्रु जय पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार मयालिकुमार, उवयालि कुमार, पुरुषसेन और वारिपेण का वर्णन जानना चाहिये।

इसी प्रकार प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिये। विशेप—कृष्ण उनके पिता और रुक्मिणी देवी माता थी।

इसी प्रकार साम्ब कुमार भी, विशेष—उनकी माता का नाम जाम्ववती था। ये दोनो श्री-कृष्ण के पुत्र थे।

इसी प्रकार अनिरुद्ध कुमार का भी वर्णन है। विशेप यह है कि प्रद्युम्न पिता और वैदर्भी उसकी माता थी।

इसी प्रकार सत्यनेमि कुमार का वर्णन है। विशेप, समुद्रविजय पिता और शिवा देवी माता थी।

इसी प्रकार दृढनेमि कुमार का भी वर्णन समझना। ये सभी अध्ययन एक समान है।

सुधर्मा स्वामी ने कहा—इस प्रकार हे जवू ! दश अध्ययनो वाले इस चौथे वर्ग का श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त प्रभु ने यह अर्थ कहा है।

विवेचन—चतुर्थ वर्ग मे जालि मयालि आदि दश महापुरुषो का वर्णन है। इनका सर्व वर्णन गौतम कुमार की तरह होने से "जहा गोयमो नवर"—शब्द से इसे स्पष्ट किया है और सव्वे एगगमा—अर्थात् चतुर्थ वर्ग के जो दश अध्ययन है, इनमे वर्णित राजकुमारो के जीवन की व्याख्या करनेवाले पाठ एक जैसे ही है। नाम आदि का जो अन्तर था, उसका सूत्रकार ने अलग उल्लेख कर दिया है।

पंचमो वग्गो

पढमं अज्झयणं—पउमावई

भ० अरिष्टनेमि का पदार्पण धर्मदेशना

१—जइ णं भंते ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव[1] संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव[2] संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव[3] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

(१) पउमावई य (२) गोरी (३) गंधारी (४) लक्खणा (५) सुसीमा य ।
(६) जंबवई (७) सच्चभामा (८) रुप्पिणी (९) मूलसिरि (१०) मूलदत्ता वि ॥

जइ णं भंते ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव[4] संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । जहा पढमे जाव[5] कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव[6] विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णओ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव [अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ । कण्हे वासुदेवे निग्गए जाव[7] पज्जुवासइ । तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जहा देवई देवी जाव[8] पज्जुवासइ । तए णं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य, जाव धम्मकहा । परिसा पडिगया ।

आर्य जंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि अन्तगडसूत्र के चतुर्थ वर्ग का यह अर्थ वर्णन किया है, तो भगवन् ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी बोले—"हे जंबू ! यावत् मोक्ष-प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अन्तगडसूत्र के पंचम वर्ग के दस अध्ययन बताए हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) पद्मावती देवी (२) गौरी देवी (३) गान्धारी देवी (४) लक्ष्मणा देवी (५) सुसीमा देवी (६) जाम्बवती देवी (७) सत्यभामा देवी (८) रुक्मिणी देवी (९) मूलश्री देवी और (१०) मूलदत्ता देवी ।

जम्बू स्वामी ने पुनः पूछा—'भंते ! श्रमण भगवान् महावीर ने पंचम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?' सुधर्मा स्वामी ने कहा—

हे जंबू ! उस काल उस समय में द्वारका नाम की एक नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम

१—४ प्रथम वर्ग, सूत्र २
५ प्रथम वर्ग सूत्र ५, ६
६ प्रथम वर्ग, सूत्र ६
७. तृतीय वर्ग, सूत्र १८
८ तृतीय वर्ग, सूत्र ९

अध्ययन मे किया जा चुका है। यावत् श्रीकृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे। श्रीकृष्ण वासुदेव की पद्मावती नाम की महारानी थी। यहा औपपातिक सूत्र के अनुसार राज्ञीवर्णन जान लेना चाहिए।

उस काल उस समय मे अरिहत अरिष्टनेमि तीर्थंकर सयम और तप से आत्मा को भावित कर विचरते हुए द्वारका नगरी मे पधारे। श्रीकृष्ण वदन-नमस्कार करने हेतु राजप्रासाद से निकल कर प्रभु के पास पहुँचे यावत् प्रभु अरिष्टनेमि की पर्युपासना करने लगे। उस समय पद्मावती देवी ने भगवान् के आने की खबर सुनी तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह भी देवकी महारानी के समान धार्मिक रथ पर आरूढ होकर भगवान् को वदन करने गई। यावत् नेमिनाथ की पर्युपासना करने लगी। अरिहत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती देवी और जनपरिपद को धर्मकथा कही। धर्मकथा सुनकर जन-परिपद् वापिस लौट गई।

द्वारकाविनाश का कारण

२ - तए ण से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वदइ, नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इमीसे णं भंते ! बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिन्नाए जाव[1] देवलोगभूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ ?'

'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एव वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिन्नाए जाव[2] देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।"

तव कृष्ण वासुदेव ने भगवान् नेमिनाथ को वदन-नमस्कार करके उनसे इस प्रकार पृच्छा की-

"भगवन् ! वारह योजन लवी और नव योजन चौडी यावत् साक्षात् देवलोक के समान इस द्वारका नगरी का विनाश किस कारण से होगा ?"

'हे कृष्ण !' इस प्रकार सबोधित करते हुए अरिहत अरिष्टनेमि ने उत्तर दिया—

"हे कृष्ण ! निश्चय ही वारह योजन लम्बी और नव योजन चौडी यावत् प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान इस द्वारका नगरी का विनाश मदिरा (सुरा), अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कोप के कारण होगा।"

श्रीकृष्ण का उद्वेग उसका शमन

३—कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'धण्णा ण ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण-सब-अणिरुद्ध-दढणेमि-सच्चणेमि-प्पभियओ कुमारा जे णं चइत्ता हिरण्णं, जाव [चइत्ता सुवण्णं एवं धण्णं धणं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं पुर अंतेउरं चइत्ता विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-संतसार-सावएज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइयाणं] परिभाइत्ता, अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडा जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइया। अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव [रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य] अंतेउरे

---

१ २ देखिये—वर्ग १, सूत्र ५.

य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठनेमिस्स जाव [अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए।'

'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेव एवं वयासी—

"से नूणं कण्हा ! तव अय अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-धण्णा णं ते जालिप्पभिइकुमारा जाव[3] पव्वइया। से नूणं कण्हा ! अत्थे समत्थे ?

हंता अत्थि।

तं नो खलु कण्हा ! एय भूयं वा भव्व वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव[4] पव्वइस्संति।

से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ 'न एयं भूयं वा जाव[5] पव्वइस्संति ?

'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेव एव वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाणकडा से एतेणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चइ न एय भूयं जाव[6] पव्वइस्सति।

अरिहन्त अरिष्टनेमि से द्वारका नगरी के विनाश का कारण सुन-समझकर श्रीकृष्ण वासुदेव के मन मे ऐसा विचार चिन्तन, प्रार्थित एव मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ कि—वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेन, वीरसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढनेमि और सत्यनेमि प्रभृति कुमार धन्य है जो हिरण्यादि [सपदा और धन, सैन्य, वाहन, कोप, कोष्ठागार, पुर, अन्त पुर आदि परिजन छोडकर तथा बहुत-सा हिरण्य, सुवर्ण, कासा, दूष्य-वस्त्र, मणि, मोती, सख, सिला, मूगा, लालरत्न आदि सारभूत द्रव्य आदि] देयभाग देकर, नेमिनाथ प्रभु के पास मुडित होकर अगार को त्यागकर अनगार रूप मे प्रव्रजित हो गये है। मैं अधन्य हू, अकृत-पुण्य हू कि राज्य, [कोष, कोष्ठागार, सैन्य, वाहन, नगर] अन्त पुर और मनुष्य सबधी कामभोगो मे मूर्छित हू, इन्हे त्यागकर भगवान् नेमिनाथ के पास मुडित होकर अनगार रूप मे प्रव्रजित होने मे असमर्थ हू।

भगवान् नेमिनाथ प्रभु ने अपने ज्ञान-बल से कृष्ण वासुदेव के मनमे आये इन विचारो को जानकर आर्त्तध्यान मे डूबे हुए कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—"निश्चय ही हे कृष्ण ! तुम्हारे मन मे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—वे जालि, मयालि आदि कुमार धन्य है जिन्होने धन वैभव एवं स्वजनो को त्यागकर मुनिव्रत ग्रहण किया और मैं अधन्य हू, अकृतपुण्य हू जो राज्य अन्त पुर और मनुष्य सबधी काम-भोगो मे गृद्ध हू। मैं प्रभु के पास प्रव्रज्या नही ले सकता। हे कृष्ण ! क्या यह वात सही है ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"हॉ भगवन् ! आपने जो कहा वह सभी यथार्थ है।"

प्रभु ने फिर कहा—"तो हे कृष्ण ! ऐसा कभी हुआ नही, होता नही और होगा भी नही कि वासुदेव अपने भव मे धन-धान्य-स्वर्ण आदि सपत्ति छोडकर मुनिव्रत ले ले। वासुदेव दीक्षा लेते नही, ली नही एव भविष्य मे कभी लेगे भी नही।"

---

३ ४ ५ ६—इसी सूत्र मे ऊपर पाठ आ चुका है।

श्रीकृष्ण ने कहा—"हे भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि ऐसा कभी हुआ नही, होता नही और होगा भी नहीं । इसका क्या कारण है ?"

अरिहत अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—"हे कृष्ण ! निश्चय ही सभी वासुदेव पूर्व भव मे निदानकृत (नियाणा करने वाले) होते हैं, इसलिये मैं ऐसा कहता हू कि ऐसा कभी हुआ नही, होता नही और होगा भी नही कि वासुदेव कभी प्रव्रज्या अगीकार करे ।"

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अरिष्टनेमि भगवान् से पूछे गये कुछ प्रश्नो का विवरण प्रस्तुत किया गया है । द्वारका के विनाश का कारण सुनकर श्रीकृष्ण का सयमियो के प्रति अनुराग बढा और साथ ही स्वय के प्रति ग्लानि हुई कि वे स्वय दीक्षा नही ले सकते है ! उनकी इस व्यथा के समाधान मे भगवान् ने कहा—तुम वासुदेव हो । और तीन काल मे कभी कोई वासुदेव दीक्षा नही ले सकता क्योकि पूर्व मे उन्होने निदान किया होता है ।

'निदान' जैन परम्परा का अपना एक पारिभापिक शब्द है । मोहनीय कर्म के उदय से कामभोगो की इच्छा होने पर माधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का अपने चित्त मे सकल्प कर लेना कि मेरी तपस्या से मुझे अमुक फल की प्राप्ति हो, उसे निदान करते है । जन साधारण मे इसे नियाणा कहा जाता है । निदान कल्याण-साधक नही । जो व्यक्ति निदान करके मरता है, उसका फल प्राप्त करने पर भी उसे निर्वाण की प्राप्ति नही हो सकती । वह बहुत काल तक ससार मे भटकता है । दशाश्रुतस्कंध की दशवी दशा मे निदान के नव कारण बताये है । वे इस प्रकार है—

१ एक पुरुप किसी समृद्धिशाली को देखकर निदान करता है ।

२ स्त्री अच्छा पुरुप प्राप्त करने के लिये निदान करती है ।

३ पुरुप सुन्दर स्त्री के लिए निदान करता है ।

४ स्त्री किसी सुखी एव सुन्दर स्त्री को देखकर निदान करती है ।

५ कोई जीव देवगति मे देवरूप से उत्पन्न होकर अपनी तथा दूसरी देवियो को वैक्रिय शरीर द्वारा भोगने का निदान करता है ।

६ कोई जीव देवभव मे सिर्फ अपनी देवी को भोगने का निदान करता है ।

७ कोई जीव अगले भव मे श्रावक बनने का निदान करता है ।

८ कोई जीव देवभव मे अपनी देवी को बिना वैक्रिय के भोगने का निदान करता है ।

९ कोई जीव अगले भव में साधु बनने का निदान करता है ।

इनमे से पहले चार प्रकार के निदान करनेवाला जीव केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म को सुन भी नही सकता । पाचवा निदान करने वाला जीव धर्म को सुन तो सकता है, पर दुर्लभबोधि होता है और बहुत काल तक ससार मे परिभ्रमण करता है । छठे निदानवाला जीव जिनधर्म को सुनकर और समझ कर भी दूसरे धर्म की ओर रुचि रखता है । सातवे निदान वाला जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, धर्म पर श्रद्धा कर सकता है, किन्तु व्रत अगीकार नही कर सकता है । आठवे निदान वाला श्रावक का व्रत ले सकता है, पर साधु नही हो सकता । नवे निदान वाला जीव साधु हो सकता है, पर उसी भव मे मोक्ष प्राप्त नही कर सकता ।

श्रीकृष्ण के तीर्थंकर होने की भविष्यवाणी

४—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एव वयासी—

"अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?"

तए ण अरहा अरिट्ठणेमी कण्ह वासुदेवं एव वयासी—

"एव खलु कण्हा ! तुम बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निदड्ढाए अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जुहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुराय-पुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थ-पच्छाइय-सरीरे जराकुमारेणं तिक्खेण कोदंड-विप्पमुक्केणं उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि ।"

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव[1] झियाइ ।

कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एव वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमण-संकप्पे जाव[2] झियाह । एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जवणएसु सयदुवारे नयरे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि । तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणेत्ता सिज्झिहिसि बुज्झिहिसि मुच्चिहिसि परिनिव्वाहिसि सव्वदुक्खाणं अंतं काहिसि ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० अप्फोडेइ, अप्फोडेत्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवइं छिंदइ, छिंदित्ता सीहणाय करेइ, करेत्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता तमेव आभिसेक्क हत्थिं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए । आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी—

तब कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि को इस प्रकार बोले—

"हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल कर मै कहाँ जाऊंगा, कहा उत्पन्न होऊगा ?"

इसके उत्तर मे अरिष्टनेमि भगवान् ने कहा—

हे कृष्ण ! तुम सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण इस द्वारका नगरी के जल कर नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एव स्वजनो का वियोग हो जाने पर राम बलदेव के साथ दक्षिणी समुद्र के तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पाचो पाडवो के समीप पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे । रास्ते मे विश्राम लेने के लिये कौशाम्व वन-उद्यान मे अत्यन्त विशाल एक वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर पीताम्बर ओढकर तुम सो जाओगे । उस समय मृग के भ्रम मे जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बाए पैर मे लगेगा । इस तीक्ष्ण तीर से बिद्ध होकर तुम काल के समय काल करके वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी मे जन्म लोगे । प्रभु के श्रीमुख से

१. २. देखिये वर्ग ३, सूत्र १२

अपने आगामी भव की यह वात सुनकर कृष्ण वासुदेव खिन्नमन होकर आर्त्तध्यान करने लगे। तव अरिहत अरिष्टनेमि पुन इस प्रकार वोले—

"हे देवानुप्रिय! तुम खिन्नमन होकर आर्त्तध्यान मत करो। निश्चय से हे देवानुप्रिय! कालान्तर मे तुम तीसरी पृथ्वी से निकलकर इसी जवूद्वीप के भरत क्षेत्र मे आने वाले उत्सर्पिणी काल मे पुड्र जनपद के शतद्वार नाम के नगर मे "अमम" नाम के वारहवे तीर्थकर वनोगे। वहाँ वहुत वर्षो तक केवली पर्याय का पालन कर तुम सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होओगे।"

अरिहत प्रभु के मुखारविन्द से अपने भविष्य का यह वृत्तान्त सुनकर कृष्ण वासुदेव वडे प्रसन्न हुए और अपनी भुजा पर ताल ठोकने लगे। जयनाद करके त्रिपदी-भूमि मे तीन वार पाँव का न्यास किया—कूदे। थोडा पीछे हटकर सिंहनाद किया और फिर भगवान् नेमिनाथ को वदन नमस्कार करके अपने अभिषेक-योग्य हस्तिरत्न पर आरूढ हुए और द्वारका नगरी के मध्य से होते हुए अपने राजप्रासाद मे आये। अभिषेकयोग्य हाथी से नीचे उतरे और फिर जहाँ वाहर की उपस्थानशाला थी और जहा अपना सिंहासन था वहा आये। वे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख विराजमान हुए। फिर अपने आज्ञाकारी पुरुषो—राजसेवको को वुलाकर इस प्रकार वोले—

श्रीकृष्ण की धर्मघोषणा

५—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! वारवईए नयरीए सिंघाडग जाव [तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देण] उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—'एवं खलु देवाणुप्पिया! वारवईए नयरीए नवजोयण जाव[1] देवलोगभूयाए सुरग्गि-दीवायण-मूलाए विणासे भविस्सइ, तं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ वारवईए नयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे वा तलवरे वा माडबिय-कोडुंविय-इब्भ-सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव[2] पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जेइ। पच्छातुरस्स वि य से अहापवित्तं वित्तिं अणुजाणइ। महया इड्ढिसक्कारसमुदएण य से निक्खमणं करेइ। दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसित्ता मम एय आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।

देवानुप्रियो! तुम द्वारका नगरी के शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मु ख महापथो एव पथो मे हस्तिस्कध पर से जोर-जोर से घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो कि—"हे द्वारकावासी नगरजनो! इस वारह योजन लवी यावत् प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारका नगरी का सुरा, अग्नि एव द्वैपायन के कोप के कारण नाश होगा, इसलिये हे देवानुप्रियो! द्वारका नगरी मे जिसकी इच्छा हो, चाहे वह राजा हो, युवराज हो, ईश्वर (स्वामी या राजकुमार) हो, तलवर (राजा का मान्य) हो, माडविक (छोटे गाव का स्वामी) हो, कौटुम्बिक (दो तीन कुटुवो का स्वामी) हो, इभ्य हो, रानी हो, कुमार हो, कुमारी हो, राजरानी हो, राजपुत्री हो, इन मे से जो भी प्रभु नेमिनाथ के निकट मुण्डित होकर यावत् दीक्षा लेना चाहे, उसे कृष्ण वासुदेव ऐसा करने की आज्ञा देते हैं। दीक्षार्थी के पीछे उसके आश्रित सभी कुटुवीजनो की भी श्रीकृष्ण यथायोग्य व्यवस्था करेंगे और वडे ऋद्धि-सत्कार के साथ उसका दीक्षा-महोत्सव सपन्न करेंगे।" इस प्रकार दो-तीन वार घोषणा

---

१ वर्ग १, सूत्र-५ २ वर्ग ५, सूत्र-२

को दोहरा कर पुन सूचित करो।" कृष्ण का यह आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राजपुरुषो ने वैसी ही घोषणा दो-तीन बार करके लौटकर इसकी सूचना श्रीकृष्ण को दी।

विवेचन—पिछले सूत्रो मे श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि से अपने मृत्यु-वृत्तान्त की और नूतन जन्म कहाँ किस स्थिति मे होगा, इस सम्बन्ध की जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् धार्मिक घोषणा करवाते है। उनकी इस जिज्ञासा के समाधान मे भगवान् अरिष्टनेमि ने उनके तृतीय पृथ्वी मे उत्पन्न होने और फिर भावी तीर्थंकर चौवीसी मे १२ वे अमम नामके तीर्थंकर होने का भविष्य प्रकट किया है।

कृष्ण को कृष्ण वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव शब्द का व्याकरण के आधार-पर अर्थ होता है—"वसुदेवस्य अपत्य पुमान् वासुदेव ।" वसुदेव के पुत्र को वासुदेव कहते हैं। कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव था, अत इनको वासुदेव कहते है। वासुदेव शब्द सामान्य रूप से कृष्ण का वाचक है—कृष्ण का दूसरा नाम है, परन्तु वासुदेव का उक्त अर्थ मान्य होने पर भी यह शब्द जैन-दर्शन का पारिभाषिक शब्द बन गया है। अतएव सभी अर्धचक्रवर्त्ती वासुदेव शब्द से कहे जाते हैं। जैन-परम्परा मे वासुदेव नौ कहे गए है—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयभू, ४ पुरुपोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुरुप-पुण्डरीक, ७ दत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण), ९ कृष्ण। इनमे कृष्ण का अतिम स्थान है। वासुदेव का पारिभाषिक अर्थ है—जो सात रत्नो, छह खडो मे से तीन खडो का अधिपति हो तथा जो अनेकविध ऋद्धियो से सम्पन्न हो। जैन-दृष्टि से वासुदेव प्रतिवासुदेव को जीतकर एव मारकर तीन खड पर राज्य किया करते है। इसके अतिरिक्त जैन परम्परा ने २८ लब्धियो मे मे वासुदेव भी एक लब्धि मानी है। तीन खड तथा सात रत्नो के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं, इस पद का प्राप्त होना वासुदेव लब्धि है। वासुदेव मे महान् वल होता है। इस बल का उपमा द्वारा वर्णन करते हुए जैनाचार्य कहते है—कूप के किनारे बैठे हुए और भोजन करते हुए वासुदेव को जजीरो से वाध कर यदि चतुरगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा मिलकर खीचने लगे तो भी वे उन्हे खीच नही सकते, किन्तु उसी जजीर को बाए हाथ से पकड कर वासुदेव अपनी ओर उन्हे आसानी से खीच सकता है।

जैन आगमो मे जिन कृष्ण का उल्लेख है वे ऐसे ही वासुदेव है, वासुदेव-लब्धि से सम्पन्न है। अन्तगडसूत्र मे एक वासुदेव कृष्ण का वर्णन किया है। सनातन-धर्मियो के साहित्य मे वासुदेव शब्द की जैन-शास्त्र सम्मत व्याख्या देखने मे नही आती। वैदिक साहित्य मे वासुदेव पदविशेप या लब्धि-विशेष है ऐसा कोई उल्लेख नही मिलता।

अन्तगड सूत्र तथा अन्य आगमो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्ट-नेमि के अनन्य श्रद्धालु भक्त थे, उपासक थे। यही कारण है कि भगवान् के द्वारका मे पधारने पर वे बडी सजधज के साथ दर्शनार्थ उनकी सेवा मे उपस्थित होते है, अपने परिवार को साथ ले जाते हैं, उनकी धर्मदेशना सुनते है। भगवान् से द्वारकादाह की बात सुनकर स्वय भगवान् के चरणो मे दीक्षित न हो सकने के कारण आकुल होते है। जालिकुमार आदि राजकुमारो के दीक्षित होकर आत्म-कल्याणोन्मुख होने से उनकी प्रशसा करते है। इन सब बातो से प्रमाणित होता है कि वासुदेव कृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि के अनुयायी थे। उनके मार्ग पर चलनेवालो को सहयोग देते थे, क्षमता न होने पर भी उस पर स्वय चलने की अभिलाषा रखते थे। सक्षेप मे कहा जाय तो कृष्ण महाराज जैन धर्मावलम्वी थे।

भद्दिलपुर निवासी सेठ नाग के छह पुत्र, जो भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित हुए थे, वासुदेव कृष्ण के ममेरे भाई थे। गजसुकुमार तो वासुदेव कृष्ण के सगे भाई ही थे। इस तरह महाराज कृष्ण के ये सात भाई भगवान् अरिष्टनेमि के पास जैन साधु बने थे।

जालिकुमार, मयालिकुमार, उपयालिकुमार, पुरुषपेणकुमार और वारिपेणकुमार—ये पाचो महाराज वसुदेव के पुत्र थे, अत वासुदेव कृष्ण के भाई थे, इनकी माता धारिणी थी, राजकुमार सत्यनेमि तथा दृढनेमि ये दोनो राजकुमार वासुदेव कृष्ण के ताऊ के लडके थे। प्रद्युम्नकुमार तथा शाम्वकुमार ये दोनो वासुदेव कृष्ण के पुत्र थे। राजकुमार अनिरुद्ध वासुदेव कृष्ण का पोता था। सभी राजकुमार भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे साधु बने थे।

महारानी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाववती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठो महाराज कृष्ण की रानियाँ थी। मूलश्री तथा मूलदत्ता ये दोनो कृष्ण महाराज के पुत्र शाम्वकुमार की रानियाँ थी। ये सब भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होकर जैन साध्वी बन गई थी।

प्रस्तुत सूत्र के अनुसार वासुदेव कृष्ण अपने राजसेवको द्वारा द्वारका नगरी के सभी प्रदेशो मे एक उद्घोपणा कराते हैं। घोपणा मे कहा जाता है कि द्वारका नगरी एक दिन द्वैपायन ऋषि द्वारा जला दी जायेगी, अत जो भी व्यक्ति भगवान् अरिष्टनेमि के चरणो मे दीक्षित होकर अपना कल्याण करना चाहे, उसे महाराज कृष्ण की आज्ञा है। किसी को पीछे वालो की चिन्ता हो तो उसे वह छोड देनी चाहिए, पीछे की सव व्यवस्था महाराज कृष्ण स्वय करेगे। इसके अतिरिक्त घोषणा मे यह भी कहा गया था कि जो भी व्यक्ति साधु बन कर अपना कल्याण करना चाहे, इसके दीक्षा-समारोह की सब *व्यवस्था महाराज श्रीकृष्ण की ओर से होगी। यह घोपणा एक वार नही, तीन-*तीन वार की गई थी।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण वासुदेव को जहा नरकगामी वतलाया गया है वहाँ उन्हे तीर्थंकर बन जाने के अनन्तर मोक्षगामी वतला कर परम सम्मान भी प्रदान किया गया है।

मदोन्मत्त यादवकुमारो से प्रताडित द्वैपायन ऋषि ने निदान कर लिया था कि यदि मेरी तपस्या का कोई फल हो तो मैं द्वारका नगरी को जला कर भस्म कर दू। निदानानुसार द्वैपायन ऋषि अग्निकुमार जाति के देव बने। इधर वह पूर्व वैर का स्मरण करके द्वारकादाह का अवसर देख रहा था, परन्तु प्रतिदिन की आयविल तपस्या के प्रभाव के सामने उसका कोई वश नही चलता था। वह द्वारका नगरी को जलाने मे असफल रहा, तथापि उसने प्रयत्न नही छोडा, लगातार बारह वर्षो तक उसका यह प्रयत्न चलता रहा। बारह वर्षों के बाद द्वारका के कुछ लोग सोचने लगे—तपस्या करते-करते वर्षों व्यतीत हो गए हैं, अब अग्निकुमार हमारा क्या विगाड सकता है? इसके अतिरिक्त कुछ लोग यह भी सोच रहे थे कि द्वारका के सभी लोग तो आयविल कर ही रहे है, यदि हम लोग न भी करे तो इससे क्या अन्तर पडता है? समय की बात समझिए कि द्वारका मे एक दिन ऐसा आ गया जब किसी ने भी तप नही किया। व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण सकट-मोचक आचाम्ल तप से सभी विमुख हो गए। अग्निकुमार द्वैपायन ऋषि के लिये इससे बढकर और कौन सा अवसर हो सकता था! उसने द्वारका को आग लगा दी। चारो ओर भयकर शब्द होने लगे, और की आँधी चलने लगी, भूचाल से मकान धराशायी होने लगे, अग्नि ने सारी द्वारका को अपनी लपेट मे ले

लिया । वासुदेव कृष्ण ने आग शान्त करने के अनेको यत्न किए, पर कर्मो का ऐसा प्रकोप चल रहा था कि आग पर डाला जानेवाला पानी तेल का काम कर रहा था । पानी डालने मे आग शान्त होती है, पर उस समय ज्यो-ज्यो पानी डाला जाता था त्यो-त्यो अग्नि और अधिक भटकती थी । अग्नि की भीषण ज्वालाएँ मानो गगन को भी भस्म करने का यत्न कर रही थीं । कृष्ण वासुदेव, वलराम, सब निराश थे, इनके देखते देखते द्वारका जल गई, वे उसे वचा नही सके ।

द्वारका के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वासुदेव और वलराम वहा से जाने की तैयारी करने लगे । इसी बात को सूत्रकार ने "सुरदीवायणकोवनिदड्ढाए" इस पद से अभिव्यक्त किया है ।

"अम्मा-पिइ-नियग-विप्पहूणे"—अम्वापितृ-निजकविप्रहीण —मातृपितृभ्या स्वजनेभ्यश्च विहीन —अर्थात् माता-पिता और अपने सम्वन्धियो से रहित । कथाकारो का कहना है कि जव द्वारका नगरी जल रही थी तव कृष्ण वासुदेव और उनके वडे भाई वलराम दोनो आग वुझाने की चेष्टा कर रहे थे, पर जव ये सफल नही हुए तव अपने महलो मे पहुचे और अपने माता-पिता को बचाने का प्रयत्न करने लगे । वडी कठिनाई से माता-पिता को महल मे से निकालने मे सफल हुए । इनका विचार था कि माता-पिता को रथ पर वैठाकर किसी सुरक्षित जगह पर पहुचा दिया जाए । अपने विचार की पूर्ति के लिये वासुदेव श्रीकृष्ण जव अश्वशाला मे पहुँचे तो देखते हैं, अश्वशाला जलकर नष्ट हो चुकी है । वे वहा से चले, रथशाला मे आए । रथशाला को आग लगी हुई थी, किन्तु एक रथ उन्हे सुरक्षित दिखाई दिया । वे तत्काल उसी को वाहर ले आये, उस पर माता-पिता को वैठाया । घोडो के स्थान पर दोनो भाई जुत गए पर जैसे ही सिहद्वार को पार करने लगे और रथ का जूआ और दोनो भाई द्वार से बाहर निकले ही थे कि तत्काल द्वार का ऊपरी भाग टूट पड़ा और माता-पिता उसी के नीचे दव गए । उनका देहान्त हो गया । वासुदेव कृष्ण तथा वलराम से यह मार्मिक भयकर दृश्य देखा नही गया । वे माता-पिता के वियोग से अधीर हो उठे । जैसे-तैसे उन्होने अपने मन को सभाला, माता पिता तथा अन्य सम्वन्धियो के वियोग से उत्पन्न महान सताप को धैर्यपूर्वक सहन किया । माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियो की इसी विहीनता को सूत्रकार ने "अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे" इस पद मे ससूचित किया है ।

"रामेण बलदेवेण सद्धि"—का अर्थ है—राम वलदेव के साथ । महाराज वसुदेव की एक रानी का नाम रोहिणी था । रोहिणी ने एक पुण्यवान् तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । वह परम अभिराम सुन्दर था इसलिए उसका नाम 'राम" रखा गया । आगे चलकर अत्यन्त वलवान् और पराक्रमी होने के कारण राम के साथ 'वल' विशेपण और जुड गया और वे राम, वलराम, वलभद्र और वल आदि अनेक नामो से प्रसिद्ध हो गये । जैनशास्त्रो के अनुसार वलदेव एक पद विशेप भी है । प्रत्येक वासुदेव के बडे भाई वलदेव कहलाते है, ये स्वर्ग या मोक्षगामी होते है । वलराम नौवे वलदेव थे । वलदेव और वासुदेव का प्रेम अनुपम और अद्वितीय होता है । महाराज कृष्ण के वडे भाई वलदेव राम को ही सूत्रकार ने "रामेण वलदेवेण" इन पदो से व्यक्त किया है ।

"दाहिणबेलाए अभिमुहे जुहिठिल्लपामोक्खाण", "पचण्ह पाडवाण पडुरायपुत्ताण पासं पडुमहुर सपत्थिए" का अर्थ है—दक्षिणसमुद्र के किनारे पाडुराजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पाचो पाडवो के पास पाण्डु मथुरा की ओर चल दिये ।

द्वारका नगरी के दग्ध हो जाने पर कृष्ण वडे चिन्तित थे । उन्होने वलराम से कहा—औरों

को शरण देनेवाला कृष्ण आज किस की शरण मे जाये ? इसके उत्तर मे वलराम कहने लगे—पाण्डवो की आपने सदा सहायता की है, उन्ही के पास चलना ठीक है। उस समय पाण्डव हस्तिनापुर से निर्वासित होकर पाण्डुमथुरा मे रह रहे थे। उनके निर्वासन की कथा ज्ञाताधर्मकथा से जान लेनी चाहिए।

वलराम की वात सुनकर कृष्ण बोले—जिनको सहारा दिया हो, उनसे सहारा लेना लज्जास्पद है, फिर सुभद्रा (अर्जुन की पत्नी) अपनी वहिन है। वहिन के घर रहना भी शोभास्पद नही है।

कृष्ण की तर्क-सगत वात सुनकर वलराम कहने लगे—भाई ! कुन्ती तो अपनी बूआ है, बूआ के घर जाने मे अपमानजनक कोई वात नही।

अन्त मे कृष्ण की अनिच्छा होने पर भी वलराम कृष्ण को साथ लेकर दक्षिण समुद्र के तट पर वसी पाडवो की राजधानी पाण्डुमथुरा की ओर चल दिए। सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र मे जो "दाहिणवेलाए अभिमुहे पाडुमहुर सपत्थिए" ये पद दिये हैं ये उक्त कथानक की ओर ही सकेत कर रहे हैं।

"जराकुमारेण"—का अर्थ है जराकुमार ने। जराकुमार यादववशीय एक राजकुमार था, जो महाराज श्रीकृष्ण का भाई था। भगवान् अरिष्टनेमि ने भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि जराकुमार के वाण मे वासुदेव की मृत्यु होगी। यह जानकर जराकुमार को वडा दु ख हुआ। उसने निश्चय किया कि मै द्वारका छोडकर कोशाम्रवन मे चला जाता हू, वही जीवन के शेप क्षण व्यतीत कर दू गा, इससे श्रीकृष्ण की मृत्यु का कारण वनने से वच जाऊगा। अपने निश्चय के अनुसार वह कोशाम्रवन मे रहने लगा था। पर भवितव्यता कौन टाल सकता था ! द्वारका के जल जाने पर श्रीकृष्ण अपने वडे भाई वलराम के साथ पाण्डुमथुरा जा रहे थे। रास्ते मे कोशाम्रवन आया। महाराज श्रीकृष्ण को प्यास लगी, वलराम पानी लेने चले गये। पीछे श्रीकृष्ण एक वृक्ष के नीचे पीत वस्त्र ओढकर विश्राम करने लगे। उन्होने एक पाव पर दूसरा पाव रखा हुआ था। वासुदेव के पाव मे पद्म का चिह्न होता है। दूर से जैसे मृग की आँख चमकती है ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के पाव मे पद्म-चिह्न चमक रहा था। उधर जराकुमार उसी वन मे भ्रमण कर रहा था। उसे किसी शिकार की खोज थी। जव वह वट वृक्ष के निकट आया तो उसे दूर से ऐसा लगा जैसे कोई मृग वैठा है। उसने तत्काल धनुप पर वाण चढाया, और छोड दिया। वाण लगते ही कृष्ण छटपटा उठे। उन्हे ध्यान आया कि वाण कही जराकुमार का तो नही ? जराकुमार को सामने देखकर उनका विचार सत्य प्रमाणित हुआ। जराकुमार के क्षमा मागने पर वे बोले—

जराकुमार ! तुम्हारा इसमे क्या दोप है ? भवितव्यता ही ऐसी थी। भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी अन्यथा कैसे हो सकती थी? वलराम के आने का समय निकट देखकर कृष्ण वोले—जराकुमार ! तुम यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा वलराम के हाथो से तुम वच नही सकोगे। जिस अधम कार्य से जराकुमार वचना चाहता था, जिस पाप से वचने के लिए उसने द्वारका नगरी को छोड़कर कोशाम्रवन का वास अगीकार किया था, उसी पाप को अपने हाथो से होते देखकर उसका हृदय रो पडा। पर क्या कर सकता था ? श्रीकृष्ण की वेदना उग्र हो गई, साथ ही उनकी शान्ति भग हो गई। कहने लगे—मेरा घातक मेरे हाथो से वचकर निकल गया, मुझे तो उसे समाप्त कर ही देना

चाहिए था। रौद्रध्यान अपने यौवन पर आ गया और उसी रौद्रध्यानपूर्ण स्थिति मे श्रीकृष्ण का देहान्त हो गया।

"तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए"—तृतीयस्या वालुकाप्रभाया पृथिव्या-मुज्ज्वलिते नरके—अर्थात् वालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी के उज्ज्वलित नरक मे।

जैन—दृष्टि से यह जगत् ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक इन तीन लोको मे विभक्त है। अधोलोक मे सात नरक है। अधोलोक के जिन स्थानो मे पैदा होकर जीव अपने पापो का फल भोगते हैं, वे स्थान नरक कहलाते है। ये सात पृथ्वियो मे विभक्त है जिनके नाम है—धम्मा, वमा, शैला, अजना, रिट्ठा, मघा तथा माघवई। इनके—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा ये सात गोत्र है।

शब्दार्थ से सम्बन्ध न रखने वाली सज्ञा को 'नाम' कहते है और शब्दार्थ का ध्यान रख कर किसी वस्तु को जो नाम दिया जाता है वह 'गोत्र' कहलाता है। वालुकाप्रभा तीसरी भूमि है। वालु-रेत अधिक होने से इसका नाम वालुकाप्रभा हे। क्षेत्रस्वभाव से इसमे उष्ण वेदना होती है। यहा की भूमि जलते हुए अगारो से भी अधिक तप्त है।

कृष्ण वासुदेव वालुकाप्रभानामक तीसरी पृथ्वी मे पैदा हुए। उज्ज्वलित शब्द के दो अर्थ होते है—पहला तीसरी भूमि का सातवॉ नरकेन्द्रक-नरकस्थान विशेष और दूसरा भीषण-भयकर। उज्ज्वलित शब्द नरक का विशेषण है।

"उस्सप्पिणीए"—उत्सर्पिण्याम्—अर्थात् उत्सर्पिणीकाल मे। जैन शास्त्रकारो ने काल को दो विभागो मे विभक्त किया है, एक का नाम अवसर्पिणी और दूसरे का उत्सर्पिणी है। जिस काल मे जीवो के सहनन (अस्थियो की रचनाविशेष), सस्थान, क्रमश हीन होते चले जाए, आयु और अवगहना घटती चली जाए, वह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। इस काल मे पुद्गलो के वर्ण, गध, रस और स्पर्श हीन होते चले जाते है। शुभ भाव घटते हैं, अशुभ भाव वढते है। यह काल दस कोडा-कोडी सागरोपम का है।

इसके विपरीत जिस काल मे जीवो के सहनन आदि क्रमश अधिकाधिक शुभ होते चले जाते हैं, आयु और अवगाहना वढती जाती है, वह उत्सर्पिणी काल है। पुद्गलो के वर्ण, गध, रस और स्पर्श भी इस काल मे क्रमश शुभ होते जाते हैं। यह काल भी दस कोडा-कोडी सागरोपम का है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—कृष्ण ! आने वाले उत्सर्पिणीकाल मे पुण्ड्र देश के शतद्वार नगर मे अमम नाम के बारहवे तीर्थंकर होओगे।

प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद मे भारतवर्ष मे साढे २५ देशो को आर्य माना गया है। आर्य देश मे ही अरिहन्त, चक्रवर्ती, वलदेव और वासुदेव की उत्पत्ति वताई गई है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन साढे २५ देशो के नाम शास्त्रो मे वतलाए गए है उनमे पुण्ड्र देश का नाम देखने को नही मिलता, ऐसी दशा मे उसको आर्यदेश कैसे कह सकते है ? भगवान् अरिष्टनेमि के कथना-नुसार वहाँ कृष्ण वासुदेव वारहवे तीर्थंकर वनेंगे, तो पुण्ड्र देश को अनार्य भी नही कह सकते। यदि तीर्थकर की उत्पत्ति होने से उसे आर्य देश मानें तो फिर साढे २५ की गणना असगत हो जाती है।

यह पूर्वापर का विरोध सगति चाहता है। उत्तर मे निवेदन है कि जहा पर तीर्थंकर आदि महापुरुपो का जन्म होता है, वे देश आर्य है, यह सिद्धान्त युक्तियुक्त और शास्त्रसम्मत है। रही वात साढे २५ देशो की गणना की, वह भगवान् महावीर स्वामी के समय की अपेक्षा से की गई प्रतीत होती है। अत पुण्ड्र देश को आर्य देश मानने मे किसी प्रकार का विरोध दिखाई नही देता।

"अरहा" शव्द भगवान् अरिष्टनेमि की सामान्य अर्थ से सर्वज्ञता का सूचक है तथा विशेष अर्थ मे तीर्थंकरत्व का द्योतक है। "रह" अर्थात् रहस्य, गुप्तता आदि रह जिनमे नही है वे 'अरहा' अर्थात् जगत का कोई भी रहस्य जिनसे गुप्त नही है वे 'अरहा' है। अर्ह का अर्थ है—योग्य होना और पूजित होना। घातिकर्मो का अन्त करने से उन्हे अरिहन्त भी कहते है।

"अप्फोडेड, अप्फोडइत्ता वग्गड, वग्गइत्ता तिव्रति छिदइ, छिदित्ता सीहनाय करेइ' —

अर्थात् इस पाठ से सूत्रकार ने चार वाते ध्वनित की है। महाराज कृष्ण भविष्य मे वारहवे तीर्थंकर वनने की शुभ वार्ता सुनकर आनन्दविभोर हो उठते है। अपनी अनेकविध चेष्टाओ द्वारा अपने आन्तरिक हर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी ये चेष्टाएँ चार भागो मे विभाजित की गई है— (१) भविष्य मे तीर्थंकर जैसे महान् आध्यात्मिक पद को प्राप्त करू गा, यह सुनकर श्रीकृष्ण प्रमुदित होकर अपनी भुजाए फडकाते हैं। उनके अगो मे स्फुरणा आरम्भ हो जाती है। (२) श्रीकृष्ण उच्च स्वर मे प्रसन्नता प्रकट करने वाले शव्दो का उच्चारण करते है। (३) पहलवानो की तरह भूमि पर तीन वार पैंतरे वदलते हे या भगवान् के समवसरण मे तीन वार उछलते है। (४) शेर की तरह गर्जना करते हैं।

६—तए ण सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियया अरहं अरिट्ठणेमि वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

"सद्दहामि णं भते ! निग्गथ पावयण से जहेय तुब्भे वयह। ज नवर —देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेव आपुच्छामि। तए ण अह देवाणुप्पियाण अतिए मुंडा जाव[2] पव्वयामि।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंध करेहि।'

तए ण सा पउमावई देवी धम्मिय जाणप्पवर दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव [परिग्गहिय दसणह सिरसावत्तं मत्थए अजलि] कट्टु कण्ह वासुदेव एव वयासी—

इच्छामि ण देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अतिए मुंडा जाव[3] पव्वइत्तए।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिवधं करेहि।

तए ण से कण्हे वासुदेवे कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए महत्थ निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह। तए ण ते जाव पच्चप्पिणति।

---

१ तृतीय वर्ग, सूत्र ७ २-३ पचम वर्ग, सूत्र २

इसके बाद वह पद्मावती महारानी भगवान् अरिष्टनेमि से धर्मोपदेश सुनकर एव उसे हृदय मे धारण करके प्रसन्न और सन्तुष्ट हुई, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। यावत् वह अरिहत नेमिनाथ को वदना-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—

भते ! निर्ग्रन्थप्रवचन पर मैं श्रद्धा करती हू। जैसा आप कहते है वह वैसा ही है। आपका धर्मोपदेश यथार्थ है। हे भगवन् ! मै कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर फिर देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हू।

प्रभु ने कहा—'जैसे तुम्हे सुख हो वैसा करो। हे देवानुप्रिये ! धर्म-कार्य मे विलम्ब मत करो।'

नेमिनाथ प्रभु के ऐसा कहने के बाद पद्मावती देवी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ होकर द्वारका नगरी मे अपने प्रासाद मे आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और जहा पर कृष्ण वासुदेव थे वहा आकर अपने दोनो हाथ जोडकर सिर झुकाकर, मस्तक पर अजलि कर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोली—

'देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं अरिहत नेमिनाथ के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हू।'

कृष्ण ने कहा—'देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हे सुख हो वैसा करो।'

तब कृष्ण वासुदेव ने अपने आज्ञाकारी पुरुपो को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही महारानी पद्मावती के दीक्षामहोत्सव की विशाल तैयारी करो, और तैयारी हो जाने की मुझे सूचना दो। तव आज्ञाकारी पुरुषो ने वैसा ही किया और दीक्षा-महोत्सव की तैयारी की सूचना दी।

७—तए ण से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहेइ, अट्ठसएणं सोवण्णकलसाणं जाव [एवं रुप्पकलसाणं, सुवण्णरुप्पकलसाणं, मणिकलसाणं, सुवन्नमणिकलसाणं, रुप्पमणिकलसाणं, सुवन्न-रुप्पमणिकलसाणं, भोमेज्जकलसाणं सव्वोदएहिं, सव्वमट्टियाहिं सव्वपुप्फेहिं सव्वगंधेहिं सव्वमल्लेहिं सव्वोसहिहि य, सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं जाव [सव्वसमुदएणं सव्वादरेण सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेण सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेण महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमगसमगप्पवाइएण संख-पणव-पडह-मेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दु दुभिघोसरवेणं महया महया] महाणिक्खमणाभिसेएण अभिसिचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिबियं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ "पउमावइं देविं" सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणाभिरामा जाव [जीवियऊसासा हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए] किमंग पुण पासणयाए ? तण्णं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामि। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं।

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवधं करेह ।'

इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पट्ट पर बिठाया और एक सौ आठ सुवर्ण-कलशो से, [एक सौ आठ रजत-कलशो से, एक सौ आठ सुवर्ण-रजतमय कलशो से, एक सौ आठ मणिमय कलशो, एक सौ आठ स्वर्ण-मणि के कलशो, एक सौ आठ रजत-मणि के कलशो, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणि के कलशो और एक सौ आठ मिट्टी के कलशो से— इस प्रकार आठ सौ चौसठ कलशो मे सव प्रकार का जल भर कर तथा सव प्रकार की मृत्तिका से, सव प्रकार के पुष्पो से, सव प्रकार के गधो से, सव प्रकार की मालाओ से, सव प्रकार की औषधियो से तथा सरसो से उन्हे परिपूर्ण करके, सर्वसमृद्धि, द्यु ति तथा सर्व सैन्य के साथ, दु दुभि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दो के साथ उच्चकोटि के] निष्क्रमणाभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके फिर सभी प्रकार के अलकारो से विभूषित करके हजार पुरुषो द्वारा उठायी जाने वाली शिविका (पालखी) मे बिठाकर द्वारका नगरी के मध्य से होते हुए निकले और जहा रैवतक पर्वत और सहस्राम्रवन उद्यान था उस ओर चले। वहा पहुँच कर पद्मावती देवी शिविका से उतरी। तदनन्तर कृष्ण वासुदेव जहा अरिष्टनेमि भगवान् थे वहा आये, आकर भगवान् को दक्षिण तरफ से तीन वार प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार किया, वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार वोले—

"भगवन् ! यह पद्मावती देवी मेरी पटरानी है। यह मेरे लिये इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और मन के अनुकूल चलने वाली है, अभिराम है। भगवन् ! यह मेरे जीवन मे श्वासोच्छ्-वास के समान है, मेरे हृदय को आनन्द देने वाली है। इस प्रकार का स्त्री-रत्न उदुम्वर (गूलर) के पुष्प के समान सुनने के लिये भी दुर्लभ है, तव देखने की तो वात ही क्या है ? हे देवानुप्रिय ! मैं ऐसी अपनी प्रिय पत्नी की भिक्षा शिष्या रूप मे आपको देता हू। आप उसे स्वीकार करें।"

कृष्ण वासुदेव की प्रार्थना सुनकर प्रभु वोले—'देवानुप्रिय ! तुम्हे जिस प्रकार सुख हो वैसा करो।'

८—तए ण सा पउमावई उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता, सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुयित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते जाव[1] तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं धम्ममाइक्खियं।

तए ण अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ पव्वावेत्ता सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणित्ताए दलयइ। तए ण सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयमेव जाव[2] संजमियव्वं। तए णं सा पउमावई अज्जा जाया। इरियासमिया जाव [भासासमिया एसणासमिया आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिया उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिया मण-समिया वइसमिया कायसमिया मणगुत्ता वइगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया] गुत्तबंभयारिणी।

तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एकारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

१-२ वर्ग ५, सूत्र ८

तए ण सा पउमावई अज्जा वहुपडिपुण्णाइ वीस वासाइ सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव [मु डभावे, केसलोए, बंभचेरवासे, अण्हाणग, अच्छत्तय अणुवाहणयं भूमिसेज्जाओ, फलगसेज्जाओ, परघरप्पवेसे, लद्धावलद्धाइ माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिंसणाओ, तालणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा वावीसं परीसहोवसग्गा-गामकंटगा अहियासिज्जंति] तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा ।

तव उस पद्मावती देवी ने ईशान-कोण मे जाकर स्वय अपने हाथो से अपने शरीर पर धारण किए हुए सभी आभूषण एव अलकार उतारे और स्वय ही अपने केशो का पचमुष्टिक लोच किया। फिर भगवान् नेमिनाथ के पास आकर वन्दना की। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन्! यह ससार जन्म, जरा, मरण आदि दुख रूपी आग मे जल रहा है। यावत् मुझे दीक्षा दे।"

इसके वाद भगवान् नेमिनाथ ने पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रज्या दी, और स्वय ही यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप मे प्रदान की। तव यक्षिणी आर्या ने पद्मावती को धर्मशिक्षा दी, यावत् इस प्रकार सयमपूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिए। तव वह पद्मावती आर्या ईर्यासमिति, [भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिघाण-परिष्ठापनिका समिति, मन समिति, वचनसमिति, काय-समिति इन आठ समितियो और मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायागुप्ति से सम्पन्न, इन्द्रियो का गोपन करने वाली गुप्तेन्द्रिया—कछुए की भान्ति इन्द्रियो को वश मे करने वाली] ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई।

तदनन्तर उस पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या से सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया, वहुत से उपवास—वेले-तेले-चोले-पचोले-मास और अर्धमास-खमण आदि विविध तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस तरह पद्मावती आर्या ने पूरे वीस वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन किया और अन्त मे एक मास की सलेखना से आत्मा को भावित कर, साठ भक्त अनशन पूर्ण कर, जिस अर्थ-प्रयोजन के लिये नग्नभाव, [मुण्डभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यवास, अस्नानक, अछत्रक अनुपाहनक, भूमिशय्या, फलकशय्या, परगृहप्रवेश, लाभालाभ, मानापमान, हीलना, अवहेलना, निन्दा, खिसना, ताडना, गर्हा, विविध प्रकार के ऊचे-नीचे २२ परिपह तथा उपसर्ग सहन किये जाते है उस अर्थ का आराधन कर अन्तिम श्वास से सिद्ध-वुद्ध-मुक्त हो गई।

२—८ अध्ययन

गौरी आदि

९—तेणं कालेण तेणं समएणं वारवई नयरी। रेवयए पव्वए। उज्जाणे नंदणवणे। तत्थ णं वारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ। अरहा समोसढे। कण्हे णिग्गए। गोरी जहा पउमावई तहा निग्गया। धम्मकहा। परिसा पडिगया। कण्हे वि। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खंता जाव[1] सिद्धा।

1. वर्ग ५, सूत्र ५, ६

एव गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जम्बवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, अट्ठवि पउमावईसरिसयाओ, अट्ठ अज्झयणा ।

उस काल और उस समय मे द्वारका नगरी थी। उसके समीप रैवतक नाम का पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था। द्वारका नगरी मे श्रीकृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उन कृष्ण वासुदेव की गौरी नाम की महारानी थी, औपपातिक सूत्र के अनुसार रानी का वर्णन जान लेना चाहिए। एक समय उस नन्दनवन उद्यान मे भगवान् अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण वासुदेव भगवान् के दर्शन करने के लिए गये। जन-परिषद् भी गई। परिषद् लौट गई। कृष्ण वासुदेव भी अपने राज-भवन मे लौट गये। तत्पश्चात् गौरी देवी पद्मावती रानी की तरह दीक्षित हुई यावत् सिद्ध हो गई।

इसी तरह (३) गाधारी, (४) लक्ष्मणा, (५) सुसीमा, (६) जाम्बवती, (७) सत्यभामा, और (८) रुक्मिणी के भी छह अध्ययन पद्मावती के समान ही समझने चाहिए।

९–१० अध्ययन

मूलश्री-मूलदत्ता

१०—तेण कालेण तेण समएण बारवईए नयरीए रेवयए पव्वए, नदणवणे उज्जाणे, कण्हे वासुदेवे। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते जबवईए देवीए अत्तए सबे नाम कुमारे होत्था-अहीणपडिपुण्णपचिंदियसरीरे। तस्स ण सवस्स कुमारस्स मूलसिरी नाम भज्जा वि निग्गया, जहा पउमावई। ज नवर—देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेव आपुच्छामि जाव[1] सिद्धा।

एव मूलदत्ता वि।

उस काल उस समय मे द्वारका नगरी के पास रैवतक नाम का पर्वत था, जहा एक नन्दन वन उद्यान था। वहा कृष्ण-वासुदेव राज्य करते थे। कृष्ण वासुदेव के पुत्र और रानी जाम्बवती देवी के आत्मज शाम्ब नाम के कुमार थे जो सर्वांग सुन्दर थे। उन शाम्ब कुमार की मूलश्री नाम की भार्या थी। अत्यन्त सुन्दर एव कोमलागी थी। एक समय अरिष्टनेमि वहा पधारे। कृष्ण वासुदेव उनके दर्शनार्थ गये। मूलश्री देवी भी पद्मावती के समान प्रभु के दर्शनार्थ गई। विशेष मे बोली—"हे देवानुप्रिय! कृष्ण वासुदेव से पूछती हूँ (पूछकर दीक्षित हुई) यावत् सिद्ध हो गई।

मूलश्री के ही समान मूलदत्ता का भी सारा वृत्तान्त जानना चाहिये। (यह शाम्ब कुमार की दूसरी रानी थी)।

---

१ वर्ग ५, सूत्र ४-६.

छट्ठो वग्गो–षष्ठ वर्ग

१–२ अध्ययन

मकाई और किंकम

१—जइ ण भते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अतगडदसाणं पंचमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी गाहा

(१) मकाइ (२) किंकमे चेव, (३) मोग्गरपाणी य (४) कासवे।
(५) खेमए (६) धिइहरे, चेव (७) केलासे (८) हरिचंदणे ।।१।।

(९) वारत्त (१०) सुदंसण (११) पुण्णभद्द तह (१२) सुमणभद्द (१३) सुपइट्ठे ।
(१४) मेहे (१५) अइमुत्त (१६) अलक्के, अज्झयणाणं तु सोलसयं ।।२।।

जइ सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएण रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। तत्थ णं मकाई नामं गाहावई परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे गुणसिलए जाव [चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता सजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ। परिसा निग्गया। तए णं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए। लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए निक्खते जाव[2] अणगारे जाए-इरियासमिए जाव[3] गुत्तबंभयारी।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। सेसं जहा खंदयस्स गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ। तहेव विउले सिद्धे।

किंकमे वि एवं चेव जाव[4] विउले सिद्धे।

---

१ वर्ग ३, सूत्र १

२-३ वर्ग १, सूत्र १८.

४ इसी सूत्र के उपरोक्त वर्णनानुसार।

आर्य जम्बूस्वामी ने सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अग अतगड दशा के पचम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया, तो प्रभो ! श्रमण भगवान् महावीर ने छठे वर्ग के क्या भाव कहे है ? इसके उत्तर मे सुधर्मा स्वामी वोले—'हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अग अतगड दशा के छठे वर्ग के सोलह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१) मकाई, (२) किंकम, (३) मुद्गरपाणि, (४) काश्यप, (५) क्षेमक, (६) धृतिधर, (७) कैलाश, (८) हरिचन्दन, (९) वारत्त, (१०) सुदर्शन, (११) पुण्यभद्र, (१२) सुमनभद्र, (१३) सुप्रतिष्ठित, (१४) मेघकुमार, (१५) अतिमुक्त कुमार और (१५) अलक्क (अलक्ष्य) कुमार।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से कहा—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर ने छट्ठे वर्ग के १६ अध्ययन कहे है तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल उस समय मे राजगृहनामक नगर था। वहा गुणशीलनामक चैत्य-उद्यान था। उस नगर मे श्रेणिक राजा राज्य करते थे। वहा मकाई नामक गाथापति रहता था, जो अत्यन्त समृद्ध यावत् अपरिभूत था।

उस काल उस समय मे धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर गुणशील उद्यान मे [साधुवृत्ति के अनुकूल अवग्रह उपलब्ध कर, सयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए] पधारे। प्रभु महावीर का आगमन सुनकर परिषद् दर्शनार्थ एव धर्मोपदेश-श्रवणार्थ आई। मकाई गाथापति भी भगवतीसूत्र मे वर्णित गगदत्त के वर्णनानुसार अपने घर से निकला। धर्मोपदेश सुनकर वह विरक्त हो गया। घर आकर ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौपा और स्वय हजार पुरुषो से उठाई जाने वाली शिविका (पालखी) मे वैठकर श्रमणदीक्षा अगीकार करने हेतु भगवान् की सेवा मे आया। यावत् वह अनगार हो गया। ईर्या आदि समितियो से युक्त एव गुप्तियो से गुप्त ब्रह्मचारी वन गया।

इसके वाद मकाई मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के गुणसपन्न तथा वेषसम्पन्न स्थविरो के पास सामायिक आदि ग्यारह अगो का अध्ययन किया और स्कदकजी के समान गुणरत्नसवत्सर तप का आराधन किया। सोलह वर्ष तक दीक्षापर्याय मे रहे। अन्त मे विपुलगिरि पर्वत पर स्कन्दकजी के समान ही सथारादि करके सिद्ध हो गये।

किंकम भी मकाई के समान ही दीक्षा लेकर विपुलाचल पर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए।

तृतीय अध्ययन

मुद्गरपाणि

अर्जुन मालाकार

२—तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे। गुणसीलए चेइए। सेणिए राया। चेलणा देवी। तत्थ ण रायगिहे नयरे अज्जुणए नाम मालागारे परिवसइ-अड्ढे जाव[1] अपरिभूए। तस्स णं अज्जुणयस्स मालायारस्स बधुमई नाम भारिया होत्था-सूमालपाणिपाया। तस्स ण अज्जुणयस्स मालायारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया, एत्थ ण मह एगे पुप्फारामे होत्था-किण्हे जाव [किण्होभासे, नीले नीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे, किण्हे किण्हच्छाए, नीले नीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए, घण-कडिय-कडिच्छाए रम्मे महामेह] निउरबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तस्स ण पुप्फारामस्स अदूरसामते, एत्थ ण अज्जुणयस्स मालायारस्स अज्जय-पज्जय-पिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिम-परपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था-पोराणे दिव्वे सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ ण मोग्गरपाणिस्स पडिमा एग महं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमय मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

तए ण से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइ चेव मोग्गरपाणि-जक्खभत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लि पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करेत्ता अग्गाइ वराइं पुप्फाइं गहाय, जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चण करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिए पणाम करेइ, तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्ति कप्पेमाणे विहरइ।

उस काल उस समय मे राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुणशीलकनामक उद्यान था। उस नगर मे राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चेलना था। उस राजगृह नगर मे 'अर्जुन' नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'वन्धुमती' था, जो अत्यन्त सुन्दर एव सुकुमार थी। उस अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक वडा पुष्पाराम (फूलो का वगीचा) था। वह पुष्पोद्यान कही कृष्ण वर्ण का था, [श्याम कान्तिवाला था, कही मोर के गले की तरह नील एव नील कान्तिवाला था, कही हरित एव हरित कान्तिवाला था। स्पर्श की दृष्टि से कही शीत और शीत कान्तिवाला, कही स्निग्ध एव स्निग्ध कान्तिवाला, वर्णादि गुणो की अधिकता के कारण तीव्र एव तीव्र छायावाला, शाखाओ के आपस मे सघन मिलने से गहरी छायावाला, रम्य तथा महामेघो के] समुदाय की तरह प्रतीत हो रहा था। उसमे पाचो वर्णो के फूल खिले हुए थे। वह वगीचा इस भाति हृदय को प्रसन्न एव प्रफुल्लित करने वाला अतिशय दर्शनीय था।

उस पुष्पाराम अर्थात् फूलवाडी के समीप ही मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन था, जो उस अर्जुनमाली के पुरखाओ—बाप-दादो से चली आई कुलपरपरा से सम्वन्धित था। वह 'पूर्णभद्र' चैतन्य के समान पुराना, दिव्य एव सत्य प्रभाव वाला था। उसमे 'मुद्गरपाणि' नामक यक्ष की एक प्रतिमा थी, जिसके हाथ मे एक हजार पल-परिमाण (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग ६२।। सेर तदनुसार लगभग ५७ किलो) भारवाला लोहे का एक मुद्गर था।

---

१. वर्ग ३, सूत्र १

वह अर्जुनमाली बचपन से ही मुद्गरपाणि यक्ष का उपासक था। प्रतिदिन बास की छबडी लेकर वह राजगृह नगर के बाहर स्थित अपनी उस फूलवाडी मे जाता था और फूलो को चुन-चुन कर एकत्रित करता था। फिर उन फूलो मे से उत्तम-उत्तम फूलो को छाटकर उन्हे उस मुद्गरपाणि यक्ष के समक्ष चढाता था। इस प्रकार वह उत्तमोत्तम फूलो से उस यक्ष की पूजा-अर्चना करता और भूमि पर दोनो घुटने टेककर उसे प्रणाम करता। इसके बाद राजमार्ग के किनारे बाजार मे बैठकर उन फूलो को बेचकर अपनी आजीविका उपार्जन किया करता था।

विवेचन—इस सूत्र मे छट्ठे वर्ग के तृतीय अध्ययन का कथानक प्रारभ होता है। इस अध्ययन का नाम है "मोग्गरपाणी।" वस्तुत इस अध्ययन का पात्र है अर्जुनमाली। मुद्गरपाणि एक यक्ष है जो अपने सेवक अर्जुनमाली के जीवन मे एक बहुत बडा तूफान लाता है। परन्तु उसी नगर के निवासी सुदर्शन नाम के एक श्रावक के सम्पर्क मे तूफान शात होता है। इस अध्याय मे वर्णित यक्ष का नाम मुद्गरपाणि इस कारण है कि उसके पाणि अर्थात् हाथ मे मुद्गर नाम का एक अस्त्र विशेष था। इसी कारण वह इस नाम से प्रसिद्ध था।

मुद्गरपाणि का वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते है—"पलसहस्सणिप्पण्ण"—अर्थात् जिसका निर्माण हजार पलो से किया गया है। पल शब्द का अर्थ इस प्रकार है—दो कर्ष प्रमाण (कर्ष १० मासे का होता है)। कर्षाभ्या पल प्रोक्त, कर्प स्याद्दशमापक। (शार्ङ्गधर सहिता)। इस प्रकार २० मासे का एक पल होता है। अन्य कोपो मे लिखा है—पल अर्थात् एक बहुत छोटी तोल, चार तोला (प्राकृतशब्दमहार्णव-पाइयसद्दमहण्णवो)। एक तोल (मान विशेष-अर्द्धमागधी कोष) अस्तु चार तोले का यदि एक पल माना जाय तो यक्ष के हाथ मे १ मन १० सेर का विशाल मुद्गर था। अन्य प्रकार से इसकी व्याख्या यो है—आज कल के पाच रुपयो के भार बराबर एक पल होता है, १६ पलो का एक सेर होता है, इस तरह १००० पल के साढे बासठ (६२॥) सेर होते है। इन से बने हुए को 'पलसहस्र-निष्पन्न' कहते हैं।

'पच्छिपिडगाड' इस पद मे 'पच्छि' और 'पिटक' ये दो शब्द है। पच्छी देशीय भाषा का शब्द है जो छोटी टोकरी के लिये प्रयुक्त होता है। पिटक शब्द भी पिटारी का बोधक है। दो समानार्थक पदो का प्रयोग अनेकविध पिटारियो अर्थात् टोकरियो का बोधक है। भाव यह है कि अर्जुनमाली अनेक प्रकार की टोकरियाँ लेकर पुष्पवाटिका मे जाया करता था।

गोष्ठिक पुरुषो का अनाचार

३—तत्थ ण रायगिहे नयरे ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ-अड्ढा जाव अपरिभूया जकयसुकया यावि होत्था।

तए ण रायगिहे नयरे अण्णया कयाइ पमोदे घुट्ठे यावि होत्था। तए ण से अज्जुणए मालागारे कल्ल पभूयतराएहि पुप्फेहि कज्ज इति कट्टु पच्चूसकालसमयसि बधुमईए भारियाए सद्धि पच्छिपिडयाइ गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फच्चयं करेइ। तए ण तीसे ललियाए गोट्ठीए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति।

उस राजगृह नगर मे 'ललिता' नाम की एक गोष्ठी (मित्रमडली) थी। वह (उसके सदस्य) धन-धान्यादि से सम्पन्न थी तथा वह बहुतो से भी पराभव को प्राप्त नही हो पाती थी। किसी समय राजा का कोई अभीष्ट-कार्य सपादन करने के कारण राजा ने उस मित्र-मडली पर प्रसन्न होकर अभयदान दे दिया था कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य करने मे स्वतन्त्र है। राज्य की ओर से उसे पूरा सरक्षण था, इस कारण यह गोष्ठी बहुत उच्छृ खल और स्वच्छन्द बन गई।

एक दिन राजगृह नगर मे एक उत्सव मनाने की घोषणा हुई। इस पर अर्जुनमाली ने अनुमान किया कि कल इस उत्सव के अवसर पर बहुत अधिक फूलो की माग होगी। इसलिये उस दिन वह प्रात काल मे जल्दी ही उठा और बास की छबडी लेकर अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ जल्दी घर से निकला। निकलकर नगर मे होता हुआ अपनी फुलवाडी मे पहुचा और अपनी पत्नी के साथ फूलो को चुन-चुन कर एकत्रित करने लगा। उस समय पूर्वोक्त "ललिता" गोष्ठी के छह गोष्ठिक पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन मे आकर आमोद-प्रमोद करने लगे।

४—तए ण अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चयं करेइ, (पत्थियं भरेइ), भरेत्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ। तए ण ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणय मालागार बधुमईए भारियाए सद्धि एज्जमाण पासंति, पासित्ता अण्णमण्णं एव वयासी—

"एस ण देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि इहं हव्वमागच्छइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं अज्जुणयं मालागार अवओडय-बंधणय करेत्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए," त्ति कट्टु, एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कवाडतरेसु निलुक्कंति, निच्चला, निप्फंदा, तुसिणीया, पच्छण्णा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बधुमईए भारियाए सद्धि जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, आलोए पणाम करेइ, महरिह पुप्फच्चण करेइ, जण्णुपायपडिए पणाम करेइ। तए णं छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडतरेहितो निग्गच्छति निग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागार गेण्हति, गेण्हित्ता अवओडय-बधणं करेंति। बंधुमईए मालागारीए सद्धि विउलाइ भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

उधर अर्जुनमाली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ फूल-सग्रह करके उनमे से कुछ उत्तम फूल छाटकर उनसे नित्य-नियम के अनुसार मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करने के लिये यक्षायतन की ओर चला। उन छह गोष्ठिक पुरुषो ने अर्जुनमाली को बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन की ओर आते देखा। देखकर परस्पर विचार करके निश्चय किया—"अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ इधर ही आ रहा है। हम लोगो के लिये यह उत्तम अवसर है कि अर्जुनमाली को तो औंधी मुश्कियो (दोनो हाथो को पीठ पीछे) से बलपूर्वक बाधकर एक ओर पटक दे और बन्धुमती के साथ खूब काम क्रीडा करे।" यह निश्चय करके वे छहो उस यक्षायतन के किवाडो के पीछे छिप कर निश्चल खडे हो गये और उन दोनो के यक्षायतन के भीतर प्रविष्ट होने की श्वास रोककर प्रतीक्षा करने लगे। इधर अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन मे प्रविष्ट हुआ और यक्ष पर दृष्टि पडते ही उसे प्रणाम किया। फिर चुने हुए उत्तमोत्तम फूल उस पर चढाकर दोनो घुटने भूमि पर टेककर प्रणाम किया। उसी समय शीघ्रता से उन छह गोष्ठिक पुरुषो ने किवाडो के पीछे से निकल

कर अर्जुनमाली को पकड लिया और उसकी औंधी मुश्के बाधकर उसे एक ओर पटक दिया । फिर उसकी पत्नी बन्धुमती मालिन के साथ विविधप्रकार से कामक्रीडा करने लगे ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे बताया है कि उन गोष्ठिक पुरुषो ने अर्जुनमाली को अवकोटक बन्धन से बाँधा, जिसका अर्थ होता है—गले मे रस्सी डालकर उसे पीछे मोडना तथा दोनो भुजाओ को पीठ के पीछे ले जाकर बाँधना । जनसाधारण की भाषा मे इसे मुश्के बाँधना कहते हैं ।

निच्चला पच्छण्णा—का अर्थ इस प्रकार है—निच्चला-निश्चल-शरीर के व्यापार से रहित । निप्फदा-निष्पद-कम्पन से भी रहित । तुसिणीया-तूष्णीक-मौन । पच्छण्णा-प्रच्छन्न-छिपे हुए ।

अर्जुन का प्रतिशोध

५—तए ण तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं खलु अह बालप्पभिइ चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव[1] पुप्फच्चणं करेमि, जण्णुपायपडिए पणामं करेमि तओ पच्छा रायमग्गसि वित्ति कप्पेमाणे विहरामि । त जइ णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए होते, से ण किं मम एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासंते ? त नत्थि णं मोग्गरपाणी जक्खे इह सण्णिहिए । सुव्वत्तं ण एस कट्ठे । तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणेत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरय अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बधाइं छिंदइ, छिंदित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गेण्हइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ ।

तए णं से अज्जुणए मलागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लि इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे घाएमाणे विहरइ ।

यह देखकर अर्जुनमाली के मन मे यह विचार आया—"मै अपने बचपन से ही भगवान् मुद्गरपाणि को अपना इष्टदेव मानकर इसकी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पूजा करता आ रहा हू । इसकी पूजा करने के बाद ही इन फूलो को बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करता हू । तो यदि मुद्गरपाणि यक्ष देव यहा वास्तव मे ही होता तो क्या मुझे इस प्रकार विपत्ति मे पडा देखता रहता ? अत. निश्चय होता है कि वास्तव मे यहा मुद्गरपाणि यक्ष नही है । यह तो मात्र काष्ठ का पुतला है । तब मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के इस प्रकार के मनोगत भावो को जानकर उसके शरीर मे प्रवेश किया और उसके बन्धनो को तडातड तोड डाला । तब उस मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट अर्जुनमाली ने लोहमय मुद्गर को हाथ मे लेकर अपनी बन्धुमती भार्या सहित उन छहो गोष्ठिक पुरुषो को उस मुद्गर के प्रहार से मार डाला ।

इस प्रकार इन सातो का घात करके मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट (वशीभूत) वह अर्जुनमाली राजगृह नगर की बाहरी सीमा के आसपास चारो ओर छह पुरुषो और एक स्त्री, इस प्रकार सात मनुष्यो की प्रतिदिन हत्या करते हुए घूमने लगा ।

राजगृह नगर मे आतक

६—तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव [तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह] महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासेइ एव पण्णवेइ एवं परूवेइ—

१. वर्ग ६ सूत्र २

'एव खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे नयरे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ ।'

तए ण से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे जाव[1] घाएमाणे घाएमाणे विहरइ । तं मा णं तुब्भे केइ कट्ठस्स वा तणस्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाण वा अट्ठाए सइरं निग्गच्छह । मा ण तस्स सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु दोच्च पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसेत्ता खिप्पामेव ममेय पच्चप्पिणह । तए णं से कोडु बियपुरिसा जाव[2] पच्चप्पिणंति ।

उस समय राजगृह नगर के शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मु ख राजमार्ग आदि सभी स्थानो मे बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार बोलने लगे—

"देवानुप्रियो ! अर्जु नमाली, मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर राजगृह नगर के बाहर एक स्त्री और छह पुरुष, इस प्रकार सात व्यक्तियो को प्रतिदिन मार रहा है ।"

उस समय जब श्रे णिक राजा ने यह बात सुनी तो उन्होने अपने सेवक पुरुषो को बुलाया और उनको इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! राजगृह नगर के बाहर अर्जु नमाली यावत् छह पुरुषो और एक स्त्री—इस प्रकार सात व्यक्तियो का प्रतिदिन घात करता हुआ घूम रहा है । अत तुम सारे नगर मे मेरी आज्ञा को इस प्रकार प्रसारित करो कि कोई भी घास के लिये, काष्ठ, पानी अथवा फल-फूल आदि के लिये राजगृह नगर के बाहर न निकले । ऐसा न हो कि उनके शरीर का विनाश हो जाय । हे देवानुप्रियो ! इस प्रकार दो तीन बार घोषणा करके मुझे सूचित करो ।' यह राजाज्ञा पाकर राजसेवको ने राजगृह नगर मे घूम घूम कर राजाज्ञा की घोषणा की और घोषणा करके राजा को सूचित कर दिया ।

श्रावक सुदर्शन श्रेष्ठी

७—तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदसणे नामं सेट्ठी परिवसइ-अड्ढे० । तए णं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था-अभिगयजीवाजीवे जाव [उवलद्धपुण्णपावे, आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिगरण-बंध-मोक्खकुसले, असहेज्जदेवा-सुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं णिग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिजपेमाणुरागरत्ते । अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, उसियफलिहे अवंगुयदुवारे, चियत्तंतेउरपरघरदारप्पवेसे, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोपवासेहिं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ—पुण्णमासिणीसु पडिपुण्ण पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणे अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ ।

१-२ देखिए ऊपर प्रस्तुत सूत्र ।

उस राजगृह नगर मे सुदर्शन नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे। वे श्रमणोपासक—श्रावक थे और जीव-अजीव के अतिरिक्त [पुण्य और पाप के स्वरूप को भी जानते थे। इसी प्रकार आस्रव सवर निर्जरा क्रिया (कर्मवध की कारणभूत पच्चीस प्रकार की क्रियाओ), अधिकरण (कर्मवध का साधन-शस्त्र) तथा वध और मोक्ष के स्वरूप के ज्ञाता थे। किसी भी कार्य मे वे दूसरो की सहायता की अपेक्षा नही रखते थे। निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे इतने दृढ थे कि देव, असुर, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किपुरुप गरुड, गधर्व, महोरगादि देवता भी उन्हे निर्ग्रन्थ-प्रवचन से विचलित नही कर सकते थे। उन्हे निर्ग्रन्थप्रवचन मे शका, काक्षा और विचिकित्सा (फल मे सन्देह) नही थी। उन्होने शास्त्र के परमार्थ को समझ लिया था। वे शास्त्र का अर्थ—रहस्य निश्चित रूप से धारण किए हुए थे। उन्होने शास्त्र के सन्देह-जनक स्थलो को पूछ लिया था, उनका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उनका विशेष रूप से निर्णय कर लिया था। उनकी हड्डियाँ और मज्जा सर्वज्ञ देव के अनुराग से अनुरक्त हो रही थी। निर्ग्रन्थप्रवचन पर उनका अटूट प्रेम था। उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि—आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही सत्य है, परमार्थ है, परम सत्य है, अन्य सव अनर्थ (असत्यरूप) हैं। उनकी उदारता के कारण उनके भवन के दरवाजे की अर्गला ऊची रहती थी, उनका द्वार सव के लिये खुला रहता था। वे जिसके घर मे या अन्त पुर मे जाते उसमे प्रीति उत्पन्न किया करते थे। वे शीलव्रत (पाचो अणुव्रत) गुणव्रत, विरमण (रागादि से निवृत्ति) प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि का पालन करते तथा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण पौषधव्रत किया करते थे। श्रमणो-निर्ग्रन्थो को निर्दोष अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार, वस्त्र, पात्र, कम्वल रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध और भेपज आदि का दान करते हुए, महान् लाभ प्राप्त करते थे, तथा स्वीकार किये तप-कर्म के द्वारा अपनी आत्मा को भावित-वासित करते हुए] विहरण कर रहे थे।

भगवान् महावीर का पदार्पण

८—तेण कालेणं तेणं समएण समणे भगव महावीरे समोसढे जाव[1] विहरइ। तए णं रायगिहे णयरे, सिंघाडग जाव[2] महापहेसु वहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव [एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एव परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थयरे सयसबुद्धे, पुरिसुत्तमे जाव सपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह सपत्ते, इह समोसढे; इहेव रायगिहे णयरे वाहिं गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गह उग्गिण्हित्ता संजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।" तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाण अरहताणं भगवताण णामगोयस्स वि सवणयाए; किमग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए;] किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह पधारे और बाहर उद्यान मे ठहरे। उनके पधारने के समाचार सुनकर राजगृह नगर के शृंगाटक राजमार्ग आदि स्थानो मे बहुत से नागरिक परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे— [विशेष रूप से कहने लगे, प्रकट रूप से एक ही आशय को भिन्न भिन्न शब्दो के द्वारा प्रकट करने लगे, कार्य-कारण की व्याख्या सहित-तर्क युक्त कथन करने लगे—"हे देवानुप्रिय ! वात ऐसी है कि श्रमण भगवान् महावीर जो स्वय सवुद्ध, धर्म-तीर्थ के आदिकर्ता और तीर्थंकर है, पुरुषोत्तम हैं यावत् सिद्धिगति रूप स्थान की प्राप्ति के लिये

१ वर्ग ५ सूत्र १, २ वर्ग ६ सूत्र ६

प्रवृत्ति करनेवाले है, वे क्रमश विचरण करते हुए यहाँ पधारे है, यहाँ आ चुके है, यहाँ विराजमान हैं। इसी राजगृह नगर के बाहर, गुणशील चैत्य मे, सयमियो के योग्य स्थान को ग्रहण करके, सयम और तप से आत्मा को भावित कर रहे है। हे देवानुप्रियो! तथारूप-महाफल की प्राप्ति कराने रूप स्वभाववाले अर्थात् अरिहत के गुणो से युक्त भगवान् के नाम (पहचान के लिये बनी हुई लोक मे रूढ सज्ञा) गोत्र (गुण के अनुसार दिया हुआ नाम) को भी सुनने से महत्फल की प्राप्ति होती है, तो फिर उनके निकट जाने, स्तुति करने, नमस्कार करने, सयमयात्रादि की समाधिपृच्छा करने और उनकी उपासना करने से होनेवाले फल की तो बात ही क्या ? अर्थात् निश्चय ही महत्फल की प्राप्ति होती है। उनके एक भी आर्य (श्रेष्ठ गुणो को प्राप्त कराने वाले और धार्मिक उत्तम वचन को सुनने से] और विपुल अर्थ को ग्रहण करने से होने वाले फल की तो बात ही क्या है ?

सुदर्शन का वन्दनार्थ गमन

९—तए णं तस्स सुदसणस्स बहुजणस्स अतिए एय अट्ठ सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था—एव खलु समणे भगव महावीरे जाव[1] विहरइ। तं गच्छामि णं समण भगव महावीरं वंदामि णमसामि, एवं सपेहेइ, सपेहेत्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव[2] एव वयासी—

"एव खलु अम्मयाओ! समणे भगवं महावीरे जाव[3] विहरइ। तं गच्छामि णं समण भगवं महावीरं वदामि नमसामि जाव [सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासामि।"

तए णं सुदसणं सेट्ठि अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु पुत्ता! अज्जुणए मालागारे जाव[4] घाएमाणे-घाएमाणे विहरइ। त मा ण तुम पुत्ता! समण भगवं महावीरं वंदए निग्गच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमण्णं इहगए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि।

तए णं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियर एव वयासी—"किण्ण अहं अम्मायाओ! समणं भगवं महावीरं इहमागय इह पत्त इह समोसढं इह गए चेव वदिस्सामि नमंसिस्सामि ? त गच्छामि ण अहं अम्मयाओ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि।

तए ण सुदसण सेट्ठि अम्मापियरो जाहे नो सचाएति बहूहिं आघवणाहिं जाव[5] परूवेत्तए ताहे एव वयासी—"अहासुहं देवाणुप्पिया!"

तए ण से सुदसणे अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालकिय] सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहारचारेण रायगिहं नयरं मज्झमज्झेण निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामतेण जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

---

१ इसी सूत्र मे   २ वर्ग ५ सूत्र ४
३ इसी सूत्र मे   ४ वर्ग ६ सूत्र ५
५ वर्ग ३, सूत्र १८

९—इस प्रकार वहुत से नागरिको के मुख से भगवान् के पधारने के समाचार सुनकर सुदर्शन सेठ के मन मे इस प्रकार, चिंतित, प्रार्थित, मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ—"निश्चय ही श्रमण भगवान् महावीर नगर मे पधारे है और वाहर गुणशीलक उद्यान मे विराजमान है, इसलिये मैं जाऊ और श्रमण भगवान् महावीर को वदन-नमस्कार करू ।" ऐसा सोचकर वे अपने माता-पिता के पास आये और हाथ जोडकर वोले—

हे माता-पिता ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी नगर के वाहर उद्यान मे विराज रहे है। अत मैं चाहता हू कि मैं जाऊ और उन्हे वदन-नमस्कार करू । उनका सत्कार करू, सन्मान करू । उन कल्याण के हेतुरूप, दुरितशमन (पापनाश) के हेतुरूप, देव स्वरूप और ज्ञानस्वरूप भगवान् की विनयपूर्वक पर्युपासना करू ।

यह सुनकर माता-पिता, सुदर्शन सेठ से इस प्रकार बोले—हे पुत्र ! निश्चय ही अर्जुन मालाकार यावत् मनुष्यो को मारता हुआ घूम रहा है इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण भगवान् महावीर को वदन करने के लिये नगर के वाहर मत निकलो । नगर के वाहर निकलने से सम्भव है तुम्हारे शरीर को हानि हो जाय । अत यही अच्छा है कि तुम यही से श्रमण भगवान् महावीर को वदन—नमस्कार कर लो ।"

तव सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा "हे माता-पिता ! जव श्रमण भगवान् महावीर यहा पधारे है, यहा समवसृत हुए है और वाहर उद्यान मे विराजमान है तो मै उनको यही से वदना—नमस्कार करू यह कैसे हो सकता है । अत हे माता-पिता ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं वही जाकर श्रमण भगवान् महावीर को वदन करू, नमस्कार करू यावत् उनकी पर्युपासना करू ।"

सुदर्शन सेठ को माता-पिता जव अनेक प्रकार की युक्तियो से नही समझा सके तव माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! फिर जिस प्रकार तुम्हे सुख उपजे वैसा करो ।"

इस प्रकार सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके स्नान किया और धर्मसभा मे जाने योग्य शुद्ध मागलिक वस्त्र धारण किये [थोडे भारवाले, वहुमूल्य आभूषणो से शरीर को सजाया] फिर अपने घर से निकला और पैदल ही राजगृह नगर के मध्य से चलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अति दूर और न अति निकट से होते हुए जहाँ गुणशील नामक उद्यान और जहा श्रमण भगवान् महावीर थे उस ओर जाने लगा ।

विवेचन—इस सूत्र मे "इहमागय, इह पत्त , इह समोसढ—" ये तीनो पद समानार्थक प्रतीत होते है, पर टीकाकार ने इस सम्वन्ध मे जो अर्थ-भेद दर्शाया है वह इस प्रकार है—

"इहमागयमित्यादि—इह नगरे आगत प्रत्यासन्नत्वेऽप्येव व्यपदेश स्यात्, अत उच्यते—इह सम्प्राप्त, प्राप्तावपि विशेषाभिधानमुच्यते, इह समवसृत धर्म-व्याख्यानप्रवर्तनया व्यवस्थितम् अथवा इह नगरे पुनरिहोद्याने पुनरिह साधूचितावग्रहे इति ।" अर्थात् 'इहमागय' का अर्थ है—इस नगर मे आए हुए । पर यह तो नगर के पास पहुचने पर भी कहा जा सकता है, अत सूत्रकार ने 'इहपत्त' कहा है । इस का अर्थ है—इस नगर मे पहुचे हुए । इसी वात को अधिक स्पष्ट करने के लिये "इह समोसढे" यह लिखा है । इस का भाव है—धर्म-व्याख्यान मे लगे हुए । अथवा 'इहमागय' का अर्थ

है—इस नगर मे आए हुए 'इह पत्त' का अर्थ है इस उद्यान मे आए हुए तथा 'इह समोसढ' का अर्थ है—साधुओ के योग्य स्थान पर ठहरे हुए।

सुदर्शन को अर्जुन द्वारा उपसर्ग

१०—तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे सुदसणं समणोवासय अदूरसामंतेणं वीईवयमाण-वीईवयमाण पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए ण से सुदसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाण पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभते वत्थतेण भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एव वयासी—

"नमोत्थु ण अरहंताण जाव[1] सपत्ताणं। नमोत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स तित्थयरस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलाए मुसावाए, थूलाए अदिण्णादाणे सदारसतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इदाणिं पि ण तस्सेव अंतिय सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, मुसावाय अदत्तादाण मेहुण परिग्गह पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्व कोहं जाव [माण मायं लोहं पेज्ज दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुण्णं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं] मिच्छादसणसल्ल पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारित्तए। अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि 'तो मे तहा' पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिम पडिवज्जइ।

तए ण से मोग्गरपाणी जक्खे त पलसहस्सणिप्फण्ण अओमय मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागए। नो चेव णं संचाएइ सुदसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए।

१०—तब उस मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन श्रमणोपासक को समीप से ही जाते हुए देखा। देखकर वह क्रुद्ध हुआ, रुष्ट हुआ, कुपित हुआ, कोपातिरेक से भीषण बना हुआ, क्रोध की ज्वाला से जलता हुआ, दात पीसता हुआ वह हजार पल भारवाले लोहे के मुद्गर को घुमाते-घुमाते जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था, उस ओर आने लगा। उस समय क्रुद्ध मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आता देखकर सुदर्शन श्रमणोपासक मृत्यु की सभावना को जानकर भी किंचित् भी भय, त्रास, उद्वेग अथवा क्षोभ को प्राप्त नही हुआ। उसका हृदय तनिक भी विचलित अथवा भयाक्रान्त नही नही हुआ। उसने निर्भय होकर अपने वस्त्र के अचल से भूमि का प्रमार्जन किया। फिर पूर्व दिशा की ओर मुह करके बैठ गया। बैठकर बाए घुटने को ऊचा किया और दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर अजलिपुट रखा। इसके बाद इस प्रकार बोला—

मै उन सभी अरिहत भगवतो को, जो अतीतकाल मे मोक्ष पधार गये है, एव धर्म के आदि-कर्त्ता तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर को जो भविष्य मे मोक्ष पधारने वाले है, नमस्कार करता हूँ।"

१ वर्ग १ सूत्र २

मैंने पहले श्रमण भगवान् महावीर से स्थूल प्राणातिपात का आजीवन त्याग (प्रत्याख्यान) किया, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया स्वदारसतोष और इच्छापरिमाण रूप व्रत जीवन भर के लिये ग्रहण किया है। अब उन्ही भगवान् महावीर स्वामी की साक्षी से प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और सपूर्ण-परिग्रह का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। मै सर्वथा क्रोध, [मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति-रति, मायामृषा] और मिथ्यादर्शन शल्य तक के समस्त (१८) पापो का भी आजीवन त्याग करता हूँ। सब प्रकार का अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारो प्रकार के आहार का भी त्याग करता हूँ। यदि मैं इस आसन्नमृत्यु उपसर्ग से बच गया तो इस त्याग का पारणा करके आहारादि ग्रहण करूगा। यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊ तो मुझे इस प्रकार का सपूर्ण त्याग यावज्जीवन हो। ऐसा निश्चय करके सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त प्रकार से सागारी पडिमा—अनशन व्रत धारण कर लिया।

इधर वह मुद्गरपाणि यक्ष उस हजार पल के लोहमय मुद्गर को घुमाता हुआ जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था वहाँ आया। परन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नही कर सका अर्थात् उसे किसी प्रकार से कष्ट नही पहुचा सका।

विवेचन—श्रेष्ठी सुदर्शन को गुणशीलक उद्यान की ओर जाते देखकर मुद्गरपाणि यक्ष क्रोध के मारे दाँत पीसते हुए उसे मारने के लिये मुद्गर उछालता हुआ आता है, पर यक्ष को देख सुदर्शन सर्वथा शान्त और निर्भय रहते हैं। सागारी सथारा ग्रहण करते है। इस मे वे सर्वथा क्रोध मान यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का त्याग करते है।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रमणोपासक के जो बारह व्रत है वे सम्यकत्व पूर्वक ही ग्रहण किये जाते हैं, उसमे मिथ्यात्व का परित्याग स्वत ही हो जाता है। तो फिर सागार-प्रतिमा (सागारी सथारा) ग्रहण करते समय सुदर्शन ने मिथ्यात्व का जो परित्याग किया है, इसकी उपपत्ति कैसे होगी ? श्रावक-धर्म को धारण कर लेने के अनन्तर मिथ्यात्व के परित्याग करने की आवश्यकता ही नही रह जाती। उत्तर मे निवेदन है कि यद्यपि व्रतधारी श्रावक के लिये मिथ्यात्व का परित्याग सबसे पहले करना होता है और मिथ्यात्व के परिहार पर ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तथापि देशविरति श्रावक का जो त्याग है, वह आशिक है, सर्वत नही है। मिथ्यादर्शन के देश-शका, सर्वशका आदि अनेको उपभेद हैं। उन सबका सर्वथा परित्याग करना ही यहाँ पर मिथ्यादर्शन शल्य के त्याग का लक्ष्य है। भाव यह है कि देशविरति धर्म के अगीकार मे लेश मात्र रहे हुए शका आदि दोषो का भी उक्त प्रतिज्ञा मे परित्याग कर दिया गया है।

"सागार पडिम पडिवज्जइ"—यहाँ पठित 'सागार' शब्द का अर्थ है—अपवाद युक्त, छूट सहित। यहाँ प्रतिमा—सथारा आमरण अनशन का नाम है। 'प्रतिपद्यते' यह क्रियापद स्वीकार करने के अर्थ मे प्रयुक्त है। छूट रख कर जो प्रतिज्ञा की जाती है उसे सागार-प्रतिमा कहते है। कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा करते समय उसमे जब किसी वस्तु या समय विशेष की छूट रख लेता है और "यह काम हो गया तो मैं अनशन खोल लूगा। यदि काम न बना तो मैं अपना अनशन नही खोलूगा, उसे लगातार चलाऊगा" इस प्रकार का सकल्प करके यदि कोई नियम लिया जाता है तो उस नियम को सागार-प्रतिमा कहा जाता है।

उपसर्ग-निवारण

११—तए णं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंता परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदंसण समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए, ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसण समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ,विप्पजहित्ता त पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिस पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए ण से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे 'धस' त्ति धरणियलंसि सव्वंगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए 'निरुवसग्ग' मित्ति कट्टु पडिमं पारेइ।

मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रावक के चारो ओर घूमता रहा और जव उसको अपने तेज से पराजित नही कर सका तव सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने आकर खडा हो गया और अनिमेप दृष्टि से वहुत देर तक उसे देखता रहा। इसके वाद उस मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन माली के शरीर को त्याग दिया और उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा मे चला गया।

मुद्गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही अर्जुन मालाकार 'धस्' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर गिर पडा। तव सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने को उपसर्ग रहित हुआ जानकर अपनी प्रतिज्ञा का पारण किया और अपना ध्यान खोला।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे यह दर्शाया गया है कि सेठ सुदर्शन को देखकर अर्जुन माली ने अपना मुद्गर उछाला तो सही पर वह आकाश मे अधर ही रह गया। सुदर्शन की आत्म-शक्ति की तेजस्विता के कारण वह किसी भी प्रकार से प्रत्याघात नही कर पाया। सूत्रकार ने इस हेतु—"तेजसा समभिपडित्तए" पद का प्रयोग किया है। मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन पर आक्रमण किया, परतु उनकी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण आघात नही कर पाया। वह स्वय तेजोविहीन हो गया।

सुदर्शन के असाधारण तेज से पराभूत मुद्गरपाणि यक्ष अर्जुन माली के शरीर मे से भाग गया और अर्जुन माली भूमि पर गिर पडा। तव सुदर्शन ने "सकट टल गया" यह समझ कर अपना व्रत समाप्त कर दिया।

सुदर्शन और अर्जुन की भगवत्पर्युपासना

१२—तए णं से अज्जुणए मालागारे तत्तो मुहुत्ततरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सुदंसणं समणोवासयं एव वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया! के कहिं वा संपत्थिया?

तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए-अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदए संपत्थिए।"

तए ण से अज्जुणए मालागारे सुदसणं समणोवासय एवं वयासी—

"तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अहमवि तुमए सद्धि समणं भगवं महावीर वंदित्तए जाव [नमसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाण मंगल देवयं चेइयं] पज्जुवासित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेहि।

तए ण सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेण सद्धि जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएण मालागारेण सद्धि समण भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव [आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ। त जहा—काइयाए वाइयाए माणसियाए। काइयाए ताव सकुइयग्गहत्थ-पाए णच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे, अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ। वाइयाए—ज ज भगव वागरेइ 'एवमेय भते! तहमेयं भते! अवितहमेयं भंते! असदिद्धमेयं भते! इच्छिअमेयं भते! पडिच्छियमेय भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेय भंते! से जहेयं तुब्भे वदह' अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ। माणसियाए महया सवेग जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तो] पज्जुवासइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुदणस्स समणोवासगस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ। सुदंसणे पडिगए।

इधर वह अर्जुन माली मुहूर्त भर (कुछ समय) के पश्चात् आश्वस्त एव स्वस्थ होकर उठा और सुदर्शन श्रमणोपासक को सामने देखकर इस प्रकार बोला—

'देवानुप्रिय! आप कौन हो? तथा कहाँ जा रहे हो?'

यह सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक ने अर्जुन माली से इस तरह कहा—

'देवानुप्रिय! मैं जीवादि नव तत्त्वो का ज्ञाता सुदर्शन नामक श्रमणोपासक हू और गुणशील उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर को वदन-नमस्कार करने जा रहा हूँ।'

यह सुनकर अर्जुन माली सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिय! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान् महावीर को वदना-नमस्कार करना चाहता हू, उनका सत्कार-सम्मान करना चाहता हू, कल्याणस्वरूप, मगलस्वरूप, दिव्यस्वरूप एव ज्ञानस्वरूप भगवान् की पर्युपासना करना चाहता हू।'

सुदर्शन ने अर्जुन माली से कहा—'देवानुप्रिय! जैसे तुम्हे सुख हो वैसा करो।'

इसके बाद सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुन माली के साथ जहाँ गुणशील उद्यान मे श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया और अर्जुन माली के साथ श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार [आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दना की और उन्हे नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके, तीन प्रकार की पर्युपासना करने लगा, यथा—कायिकी वाचिकी और मानसिकी। हाथ-पैर को सकुचित करके, न अधिक दूर न अधिक निकट ऐसे स्थान पर स्थित होकर, (धर्मोपदेश) श्रवण करते हुए-नमस्कार करते हुए, भगवान् की ओर मुह रखकर, विनयपूर्वक हाथ जोडे हुए, पर्युपासना करना कायिकी उपासना है। वाचिकी उपासना है—जो जो भगवान् कहते, उसे 'यह ऐसा ही है, भते! यही तथ्य

है भते ! यही सत्य है भते ! नि सदेह ऐसा ही है भते ! यही इष्ट है भते ! यही स्वीकृत है भते ! यही वाछित-गृहीत है भते ! जैसा कि आप यह कह रहे है'—यो अप्रतिकूल वनकर पर्युपासना करना। मानसिकी उपासना अर्थात्—अति सवेग (उत्साह या मुमुक्षु भाव) अपने मे उत्पन्न करके, धर्म के अनुराग मे तीव्रता से अनुरक्त होना।]

उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली और उस विशाल सभा के सम्मुख धर्मकथा कही। सुदर्शन धर्मकथा सुनकर अपने घर लौट गया।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि मुद्गरपाणि यक्ष द्वारा होने वाले उपद्रव के समाप्त होने पर सुदर्शन ने अपने आमरण अनशन को समाप्त कर दिया। अनशन समाप्त करने के अनन्तर सेठ सुदर्शन ने वडी गभीरता एव दूरदर्शिता से काम लिया। वे अर्जुनमाली को मूर्च्छित दशा मे देखकर भयभीत नही हुए और उन्होने वहा से जाने का भी प्रयत्न नही किया, प्रत्युत वे वहाँ वडी शान्ति के साथ बैठे रहे। कारण स्पष्ट है। उनका हृदय दयालु था, सहानुभूतिपूर्ण था। अर्जुनमाली को अचेत दशा मे छोडकर वे जाना नही चाहते थे। उनका विचार था कि अर्जुनमाली अव परवशता से उन्मुक्त हो गया है, अत इसकी देखभाल करना तथा इसका मार्गदर्शन करना मेरा कर्त्तव्य है। इसी कर्तव्यपालन की बुद्धि से उन्होने वहाँ से प्रस्थान नही किया।

अर्जुनमाली अन्तर्मुहूर्त तक बेसुध पडा रहा, "मुहुत्त तरेण-मुहूर्त्तान्तरेण-स्तोककालेन"—मुहूर्त शब्द का अर्थ है—४८ मिनिट। दो घडियो को मुहूर्त कहते है और दो घडी से न्यून काल को अन्तर्मुहूर्त कहा जाता है। सूत्रकार के कहने का आशय यह है कि अर्जुनमाली के शरीर से जव यक्ष निकल कर चला गया, उसके अनन्तर अर्जुनमाली धडाम से भूमितल पर गिर पडा और कुछ समय तक बेहोश पडा रहा। उसके अनन्तर उसे होश आया।

सचेत होने पर अर्जुनमाली ने सामने उपस्थित सुदर्शन को देख उनका परिचय जानने के साथ कुछ सवाद किया और सेठ सुदर्शन के साथ गुणशिलक उद्यान मे भगवान् महावीर के चरणो मे पहुँच गया।

अर्जुन की प्रव्रज्या

१३—तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—'सद्दहामि णं भते ! निग्गथं पावयणं जाव[1] अब्भुट्ठेमि ण भंते ! निग्गथं पावयणं।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।'

तए ण से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जाव[2] विहरइ।

तए ण से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव[3] पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता इमं एयारूव अभिग्गहं ओगेण्हइ—कप्पइ मे

१-२ वर्ग ३, सूत्र १८   ३ वर्ग ५, सूत्र २

जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण अप्पाण भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव[1] विहरइ ।

तए ण से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, जाव[2] अडइ ।

अर्जुनमाली श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर एव धारण कर अत्यन्त प्रसन्न एव सन्तुष्ट हुआ और प्रभु महावीर को तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा कर, वदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—"भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हू, रुचि करता हू, यावत् आपके चरणो मे प्रव्रज्या लेना चाहता हू ।

भगवान् महावीर ने कहा—"देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हे सुख उपजे, वैसा करो ।"

तव अर्जुनमाली ने ईशानकोण मे जाकर स्वय ही पचमौष्टिक लुचन किया, लुचन करके वे अनगार हो गये । सयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

इसके पश्चात् अर्जुन मुनि ने जिस दिन मुडित हो प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिन श्रमण भगवान् महावीर को वदना-नमस्कार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया—"आज से मैं निरतर वेले-वेले की तपस्या से आजीवन आत्मा को भावित करते हुए विचरूगा ।" ऐसा अभिग्रह जीवन भर के लिये स्वीकार कर अर्जुन मुनि विचरने लगे ।

इसके पश्चात् अर्जुन मुनि वेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय और दूसरे प्रहर मे ध्यान करते । फिर तीसरे प्रहर मे राजगृह नगर मे भिक्षार्थ भ्रमण करते ।

परीषह-सहन और सिद्धि

१४—तए ण त अज्जुणय अणगार रायगिहे नयरे उच्च जाव [नीय-मज्झिमाइ कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए] अडमाण वहवे इत्थीओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—

"इमेण मे पिता मारिए । इमेण मे माता मारिया । इमेण मे भाया भगिणी भज्जा पुत्ते धूया सुण्हा मारिया । इमेण मे अण्णयरे सयण-सवधि-परियणे मारिए त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसति, अप्पेगइआ हीलंति निंदति खिसति गरिहंति तज्जति तालेंति ।"

तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं वहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य आओसिज्जमाणे (आकोज्जमाणे) जाव [हीलेमाणे, निंदेमाणे, खिसेमाणे, गरिहेमाणे, तज्जेज्जमाणे] तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ सम्म खमइ सम्मं तितिक्खइ सम्म अहियासेइ, सम्म सहमाणे सम्मं खममाणे सम्म तितिक्खमाणे सम्मं अहियासेमाणे रायगिहे नयरे उच्च-णीय-मज्झिय-कुलाइ अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ, अह पाणं लभइ तो भत्त न लभइ ।

तए ण से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले अविसादी अपरितंतजोगी

---

१ वर्ग ३, सूत्र २ २ वर्ग ३, सूत्र ६

अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगव महावीरे जाव [तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेण तमाहारं आहारेइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहार विहरइ।

तए ण से अज्जुणए अणगारे तेण ओरालेण विपुलेण पयत्तेण पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं अप्पाण भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्णपरियाग पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए सलेहणाए अप्पाण झूसेइ, झूसेत्ता तीस भत्ताइ अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[1] सिद्धे।

उस समय अर्जुन मुनि को राजगृह नगर मे उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे भिक्षार्थ घूमते हुए देखकर नगर के अनेक नागरिक—स्त्री, पुरुष, वाल, वृद्ध इस प्रकार कहते—

"इसने मेरे पिता को मारा है। इसने मेरी माता को मारा है। भाई को मारा है, वहन को मारा है, भार्या को मारा है, पुत्र को मारा है, कन्या को मारा है, पुत्रवधू को मारा है, एव इसने मेरे अमुक स्वजन सवधी या परिजन को मारा है। ऐसा कहकर कोई गाली देता, कोई हीलना करता, अनादर करता, निदा करता, कोई जाति आदि का दोप वताकर गर्हा करता, कोई भय वताकर तर्जना करता और कोई थप्पड, ईट, पत्थर, लाठी आदि से ताड़ना करता।

इस प्रकार उन बहुत से स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढे और जवानो से आक्रोश-गाली, [हीलना, अनादर, निंदा, गर्हा सहते हुए], ताडित-तर्जित होते हुए भी वे अर्जुन मुनि उन पर मन से भी द्वेष नही करते हुए उनके द्वारा दिये गये सभी परीपहो को समभावपूर्वक सहन करते हुए उन कष्टो को समभाव से झेल लेते एव निर्जरा का लाभ समझते। सम्यग्ज्ञानपूर्वक उन सभी सकटो को सहन करते, क्षमा करते, तितिक्षा रखते और उन कष्टो को भी लाभ का हेतु मानते हुए राजगृह नगर के छोटे, बडे एव मध्यम कुलो मे भिक्षा हेतु भ्रमण करते हुए अर्जुन मुनि को कभी भोजन मिलता तो पानी नही मिलता और पानी मिलता तो भोजन नही मिलता।

वैसी स्थिति मे जो भी और जैसा भी अल्प स्वल्प मात्रा मे प्रासुक भोजन उन्हे मिलता उसे वे सर्वथा अदीन, अविमन, अकलुष, अमलिन, आकुल-व्याकुलता रहित अखेद-भाव से ग्रहण करते, थकान अनुभव नही करते।

इस प्रकार वे भिक्षार्थ भ्रमण करते। भ्रमण करके वे राजगृह नगर से निकलते और गुणशील उद्यान मे, जहा श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आते और वहाँ आकर [भगवान् से न अति दूर न अति निकट से उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण करते, भिक्षा मे लगे हुए दोषो की आलोचना करते] और फिर भिक्षा मे मिले हुए आहार-पानी को प्रभु महावीर को दिखाते। दिखाकर उनकी आज्ञा पाकर मूर्च्छा रहित, गृद्धि रहित, राग रहित और आसक्ति रहित, जिस प्रकार

१ वर्ग ५, सूत्र ६

विल मे सर्प सीधा ही प्रवेश करता है उस प्रकार राग-द्वेष भाव से रहित होकर उस आहार-पानी का वे सेवन करते ।

तत्पश्चात् किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के उस गुणशील उद्यान से निकलकर बाहर जनपदो मे विहार करने लगे ।

अर्जुन मुनि ने उस उदार, श्रेष्ठ, पवित्र भाव से ग्रहण किये गये, महालाभकारी, विपुल तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए पूरे छह मास श्रमण धर्म का पालन किया । इसके बाद आधे मास की सलेखना से अपनी आत्मा को भावित करके तीस भक्त के अनशन को पूर्ण कर जिस कार्य के लिये व्रत ग्रहण किया था उसको पूर्ण कर वे अर्जुन मुनि यावत् सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये ।

विवेचन—राजगृह नगर मे भिक्षा के निमित्त घूमते हुए अर्जुन मुनि को वहा की जनता के द्वारा कष्ट प्राप्त हुए, फिर भी वे अपनी साधु-जनोचित वृत्ति मे स्थिर रहे, मन से भी किसी पर द्वेष नही किया, प्रत्युत जो कुछ भी कष्ट प्राप्त हुआ, उसको समभाव मे रहते हुए बडी शान्ति और धैर्य से सहन किया । इसी समभाव का यह सत्परिणाम हुआ कि वे समस्त कर्म-बधनो का विच्छेद करके अपने अभीष्ट परम कल्याणस्वरूप निर्वाण को प्राप्त हुए ।

"अक्कोसति, हीलति, निंदति, खिसति, गरिहति, तज्जेति"—इन क्रियापदो का अर्थ इस प्रकार है—'अक्कोसति'—कटु वचनो से भर्त्सना करते है । भर्त्सना का अर्थ है—लानत मलामत, फटकार, बुरा भला कहना । 'हीलन्ति'—अनादर-अपमान करते है । 'निन्दन्ति'—निन्दा करते है, निन्दा का अर्थ है—किसी के दोषो का वर्णन करना । 'खिसति'—खीजते है, झुझलाते हैं, कुढते हैं, दुर्वचन कहकर क्रोधावेश मे लाने का प्रयत्न करते है । 'गरिहति'—दोषो को प्रकट करते है । 'तज्जेति' तर्जना करते हैं, डाँटते हैं, डपटते हैं, तर्जनी आदि अगुलियो द्वारा भयोत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं । 'तालेति'—लाठियो और पत्थरो आदि से मारते है । "सम्म सहति, सम्म खमति, तितिक्खइ, अहियासेति"—इन पदो की व्याख्या करते हुए टीकाकार अभयदेव सूरि लिखते है—

सहते इत्यादीनि एकार्थानि पदानीति केचित् । अन्ये तु सहते भयाभावेन, क्षमते कोपाभावेन, तितिक्षते दैन्याभावेन, अधिसहते आधिक्येन सहते इति ।' अर्थात् कुछ आचार्य सहते आदि चारो पदों को एकार्थक मानते हैं, कुछ इनका अर्थभेद करते हुए कहते है—सहते—विना किसी भय से सकट सहन करते हैं । क्षमते-क्रोध से दूर रह कर शान्त रहते है । तितिक्षते—किसी प्रकार की दीनता दिखलाये विना परिषहो को सहन करते है । अधिसहते—खूब सहन करते है । इन क्रियापदो से ध्वनित होता है कि अर्जुन मुनि की सहनशीलता समीचीन और आदर्श थी । जो सहनशीलता भय के कारण होती है, वह वास्तविक सहनशीलता नही है । जिस क्षमा मे क्रोध का अश विद्यमान है, हृदय मे क्रोध छिपा हुआ है, उसे क्षमा नही कहा जा सकता और दीनतापूर्वक की गई तितिक्षा वास्तविक तितिक्षा नही कही जा सकती । आक्रोश आदि परिषहो के सहन करने मे यदि अन्त करण मे अशतया भी कषायो का उदय हो जाता है, तो विकास के बदले यह आत्मा पतन की ओर प्रवृत्त हो जाता है । इसकी विशेष प्रतीति हेतु सूत्रकार ने—'अदीणे, अविमणे अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी' शब्दो का प्रयोग किया है । इन पदो की व्याख्या करते हुए आचार्य अभयदेव सूरि लिखते है—

'अदीणे' त्यादि तत्रादीन शोकाभावात् अविमना न शून्यचित्त अकलुषो द्वेपवर्जितत्वात् अनाविल जनाकुलो वा नि क्षोभत्वात् अविषादी किं मे जीवितेनेत्यादि चिन्तारहित, अत-एवापरितान्त —अविश्रान्तो योग —समाधिर्यस्य स. तथा स्वार्थिकेनन्तत्त्वाच्चापरितान्तयोगी ।

इसका अर्थ इस प्रकार है—

मन मे किसी प्रकार का शोक न होने से अर्जुन मुनि अदीन-दीनता से रहित थे, समाहित चित्त होने से अविमन थे, द्वेप-रहित होने से मन मे किसी प्रकार की कलुषता-मलिनता और आकुलता नही थी। क्षोभशून्य होने से मन मे किसी प्रकार का विपाद-दु ख नही था। 'मेरा इस प्रकार के तिरस्कृत जीवन से क्या प्रयोजन है,' ऐसी ग्लानि उनके मन मे नही थी, अतएव वह निरन्तर समाधि मे लीन थे। समाधि मे सतत लगे रहने के कारण ही अर्जुन मुनि को अपरितान्तयोगी कहा गया है। अपरितान्त योग शब्द से स्वार्थ मे 'इन' प्रत्यय लगा कर अपरितान्तयोगी शब्द बनता है।

"बिलमिव पण्णगभूएण अप्पाणेण तमाहार आहारेइ"—का अर्थ है—जिस प्रकार साप बिल मे प्रवेश करता है, उसी प्रकार आहार को ग्रहण किया गया। इन पदो का अर्थ वृत्तिकार के शब्दो मे इस प्रकार है—

"विलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति—यथा भुजगो विलस्य पार्श्वभागद्वय-मसस्पृशन् मध्यमार्गत एवात्मान विले प्रवेशयति तथा मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहार कण्ठनालाभिमुख प्रवेश्याऽऽहारयतीति भाव ।"

अर्थात् जैसे सर्प बिल के दोनो भागो का स्पर्श किए विना केवल विल के मध्यभाग से ही विल मे प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार अर्जुन मुनि मुख के दोनो भागो का स्पर्श किए विना केवल मुख मे आहार रख कर गले के नीचे उतार लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल मे प्रवेश करते समय सर्प अपने अगो का उससे स्पर्श नही करता, बडे सकोच से उसमे प्रवेश करता है, उसी प्रकार किसी प्रकार के आस्वाद की अपेक्षा न करते हुए रागद्वेप से रहित होकर मुख मे जैसे स्पर्श ही नही हुआ हो, इस प्रकार से केवल क्षुधा की निवृत्ति के उद्देश्य से अर्जुन मुनि आहार सेवन करते हैं। इस कथन से इनकी रसविषयक मूर्च्छा के आत्यन्तिक अभाव का ससूचन किया गया है। सयमी व्यक्ति की उत्कृष्ट साधना रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना है। अर्जुन मुनि ने इस साधना के रहस्य को भलीभाति समझ लिया था और उसे जीवन मे उतार भी लिया था।

'तेण ओरालेण विउलेण पयत्तेण पग्गहिएण महाणुभागेण तवोकम्मेण'—तेन पूर्वभणितेन उदारेण—प्रधानेन, विपुलेन—विशालेन भगवता दत्तेन, प्रगृहीतेन उत्कृष्टभावत स्वीकृतेन, महानु-भागेन-महान् अनुभाग प्रभावो यस्य, तेन तप कर्मणा।' यहाँ पर अर्जुनमुनि ने जो तप आराधन किया है उस तप की महत्ता को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत पाठ मे तप कर्म विशेष्य है और उदार आदि उसके विशेषण है। इनकी अर्थविचारणा इस प्रकार है—

तेण —यह शब्द पूर्व प्रतिपादित तप की ओर सकेत करता है। अर्जुन मुनि के साधना-प्रकरण मे बताया गया था कि अर्जुनमुनि जब नगर मे भिक्षार्थ जाते थे तब उनको लोगो की ओर से बहुत बुरा-भला कहा जाता था, उनका अपमान किया जाता था, मार-पीट की जाती थी, तथापि

ये सब यातनाए शान्तिपूर्वक सहन करते थे। इसके अतिरिक्त उनको अन्न मिल जाता तो पानी नही मिलता था, कही पानी मिल गया तो अन्न नही मिलता था। यह सब कुछ होने पर भी अर्जुन मुनि कभी अशान्त नही हुए, दो दिनो के उपवास के पारणे मे भी सन्तोषजनक भोजन न पाकर उन्होने कभी ग्लानि अनुभव नही की। इस प्रकार के तप को सूत्रकार ने, 'तेण' इस पद से ध्वनित किया है।

'उदार'—शब्द का अर्थ है-प्रधान। प्रधान सब से बडे को कहते है। भूखा रहना आसान है, रसनेन्द्रिय पर नियन्त्रण भी किया जा सकता है, भिक्षा द्वारा जीवन का निर्वाह करना भी सभव है पर लोगो मे अपमानित होकर तथा मार-पीट सहन कर तपस्या की आराधना करते चले जाना बच्चो का खेल नही है। यह बडा कठिन कार्य है, बडी कठोर साधना है, इसी कारण सूत्रकार ने अर्जुनमुनि के तप को उदार अर्थात् सब से बडा कहा है।

'विपुल'—विशाल को कहते हैं। एक बार कष्ट सहन किया जा सकता है, दो या तीन बार कष्ट का सामना किया जा सकता है, परन्तु लगातार छह महीनो तक कष्टो की छाया तले रहना कितना कठिन कार्य है ? यह समझना कठिन नही है। जिधर जाओ उधर अपमान, जिस घर मे प्रवेश करो वहाँ अनादर की वर्षा, सम्मान का कही चिह्न भी नही। ऐसी दशा मे मन को शान्त रखना, क्रोध को निकट न आने देना बडा ही विलक्षण साहस है और बडी विकट तपस्या है, अपूर्व सहिष्णुता है। सभव है इसीलिये सूत्रकार ने अर्जुनमाली की तप साधना को विपुल-विशाल बडी कहा है।

'प्रदत्त'—का अर्थ है—दिया हुआ। अर्जुनमाली जिस तप की साधना कर रहे थे, यह तप उन्होने बिना किसी से पूछे अपने आप ही आरम्भ नही किया, प्रत्युत भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके आरम्भ किया था। अतएव सूत्रकार ने इस तप को प्रदत्त कहा है।

'प्रगृहीत' का अर्थ है—ग्रहण किया हुआ। किसी भी व्रत ग्रहण करनेवाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति एक जैसी नही रहती। किसी समय मन मे श्रद्धा का अतिरेक होता है और किसी समय श्रद्धा कमजोर पड जाती है और किसी समय लोकलज्जा के कारण बिना श्रद्धा के ही व्रत का परिपालन किया जाता है। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर सूत्रकार ने मुनि द्वारा कृत तप को प्रगृहीत विशेषण मे विशेषित किया है, जो उत्कृष्ट भावना से ग्रहण किया हुआ, इस अर्थ का बोधक है। अर्जुनमाली की आस्था सकट काल मे शिथिल नही हुई, वे सुदृढ साधक बन कर साधना-जगत् मे आए थे और अन्त तक सुदृढ साधक ही रहे। उन्होने अपने मन को कभी डॉवाडोल नही होने दिया।

यदि पयत्तेण का संस्कृत रूप प्रयत्नेन किया जाय तो उदार और विपुल ये दोनो प्रयत्न के विशेषण बन जाते है, तब इन शब्दो का अर्थ होगा—प्रधान विशाल प्रयत्न से ग्रहण किया गया। तप करना साधारण बात नही है इसके लिये बडे पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इसी महान् पुरुषार्थ को प्रधान विशाल प्रयत्न कहा गया है।

"महानुभाग" शब्द प्रभावशाली अर्थ का बोधक है। जिस तप के प्रताप से अर्जुन मुनि ने जन्म-जन्मान्तर के कर्मो को नष्ट कर दिया, परम साध्य निर्वाण प्राप्त कर लिया, उसकी प्रभावगत महत्ता मे क्या आशका हो सकती है ?

आत्मा के साथ लगे हुए कर्म-मल को जलाने के लिये तप रूप अग्नि की नितान्त आवश्यकता

होती है। तप रूप अग्नि के द्वारा कर्म-मल के भस्मसात् होने पर आत्मा शुद्ध स्फटिक की भाति निर्मल हो जाती है। इसलिए अर्जुनमुनि ने सयम ग्रहण करने के अनन्तर अपने कर्ममल युक्त आत्मा को निर्मल बनाने के लिये तपरूप अग्नि को प्रज्वलित किया। परिणाम-स्वरूप वे कैवल्य-प्राप्ति के अनन्तर निर्वाण-पद को प्राप्त हुए।

श्रेणिकचरित्र मे लिखा है कि अर्जुनमाली के शरीर मे मुद्गरपाणि यक्ष का पाच मास १३ दिनो तक प्रवेश रहा। उससे उसने ११४१ व्यक्तियो का प्राणान्त किया। इसमे ९७८ पुरुष और १६३ स्त्रियाँ थी। इससे स्पष्ट प्रमाणित है कि वह प्रतिदिन सात व्यक्तियो की हत्या करता रहा। यहा एक आशका होती है कि जिस व्यक्ति ने इतना वडा प्राणि-वध किया और पाप कर्म से आत्मा का महान् पतन किया, उस व्यक्ति को केवल छह मास की साधना से कैसे मुक्ति प्राप्त हो गई ?

उत्तर यह है कि तप मे अचिन्त्य, अतर्क्य एव अद्भुत शक्ति है। आगम कहता है—भवकोडि-सचिय कम्म तवसा निज्जरिज्जइ।' अर्थात् करोडो भवो मे सचित किए-बाधे कर्म भी तपश्चर्या द्वारा नष्ट किए जा सकते है। यह भी कहा गया है—

अण्णाणी ज कम्म खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।

त नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमेत्तेण—प्रवचनसार।

अर्थात् अज्ञानी जीव जिन कर्मों को लाखो-करोडो भवो मे खपा पाता है, उन्हे त्रिगुप्त—मन-वचन, काय का गोपन करने वाला ज्ञानी आत्मा एक श्वास जितने स्वल्प काल मे क्षय कर डालता है।

जब तीव्रतर तप की अग्नि प्रज्वलित होती है तो कर्मो के दल के दल सूखे घास-फूस की तरह भस्मसात् हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत प्रसग मे यह भी कहा जा सकता है कि अर्जुन मालाकार द्वारा जो वध किया गया, वह प्रस्तुत यक्ष द्वारा किया गया वध था। अर्जुन उस समय यक्षाविष्ट होने से पराधीन था। वह तो यत्र की भाति प्रवृत्ति कर रहा था। अतएव मनुष्यवध योग्य कपाय की तीव्रता उसमे सभव नही।

४–१४ अध्ययन

काश्यप आदि गाथापति

१५—तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए। सेणिए राया, कासवे नामं गाहावई परिवसइ। जहा मकाई। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—खेमए वि गाहावई, नवर-कायंदी नयरी। सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे।

एवं—धिइहरे वि गाहावई कायंदीए नयरीए। सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एव—केलासे वि गाहावई, नवरं-साएए नगरे। बारस वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे।

एव—हरिचदणे वि गाहावई साएए नयरे। बारस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

एव—वारत्तए वि गाहावई, नवर-रायगिहे नयरे। बारस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एव—सुदंसणे वि गाहावई, नवर-वाणियग्गामे नयरे। दूइपलासए चेइए। पच वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—पुण्णभद्दे वि गाहावई, वाणियग्गामे नयरे। पच वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

एव—सुमणभद्दे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए। बहुवासाइ परियाओ। विपुले सिद्धे।

एव—सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थीए णयरीए। सत्तावीस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे।

एवं—मेहे वि गाहावई रायगिहे नयरे। बहूइं वासाइ परियाओ विपुले सिद्धे।

अध्ययन ४-१४

उस काल उस समय राजगृह नगर मे गुणशीलनामक उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। वहाँ काश्यप नाम का एक गाथापति रहता था। उसने मकाई की तरह सोलह वर्ष तक दीक्षापर्याय का पालन किया और अन्त समय मे विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सथारा आदि करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गया।

इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का वर्णन समझे। विशेष इतना है कि काकदी नगरी के वे निवासी थे और सोलह वर्ष का उनका दीक्षाकाल रहा, यावत् वे भी विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

ऐसे ही धृतिधर गाथापति का भी वर्णन समझे। वे काकदी के निवासी थे। सोलह वर्ष तक मुनिचारित्र पालकर वे भी विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार कैलाश गाथापति भी थे। विशेष यह कि ये साकेत नगर के रहने वाले थे, इन्होंने बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और विपुलगिरि पर्वत पर सिद्ध हुए।

ऐसे ही आठवे हरिचन्दन गाथापति भी थे। वे भी साकेत नगर के निवासी थे। उन्होने भी बारह वर्ष तक श्रमणचारित्र का पालन किया और अन्त मे विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

इसी तरह नवमे बारत्त गाथापति राजगृह नगर के रहने वाले थे। बारह वर्ष का चारित्र पालन कर वे विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

दशवे सुदर्शन गाथापति का वर्णन भी इसी प्रकार समझे। विशेष यह कि वाणिज्यग्राम नगर के बाहर द्युतिपलाश नाम का उद्यान था। वहाँ दीक्षित हुए। पाच वर्ष का चारित्र पालकर विपुलगिरि मे सिद्ध हुए।

पूर्णभद्र गाथापति का वर्णन भी ऐसा ही है। विशेष यह कि वे वाणिज्यग्राम नगर के रहने वाले थे। पाँच वर्ष का चारित्र पालन कर वह भी विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए।

सुमनभद्र गाथापति श्रावस्ती नगरी के वासी थे। बहुत वर्षो तक चारित्र पालकर विपुलाचल पर सिद्ध हुए।

सुप्रतिष्ठित गाथापति श्रावस्ती नगरी के थे और सत्ताईस वर्ष सयम पालकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

मेघ गाथापति का वृत्तान्त भी ऐसे ही समझे। विशेष-राजगृह के निवासी थे और बहुत वर्षों तक चारित्र पालकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे ग्यारह श्रावको का उल्लेख किया गया है। ये सव मोह-ममत्व के बन्धन तोडकर तथा वैराग्य से नाता जोडकर मगलमय करुणासागर भगवान् महावीर के चरणो मे पहुचकर दीक्षित हो गये। इनके जीवन मे जो-जो अन्तर है वह निम्नोक्त तालिका मे दिया जा रहा है—

नाम	नगर	उद्यान	दीक्षा-पर्याय	निर्वाण-स्थान
१. श्री काश्यपजी	राजगृह नगर	गुणशीलक	१६ वर्ष	विपुल पर्वत
१ श्री क्षेमकजी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
३ श्री धृतिधरजी	काकदी नगरी		१६ वर्ष	विपुल पर्वत
४ श्री कैलाशजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
५ श्री हरिचन्दनजी	साकेत नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
६ श्री वारत्तकजी	राजगृह नगर		१२ वर्ष	विपुल पर्वत
७ श्री सुदर्शनजी	वाणिज्यग्राम नगर	द्युतिपलाश	५ वर्ष	विपुल पर्वत
८. श्री पूर्णभद्रजी	वाणिज्यग्राम नगर		५ वर्ष	विपुल पर्वत
९ श्री सुमनभद्रजी	श्रावस्ती नगरी		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत
१० श्री सुप्रतिष्ठितजी	श्रावस्ती नगरी		२७ वर्ष	विपुल पर्वत
११ श्री मेघकुमारजी	राजगृह नगर		अनेक वर्ष	विपुल पर्वत

—

पणरसमं अज्झयणं

अतिमुक्त

गौतम स्वामी की भिक्षाचर्या और अतिमुक्त

१६—तेणं कालेणं तेणं समएण पोलासपुरे नयरे। सिरिवणे उज्जाणे। तत्थ ण पोलासपुरे नयरे विजए नामं राया होत्था। तस्स ण विजयस्स रण्णो सिरी नाम देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नाम कुमारे होत्था, सूमालपाणिपाए।

तेणं कालेणं तेण समएण समणे भगव महावीरे जाव [पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणामेव पोलासपुरे नयरे सिरिवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव ओग्गहं ओगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे] विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इदभूई अणगारे जहा पण्णत्तीए जाव भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणयसि पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसभन्ते मुहपोत्तिय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइ पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइ पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइ उग्गहेइ, उग्गहित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वदित्ता नमंसित्ता एव वयासी—

"इच्छामि ण भते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगसि] पोलासपुरे नयरे उच्च [नीय-मज्झिमाइं कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबध।

तए णं भगव गोयमे समणेण भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगतंरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणे सोहेमाणे जेणेव पोलासपुरे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोलासपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइ घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं] अडइ।

इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव[1] सव्वालकारविभूसिए बहूहिं दारगेहि य दारियाहि य डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए तेहिं बहूहिं दारएहि य सपरिवुडे अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ। तए ण भगवं गोयमे उच्च जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामतेण वीईवयइ।

अध्ययन-१५

उस कल और उस समय मे पोलासपुरनामक नगर था। वहाँ श्रीवननामक उद्यान था। उस नगर मे विजयनामक राजा था। उस की श्रीदेवी नाम की महारानी थी, यहाँ राजा और रानी

---

१ वर्ग ३, सूत्र १३

का वर्णन औपपातिकसूत्र से समझ लेना चाहिए। महाराजा विजय का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्त नाम का कुमार था जो अतीव सुकुमार था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर क्रमश विचरते हुए, एक गाम से दूसरे गाम को पावन करते हुए और शारीरिक खेद से रहित—सयम मे आने वाली बाधा-पीडा से रहित विहार करते हुए पोलासपुर नगर के श्रीवन उद्यान मे पधारे।

उस काल, उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति, व्याख्याप्रज्ञप्ति मे कहे अनुसार निरन्तर वेले-वेले का तप करते हुए सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। पारणे के दिन पहली पौरिसी मे स्वाध्याय, दूसरी पौरिसी मे ध्यान और तीसरी पौरिसी मे शारीरिक शीघ्रता से रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता और उत्सुकता रहित, होकर मुखवस्त्रिका की पडिलेखना करते है और फिर पात्रो और वस्त्रो की प्रतिलेखना करते हैं। फिर पात्रो की प्रमार्जना करके और पात्रो को लेकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ आए, आकर भगवान् को वदना-नमस्कार कर इस प्रकार निवेदन किया—

"हे भगवन्! आज षष्ठभक्त के पारणे के दिन आपकी आज्ञा होने पर पोलासपुर नगर मे ऊच, [नीच, और मध्यम कुलो मे भिक्षा की विधि के अनुसार भिक्षा लेने के लिये जाना चाहता हूँ।]

श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, करो, उसमे विलम्ब न करो।

भगवान् की आज्ञा होने पर गौतमस्वामी भगवान् के पास से, गुणशीलक चैत्य से निकले। निकल कर शारीरिक त्वरा और मानसिक चपलता से रहित एव आकुलता व उत्सुकता से रहित युग (धूसरा) प्रमाण भूमि को देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक पोलासपुर नगर मे आये। वहाँ ऊच, नीच, और मध्यम कुलो मे भिक्षा की विधि अनुसार भिक्षा हेतु] भ्रमण करने लगे।

इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके यावत् शरीर की विभूषा करके बहुत से लडके-लडकियो, बालक-बालिकाओ और कुमार-कुमारियो के साथ अपने घर से निकले और निकल कर जहाँ इन्द्र-स्थान अर्थात् क्रीडास्थल था वहाँ आये। वहाँ आकर उन बालक बालिकाओ के साथ खेलने लगे।

उस समय भगवान् गौतम पोलासपुर नगर मे सम्पन्न-असम्पन्न तथा मध्य कुलो मे यावत् भ्रमण करते हुए उस क्रीडास्थल के पास से जा रहे थे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र पोलासपुर के राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा श्रमण भगवान् महावीर के प्रथम गणधर गौतम के मधुर-मिलन या प्रथम मुलाकात का वर्णन प्रस्तुत करता है।

इसमे अतिमुक्त जिनके साथ खेलते है, उनके लिये "दारएहिं य, डिंभएहि य, कुमारएहि य" शब्द का प्रयोग हुआ है। दारक, डिंभक तथा कुमार ये तीनो शब्द समानार्थी प्रतीत होते है परन्तु वृत्तिकार ने इनके विभिन्न अर्थ इस प्रकार बताये हैं—दारक—सामान्य बालक, अच्छी आयु वाला, डिंभक—छोटी आयुवाला, कुमार—अविवाहित।

खेलने वाले स्थान को "इदट्ठाणे" कहा है जिसका अर्थ होता है क्रीडास्थान, जहाँ पर इन्द्रस्तम्भनामक एक मोटा खभा गाडकर बालक और बालिकाए खेलते है।

गौतम और अतिमुक्त कुमार का समागम

१७—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए, भगवं गोयमं एवं वयासी—

"के णं भंते ! तुब्भे ? किं वा अडह ?"

तए णं भंते गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिया ! समणा निग्गंथा इरियासमिया जाव[1] गुत्तबंभयारी उच्च जाव [नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खाय-रियाए] अडामो।"

तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—एह णं भंते ! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा सिरिदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—

"कहिं णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?"

तए णं से भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव[2] संपाविउकामे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तत्थ णं अम्हे परिवसामो।

उस समय अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम को पास से जाते हुए देखा। देखकर जहाँ भगवान् गौतम थे वहाँ आये और भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—

'भंते ! आप कौन हैं ? और क्यों घूम रहे हैं ?'

तब भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार को इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं, ईर्यासमिति आदि सहित यावत् ब्रह्मचारी हैं, छोटे बड़े कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं।'

यह सुनकर अतिमुक्त कुमार भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—'भगवन् ! आप आओ ! मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ।' ऐसा कहकर अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम की अंगुली पकड़ी और उनको अपने घर ले आये। श्रीदेवी महारानी भगवान् गौतम को आते देख बहुत प्रसन्न हुई यावत् आसन से उठकर भगवान् गौतम के सम्मुख आई। भगवान् गौतम को तीन वार दक्षिण तरफ से प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया फिर विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभ दिया यावत् विधिपूर्वक विसर्जित किया।

१. वर्ग ३, सूत्र १८ २ वर्ग १, अ० १, सूत्र २

इसके वाद भगवान् गौतम से अतिमुक्त कुमार इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय ! आप कहाँ रहते है ?'

भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार को उत्तर दिया—

देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, यावत् शाश्वत स्थान—मोक्ष के अभिलाषी इसी पोलासपुर नगर के वाहर श्रीवन उद्यान मे मर्यादानुसार स्थान ग्रहण करके सयम एव तप से आत्मा को भावित कर विचरते है। हम वही रहते है।'

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि वालक अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम से तीन प्रश्न किये थे। वे प्रश्न है—आप कौन है ? आप किस उद्देश्य से भ्रमण कर रहे हैं ? आप कहाँ पर रहते है ? प्रस्तुत सूत्र मे इन तीनो के उत्तर भी दिये गये है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् गौतम ने अपना परिचय देने के साथ-साथ साधु-जीवन की मर्यादा का वर्णन भी कर दिया है।

प्रथम प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी ने कहा—'हम श्रमण हैं, निर्ग्रन्थ, ईर्यासमित एव ब्रह्मचारी है।' वस्तुत ये चारो शब्द साधु-मर्यादा के परिचायक है। उनकी व्याख्या इस प्रकार है—तपस्वी अथवा प्राणिमात्र के साथ समतामय समान व्यवहार करने वाले महापुरुष श्रमण कहलाते हैं। जो परिग्रह से रहित हैं अथवा जिनमे राग-द्वेष की ग्रन्थि न हो वे निर्ग्रन्थ हैं ईर्या-गमन सवधी समिति-विवेक अर्थात् आगे देखकर तथा सावधानी से चलना ईरियासमिति है। चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य के परिपालक साधक को ब्रह्मचारी कहते है।

दूसरे प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार से कहा—"वत्स ! मैं भिक्षार्थ भ्रमण कर रहा हूँ।'

तीसरे प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी ने श्रीवन उद्यान मे मेरा निवास है, ऐसा न कहकर श्रीवन उद्यान मे परमात्मा महावीर के पास हमारा निवास है, ऐसा वताया। इसमे उनकी अपूर्व गुरुभक्ति झलकती है।

विउलेण साइमेण—इस पद मे विपुल शब्द के कई अर्थ पाए जाते हैं—प्रभूत, प्रचुर, विस्तीर्ण, विशाल, उत्तम, श्रेष्ठ आदि। प्रस्तुत मे 'उत्तम' अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

अतिमुक्त का गौतम के साथ वन्दनार्थ गमन

१७—तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयम एवं वयासी—

"गच्छामि णं भते ! अहं तुब्मेहिं सद्धि समणं भगवं महावीरं पायवंदए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि।"

तए ण से अइमुत्ते कुमारे भगवया गोयमेणं सद्धि जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ जाव[1] पज्जुवासइ।

---

१ वर्ग ६, सूत्र ११

तए णं भगव गोयमे जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागए, जाव [उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमेइ, पडिक्कमेत्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं] पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा।

तब अतिमुक्त कुमार भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—

'हे पूज्य! मैं भी आपके साथ श्रमण भगवान् महावीर को वदन करने चलता हूँ।'

श्री गौतम ने कहा—'देवानुप्रिय! जैसे तुम्हे सुख हो वैसा करो!'

तब अतिमुक्त कुमार गौतम स्वामी के साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दक्षिण तरफ से प्रदक्षिणा की। फिर वदना करके पर्युपासना करने लगे।

इधर गौतम स्वामी भगवान् महावीर की सेवा मे उपस्थित हुए, और गमनागमन सवधी प्रतिक्रमण किया, तथा भिक्षा लेने मे लगे हुए दोषो की आलोचना की। फिर लाया हुआ आहार-पानी भगवान् को दिखाया और दिखाकर सयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने अतिमुक्त कुमार को तथा महती परिषद् को धर्म-कथा कही।

अतिमुक्त की प्रव्रज्या : सिद्धि

१८—तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जाव[1] जं नवर—देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि तए ण अहं देवाणुप्पियाणं अतिए जाव[2] पव्वयामि।

अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबंध करेहि।

तए ण से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव[3] [उवागच्छित्ता अम्मा-पिऊणं पायवडणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।" तए ण तस्स अइमुत्तस्स अम्मापियरो एव वयासी—"धन्नो सि तुमं जाया! संपुन्नो सि तुमं जाया! कयत्थो सि तुमं जाया! जं णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए।

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसते। से वि य णं मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए, अभिरुइए। त इच्छामि ण अम्मयाओ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए मुंडे भवित्ता ण अगाराओ अणगारियं] पव्वइत्तए।

---

१ वर्ग ३, सूत्र १८   २ वर्ग ५, सूत्र ४

३. वर्ग ३, सूत्र १८.

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता । कि णं तुमं जाणसि धम्मं ?"

तए ण से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु अह अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि ।

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

"कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणसि जाव [तं चेव न जाणसि ? जं चेव न जाणसि] तं चेव जाणसि ?

तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—

"जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्स मरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा कियच्चिरेण वा ? न जाणामि णं अम्मयाओ ! केहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्माययणेहिं जीवा नेरइय जाव[1] उववज्जंति । एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामो णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव[2] पव्वइत्तए ।"

तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव[3] तं इच्छामो ते जाया ! एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए । तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयण-मणुयत्तमाणे तुसिणीए सचिट्ठइ । अभिसेओ जहा महाबलस्स । निक्खमणं । जाव[4] सामाइयमाइयाइं एक्कारस अगाइं अहिज्जइ । बहूहिं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, गुणरयणं तवोकम्मं जाव[5] विपुले सिद्धे ।

अतिमुक्त कुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्मकथा सुनकर और उसे धारण कर बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ । विशेष यह है कि उसने कहा—"देवानुप्रिय ! मै माता-पिता से पूछता हूँ । तब मैं देवानुप्रिय के पास यावत् दीक्षा ग्रहण करूंगा"

भगवान् महावीर बोले—"हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हे सुख हो वैसे करो । पर धर्मकार्य मे प्रमाद मत करो ।"

तत्पश्चात् अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास पहुँचे । उनके चरणो मे प्रणाम किया और कहा—'माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म श्रवण किया है । वह धर्म मुझे इष्ट लगा है, पुन. पुन इष्ट प्रतीत हुआ है और खूब रुचा है ।'

अतिमुक्त कुमार के माता-पिता ने कहा—वत्स ! तुम धन्य हो, वत्स ! तुम पुण्यशाली हो, वत्स ! तुम कृतार्थ हो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुम्हे इष्ट, पुन पुन इष्ट और रुचिकर हुआ है ।

१ इसी मे
२ वर्ग ६, सूत्र १८
३-४ वर्ग ३, सूत्र १८
५ वर्ग १, सूत्र ९

तव अतिमुक्त कुमार ने दूसरी और तीसरी वार भी यही कहा—'माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्म सुना है और वह धर्म मुझे इष्ट, प्रतीष्ट और रुचिकर हुआ है। अतएव मैं हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर के निकट मुण्डित होकर, गृहत्याग करके अनगार-दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।'

इस पर माता-पिता अतिमुक्त कुमार से इस प्रकार वोले—'हे पुत्र ! अभी तुम वालक हो, असवुद्ध हो। अभी तुम धर्म को क्या जानो ?'

तव अतिमुक्त कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार यहा—'हे माता-पिता ! मैं जिसे जानता हूँ, उसे नही जानता हूँ और जिसको नही जानता हूँ उसको जानता हूँ।'

तव अतिमुक्त कुमार से माता-पिता इस प्रकार वोले-पुत्र ! तुम जिसको जानते हो उसको नही जानते और जिसको नही जानते उसको जानते हो, यह कैसे ?

तव अतिमुक्त कुमार ने मात-पिता से इस प्रकार कहा—"माता-पिता ! मै जानता हूँ कि जो जन्मा है उसको अवश्य मरना होगा, पर यह नही जानता कि कव, कहाँ, किस प्रकार और कितने दिन वाद मरना होगा ? फिर मैं यह भी नही जानता कि जीव किन कर्मों के कारण नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव-योनि मे उत्पन्न होते है, पर इतना जानता हूँ कि जीव अपने ही कर्मों के कारण नरक यावत् देवयोनि मे उत्पन्न होते है। इस प्रकार निश्चय ही हे माता-पिता ! मै जिसको जानता हूँ उसी को नही जानता और जिसको नही जानता उसी को जानता हूँ। अत हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा पाकर यावत् प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हू।"

अतिमुक्त कुमार को माता-पिता जव वहुत-सी युक्ति-प्रयुक्तियो से समझाने मे समर्थ नही हुए, तो वोले-हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए तुम्हारी राज्यलक्ष्मी की शोभा देखना चाहते है। तव अतिमुक्त कुमार माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करके मौन रहे। तव महावल के समान उनका राज्याभिषेक हुआ फिर भगवान् के पास दीक्षा लेकर सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया। वहुत वर्षो तक श्रमण-चारित्र का पालन किया। गुणरत्नसवत्सर तप का आराधन किया, यावत् विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे राजकुमार अतिमुक्त कुमार तथा उनके माता-पिता के मध्य मे हुए प्रश्नोत्तरो का सुन्दर विवरण प्राप्त होता है। अतिमुक्त कुमार ने जव अपने माता-पिता से एक ही विषय को जानने और न जानने की वात कही तो माता-पिता आश्चर्यचकित हो गये। इसी कारण माता-पिता ने अपने पुत्र को उसका स्पष्टीकरण करने को कहा। तव उसने अपने माता-पिता के सन्मुख दो वाते रखी—

१—मैं जिसे जानता हूँ, उसे नही जानता हूँ।

२—जिसे नही जानता हूँ, उसे जानता हूँ।

राजकुमार अतिमुक्त की ये वाते सुनकर माता-पिता को वडा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—"जिसे जान लिया गया है, उसे न जानने का क्या मतलव ? और जिसे नही जाना, उसे जानने का क्या अर्थ ? जव ज्ञान अज्ञान और अज्ञान ज्ञान नही कहलाता तो अतिमुक्त कुमार के ऐसा कहने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? अन्त मे उन्होने अतिमुक्त कुमार से कहा—"पुत्र ! अपने वक्तव्य को कुछ स्पष्ट करो। तुम्हारी यह प्रहेलिका हमारी समझ मे नही आई।"

अतिमुक्त कुमार ने अपनी बात स्पष्ट करते हुआ कहा कि धर्म के सबध मे मै सर्वथा अनभिज्ञ हूँ ऐसी बात नही है । धर्म की पूर्ण परिभाषा मै नही जानता तथापि कुछ न कुछ जानता अवश्य हूँ । मुझे नन्हा बालक समझकर ऐसा न मान ले कि धर्म-तत्त्व से मै सर्वथा अपरिचित हूँ । मुझे इस बात का बोध है कि जो पैदा हुआ है, उसे एक दिन मरना है, जन्म के साथ मृत्यु का अनादि कालीन सबध है । जन्म लेने वाले को एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पडता है । यह मैं जानता हूँ, पर मुझे यह नही पता कि कब ? कहाँ और कैसे ? कितने समय के अनन्तर मृत्यु का प्रहार सहन करना पडेगा ? मैं यह नही समझता कि जीव किन कर्मबन्ध के कारणो से चारो गतियो मे जन्म लेते है परन्तु मै यह अवश्य जानता हूँ कि अपने किए हुए कर्मों के कारण ही जीव नरकादि गतियो मे उत्पन्न होते है ।

अतिमुक्त कुमार के प्रस्तुत कथानक मे अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है ।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त "कम्माययणेहि" शब्द का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है— "कम्मायणेहि त्ति, कर्मणा ज्ञानावरणीयादीनामायतनानि आदानानि वधहेतव इत्यर्थ । पाठान्तरेण "कम्मावयणेहि त्ति' तत्र कर्मापतनानि यै कर्मापतति-आत्मनि सभवति, तानि तथा"—अर्थात् "कर्म" शब्द ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों का ससूचक है और "आयतन" शब्द वध के कारणो का परिचायक है । कही-कही "कम्माययणेहि" के स्थान पर "कम्मावयणेहि" ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है । जिन कारणो से कर्म आत्म-सरोवर मे गिरते हैं, आत्म-प्रदेशो से सबधित होते है, उन्हे कर्मापतन कहते हैं । दोनो का आशय एक ही है ।

अतिमुक्त कुमार के जीवन सबधी अतगडसूत्र के इस वर्णन के अतिरिक्त भगवतीसूत्र के चतुर्थ उद्देशक मे मुनि अतिमुक्त के जीवन की एक घटना का बडा सुन्दर विवेचन मिलता है । यहाँ आवश्यक होने से उसका उल्लेख किया जा रहा है—

'तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए । तए ण से अइमुत्ते कुमारसमणे अण्णया कयाइ महावुट्ठिकायसि णिवयमाणसि कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए बहिया सपट्ठिए विहाराए । तए ण अइमुत्ते कुमारसमणे वाहय वहमाण पासइ, पासित्ता मट्टियाए पालि वधई, वधित्ता 'णाविया मे णाविया मे' णाविओ विव णावमय पडिग्गह उदगसि कट्टु पव्वाहमाणे पव्वाहमाणे अभिरमई, त च थेरा अदक्खु, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एव वयासी—

एव खलु देवाणुप्पियाण अतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे भगव, से ण भते ! अइमुत्ते कुमारसमणे कइहि भवग्गहणेहि सिज्झिहिइ, जाव अत करेहिइ ?

अज्जो ! त्ति समणे भगव महावीरे ते थेरे एव वयासी—एव खलु अज्जो ! मम अतेवासी अइमुत्ते णाम कुमारसमणे पगइभद्दए, जाव-विणीए, से ण अइमुत्ते कुमारसमणे इमेण चेव भवग्गहणेण सिज्झिहिइ जाव अत करिहिइ, त मा ण अज्जो ! तुब्भे अइमुत्त कुमारसमण हीलेह, निदह, खिसह, गरहह, अवमण्णह, तुब्भे ण देवाणुप्पिया ! अइमुत्त कुमारसमण अगिलाए सगिण्हह, अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेण पाणेण विणएण वेयावडिय करेह । अइमुत्ते ण कुमारसमणे अतकरे चेव,

अतिमसरीरिए चेव, तए ण ते थेरा भगवतो समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ता समाणा समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, अइमुत्त कुमारसमण अगिलाए सगिण्हति, जाव वेयावडिय करेति।

अर्थात्—उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य अतिमुक्त नाम कुमार श्रमण थे। वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे। वे अतिमुक्त कुमार श्रमण किसी दिन महावर्षा वरसने पर अपना रजोहरण कांख-वगल मे लेकर तथा पात्र लेकर वाहर स्थडिल-हेतु गये। जाते हुए अतिमुक्त कुमार श्रमण ने मार्ग मे वहते हुए पानी के एक छोटे नाले को देखा। उसे देखकर उन्होने उस नाले की मिट्टी की पाल वाधी। इसके वाद जिस प्रकार नाविक अपनी नाव को पानी मे छोडता है, उसी तरह उन्होने भी अपने पात्र को उस पानी मे छोडा, और "यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है"—ऐसा कह कर पात्र को पानी मे तिराते हुए क्रीडा करने लगे। अतिमुक्त कुमार श्रमण को ऐसा करते हुए देखकर स्थविर मुनि उन्हे कुछ कहे विना ही चले आए, और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से उन्होने पूछा—

भगवन्! आपका शिष्य अतिमुक्त कुमार श्रमण कितने भव करने के वाद सिद्ध होगा? यावत् सव दुखो का अन्त करेगा?

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उन स्थविर मुनियो को सवोधित करके कहने लगे—हे आर्यो! प्रकृति से भद्र यावत् प्रकृति से विनीत मेरा अतेवासी अतिमुक्त कुमार, इसी भव मे सिद्ध होगा यावत् सभी दु खो का अन्त करेगा। अत हे आर्यो! तुम अतिमुक्त कुमार श्रमण की हीलना, निन्दा, खिसना, गर्हा और अपमान मत करो। किन्तु तुम अग्लान भाव से अतिमुक्त कुमार श्रमण को ग्रहण करो। उसकी सहायता करो और आहार पानी के द्वारा विनयपूर्वक वैयावृत्य करो। अतिमुक्त कुमार श्रमण चरमशरीरी है और इसी भव मे सव कर्मो का क्षय करने वाला है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा यह वृत्तान्त सुनकर उन स्थविर मुनियो ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार किया। फिर वे स्थविर मुनि अतिमुक्त कुमारश्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर यावत् उनकी वैयावृत्य करने लगे।

सोलहवा अध्ययन

अलक्ष

२०—तेणं कालेणं तेण समएण वाणारसी नयरी, काममहावणे चेइए। तत्थ ण वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था।

तेणं कालेणं तेणं समएण समणे भगव महावीरे जाव[1] विहरइ। परिसा निग्गया। तए ण अलक्के राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे हट्ठतुट्ठे जहा कोणिए जाव[2] धम्मकहा।

तए णं से अलक्के राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए जहा उदायणे तहा निक्खते, नवरं जेट्ठपुत्त रज्जे अभिसिचइ। एक्कारस अंगाइं। वहू वासा परियाओ जाव[3] विपुले सिद्धे।

एवं खलु जबू! समणेणं भगवया महावीरेण अट्ठमस्स अगस्स अतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

---

१ वर्ग ६, सूत्र १५ २ उववाई

३ वर्ग १, सूत्र ९

उस काल और उस समय वाणारसी नगरी मे काममहावन नामक उद्यान था। उस वाणारसी नगरी मे अलक्ष नामक राजा था।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर यावत् महावन उद्यान मे पधारे। जन-परिषद् प्रभु-वन्दन को निकली, राजा अलक्ष भी प्रभु महावीर के पधारने की वात सुनकर प्रसन्न हुआ और कोणिक राजा के समान वह भी यावत् प्रभु की सेवा मे उपासना करने लगा। प्रभु ने धर्मकथा कही।

तब अलक्ष राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास 'उदायन' की तरह श्रमणदीक्षा ग्रहण की। विशेषता यह कि उन्होने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर विठाया। ग्यारह अगो का अध्ययन किया। वहुत वर्षों तक श्रमणचारित्र का पालन किया यावत् विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार "हे जवू! श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अग अतगड दशा के छट्ठे वर्ग का यह अर्थ कहा है।"

विवेचन—प्रस्तुत सोलहवे अध्ययन मे वाराणसी नगरी के अलक्ष नरेश के जीवन का उल्लेख किया गया है। अलक्ष नरेश भगवान् महावीर के चरणो मे परम श्रद्धालु भक्त थे। इनकी प्रभु चरणो मे निष्ठा एव आस्था का दिग्दर्शन कराने के लिये सूत्रकार ने चपा-नरेश कूणिक की ओर सकेत किया है, जिसका वर्णन औपपातिक सूत्र मे है।

"जहा उदायणे तहा निक्खते" का अर्थ है—जिस प्रकार महाराजा उदायन ने दीक्षा ग्रहण की थी, उसी प्रकार अलक्ष नरेश भी दीक्षित हुए।

उदायन राजा का वर्णन भगवतीसूत्र के शतक १३ उ ६ मे आया है। उसके अनुसार उदायन सिन्धु-सौवीर आदि सोलह देशो का स्वामी था।

एक दिन वह पौषधशाला मे पौषध करके वैठा हुआ था। धर्म-जागरण करते हुए उसे भगवान् महावीर की स्मृति आ गई। वह सोचने लगा—वह नगर, कानन धन्य है जहा भगवान् विहार करते है। वे राजा, आदि धन्य है जो भगवान की वाणी सुनते है, उनकी उपासना करते है, अपने हाथ से उन्हे निर्दोष भोजन, वस्त्र, पात्र आदि देते हैं। मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ? मुझे तो उन महाप्रभु के दर्शन करने का भी अवसर नही मिलता। चिन्तन की धारा ऊर्ध्वमुखी होने लगी। उसने सोचा—यदि भगवान् मेरी नगरी मे पधार जाएँ तो मैं उनकी सेवा करू, और साथ ही इस असार ससार को छोडकर दीक्षित हो जाऊ।

उस समय भगवान् चम्पा के पूर्णभद्र उद्यान मे विराजमान थे। वीतभयपुर और चम्पा मे सात सौ कोस का अन्तर था, पर करुणासागर भक्तवत्सल भगवान् महावीर ने अपने भक्त की कामना पूर्ण करने के लिये चम्पा से प्रस्थान कर दिया और धीरे-धीरे यात्रा करते हुए वे उदायन की नगरी मे पधार गये। भगवान् के पधारने के शुभ समाचार पाकर उदायन आनन्द-विभोर हो उठे। वड़े समारोह के साथ राजा, रानी और कुमार सब भगवान् के चरणो मे उपस्थित हुए। धर्म-कथा सुनी, भगवान् की कल्याण-कारिणी वाणी सुनकर उदायन को वैराग्य हो गया। अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिये वह वापस महलो मे आया। शासन का सारा दायित्व अभीच कुमार को

सभला देना चाहिये था, पर उदायन ने सोचा—राज्य को बन्धन का कारण समझ कर मैं त्याग रहा हूँ, फिर अपने पुत्र अभीच कुमार को इस बन्धन मे क्यो फसाऊ ? अपना बन्धन कुमार के गले मे डालूं यह तो उसके साथ अन्याय होगा। अन्त मे राजा ने सारे राज्य मे घोषणा कर दी—कि मेरा उत्तराधिकारी मेरा भागिनेय केशी कुमार है, उसका राज्याभिषेक करके मैं दीक्षित हो जाऊंगा। इस घोषणा से उत्तराधिकारी राजकुमार को महान् दु ख हुआ और वह रुष्ट होकर अपने राज्य से बाहर चला गया। इधर उदायन भानजे को राजा बनाकर दीक्षित हो गये।

एक बार मुनि उदायन अस्वस्थ हो गये। वे भ्रमण करते हुए अपनी नगरी वीतभयपुर मे आए पर केशीकुमार बदल चुका था। उसको भय हो गया कि कही उदायन पुन राज्य न लेना चाहते हो ! अत· उसने नगर मे सबको आदेश दे दिया कि—'कोई व्यक्ति उदायन को आहार न दे और न विश्राम करने का स्थान ही दे। जो इस आदेश की अवहेलना करेगा उसे राजा परिवार सहित मौत के घाट उतार देगा।' मृत्यु के भय से किसी भी नागरिक ने उन्हे आश्रय नही दिया। उदायन सारे नगर मे घूमे, तब कही एक कुम्हार को दया आ गई। उसने उन्हे स्थान दिया। अपने गुप्तचरो से यह सूचना पाकर राजा ने उदायन को मरवाने के लिए एक वैद्य को भेजा। वैद्य ने उपचार के निमित्त उदायन को विष खिला दिया। शरीर मे अपार वेदना हुई पर उदायन मुनि ने विष-वेदना को शान्तिपूर्वक सहन किया। भावना की निर्विकारता से उदायन मुनि को अवधिज्ञान हो गया। ज्ञान-प्रकाश होते ही स्थिति समझने मे देर न लगी, पर उन्होने अपने मन को विक्षुब्ध नही होने दिया। धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान की सीढिया पार करके अन्त मे केवलज्ञान प्राप्त किया और मुक्त हो गए।

सत्तमो वग्गो

१-१३ अध्ययन

नदा आदि

१—जइ णं भंते ! समणेण भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं छट्ठस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी-गाहा

१ नंदा तह २. नंदवई, ३. नंदुत्तर ४. नंदिसेणिया चेव ।
५. मरुता ६. सुमरुता ७. महमरुता ८. मरुदेवा य अट्ठमा ।। १ ।।
९. भद्दा य १०. सुभद्दा य, ११. सुजाया १२. सुमणाइया ।
११. भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणिय भज्जाण नामाइं ।। २ ।।

जइ णं भते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया, वण्णओ । तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवी होत्था-वण्णओ । सामी समोसढे, परिसा निग्गया । तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाणं दुरुहइ । जहा पउमावई जाव[1] एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता वीसं वासाइ परियाओ जाव[2] सिद्धा ।

एव तेरस वि देवीओ नंदा-गमेण नेयव्वाओ ।

छठ्ठे वर्ग का अर्थ सुनने के अनन्तर आर्य जवू स्वामी आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन करने लगे—भगवन् ! यावत् मोक्षप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अष्टम अग अतगडदशा के छट्ठे वर्ग का जो अर्थ बताया है, उसका मैने श्रवण कर लिया है, अब श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त भगवान् महावीर ने अष्टम अग अतगड दशा के सातवे वर्ग का जो अर्थ कहा है उसे सुनाने की कृपा करे ।

उसके उत्तर मे सुधर्मा स्वामी ने कहा—सातवे वर्ग के तेरह अध्ययन कहे गये है, जो इस प्रकार है—

गाथार्थ—(१)नन्दा, (२) नन्दवती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दश्रेणिका, (५) मरुता, (६) सुमरुता, (७) महामरुता, (८) मरुद्देवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमनायिका, (१३) भूतदत्ता । ये सव श्रेणिक राजा की रानियाँ थी ।" ये सव श्रेणिक राजा की पत्नियों के नाम है ।

---

१ वर्ग—५, सूत्र ४६

२ वर्ग—५, सूत्र ६

आर्य जवू ने सुधर्मा स्वामी से पूछा—"भगवन्! प्रभु ने सातवे वर्ग के तेरह अध्ययन कहे है तो प्रथम अध्ययन का हे पूज्य! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ कहा है?"

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जवू! उस काल और उस समय मे राजगृह नाम का नगर था। उसके वाहर गुणशीलनामक उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। यहाँ राजवर्णन जान लेना चाहिए। श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की रानी थी, उसका भी वर्णन औपपातिक सूत्र के राज्ञीवर्णन के समान समझ लेना चाहिए। प्रभु महावीर राजगृह नगर के उद्यान मे पधारे। परिषद् वन्दन करने को निकली। नन्दा देवी भगवान् के आने का समाचार सुनकर वहुत प्रसन्न हुई और आज्ञाकारी सेवक को वुलाकर धार्मिक-रथ लाने की आज्ञा दी। पद्मावती की तरह इसने भी दीक्षा ली यावत् ग्यारह अगो का अध्ययन किया। वीस वर्ष तक चारित्र का पालन किया, अन्त मे सिद्ध हुई।

नन्दवती आदि शेष वारह अध्ययन नन्दा के समान हैं।

अट्ठमो वग्गो

प्रथम अध्ययन

काली

उत्क्षेप

१—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा—

संगहणी गाहा

(१) काली (२) सुकाली (३) महाकाली, (४) कण्हा (५) सुकण्हा (६) महाकण्हा ।
(७) वीरकण्हा य बोधव्वा, (८) रामकण्हा तहेव य ।
(९) पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी (१०) महासेणकण्हा य ।।१।।

जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था । पुण्णभद्दे चेइए । तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए राया, वण्णओ । तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया, काली नामं देवी होत्था, वण्णओ । जहा नंदा जाव[1] सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । बहूहिं चउत्थ जाव[2] अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

श्रीजंबू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया—"भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त भगवान् महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के आठवें वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?"

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त प्रभु महावीर ने आठवें अंग अंतगडदशा के आठवें वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं—

गाथार्थ—(१) काली, (२) सुकाली, (३) महाकाली, (४) कृष्णा, (५) सुकृष्णा, (६) महाकृष्णा, (७) वीरकृष्णा, (८) रामकृष्णा, (९) पितुसेनकृष्णा और (१०) महासेनकृष्णा ।

श्री जंबूस्वामी ने पुनः प्रश्न किया—"भगवन् ! यदि आठवें वर्ग के दश अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्तिप्राप्त महावीर ने क्या अर्थ कहा है ?"

आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जंबू ! उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी

---

१ वर्ग ५, सूत्र ४, ६

२ वर्ग १, सूत्र ९

थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। वहाँ कोणिक राजा राज्य करता था। उस चम्पानगरी मे श्रेणिक राजा की रानी और महाराजा कोणिक की छोटी माता काली नाम की देवी थी। औपपातिकसूत्र के अनुसार उसका वर्णन कहना चाहिए। नन्दा देवी के समान काली रानी ने भी प्रभु महावीर के समीप श्रमणीदीक्षा ग्रहण करके सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया एव बहुत से उपवास, बेले, तेले आदि तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

काली आर्या का रत्नावली तप

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एव वयासी—

"इच्छामि ण अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जित्ता ण विहरित्तए।"

अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबधं करेहि।

तए ण सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तव उवसंपज्जित्ता ण विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठ छट्ठाइ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउवीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। छव्वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। बत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोत्तीस छट्ठाइ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। तीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउवीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। वीसइम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउत्थं करेइ,

करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठ छट्ठाइ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी एगेण संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव [अहाअत्थं अहात्तच्च अहामग्गं अहाकप्प सम्म काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया] आराहिया भवइ।

एक दिन वह काली आर्या, आर्या चन्दना के समीप आयी और आकर हाथ जोड कर विनयपूर्वक इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो मैं रत्नावली तप को अगीकार करके विचरना चाहती हूँ।"

आर्या चन्दना ने कहा—"देवानुप्रिये! जैसे सुख हो वैसा करो, प्रमाद मत करो।"

तब काली आर्या, आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली तप को अगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, वेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ बेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, वेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दशम-चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, द्वादशम-पचोला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, छह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दश उपवास किये, करके, सर्वगुणकामयुक्त पारणा किया, पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, वारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेरह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौदह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सोलह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौतीस वेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सोलह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, पन्द्रह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, चौदह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, तेरह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, वारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, ग्यारह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, दस उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, नव उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त

पारणा किया, पारणा करके, सात उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, छह उपवास किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, पचोला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, तेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, वेला किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, पारणा करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, आठ वेले किये, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, वेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार इस रत्नावली तपश्चरण की प्रथम परिपाटी की काली आर्या ने आराधना की।

सूत्रानुसार रत्नावली तप की इस आराधना की प्रथम परिपाटी (लडी) एक वर्ष तीन
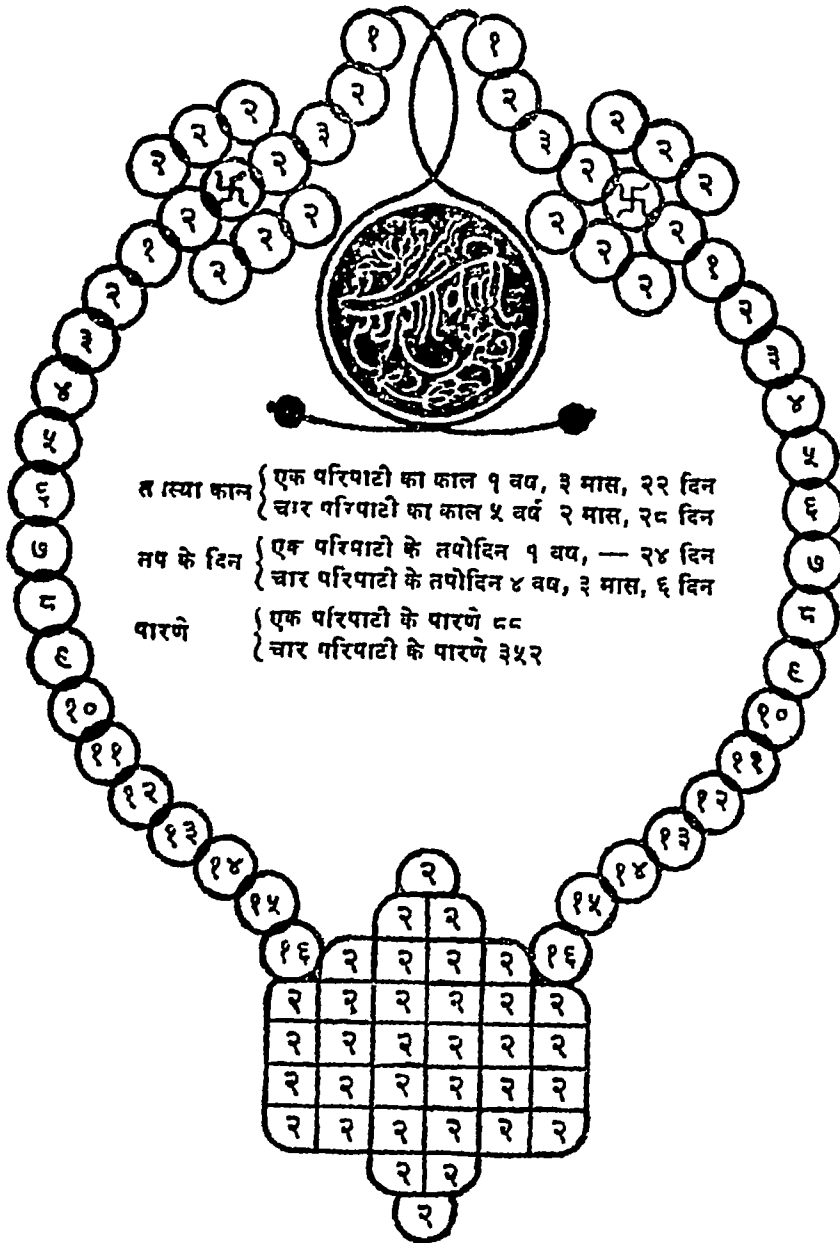
रत्नावली तप का स्थापना-यन्त्र

मास और वाईस अहोरात्र मे, [यथासूत्र, अर्थानुसार, तदुभयानुसार, मार्गानुसार, कल्पानुसार सम्यक्प्रकार से, काया द्वारा स्पर्श कर, पालकर शोधित कर, पार कर प्रशसनीय] आराधना पूर्ण की।

विवेचन—रयणावली का अर्थ वृत्तिकार[1] के शब्दो मे इस प्रकार है—रयणावलि त्ति, रत्नावली आभरणविशेष, रत्नावलीतप रत्नावली। यथाहि रत्नावली उभयत आदी सूक्ष्म-स्थूल-स्थूलतर-विभाग-काहलिकाख्य-सौवर्णावयवद्वययुक्ता भवति, पुनर्मध्यदेशे स्थूलविशिष्टमण्यल्कृता च भवति, एव यत्तप पट्टादावुपदर्श्यमानमिममाकार धारयति तद्ररत्नावलीत्युच्यते-अर्थात् रत्नावली एक आभूषण विशेष होता है। उसकी रचना के समान जिस तप का आराधन किया जाये उसको रत्नावली तप कहते है। जैसे रत्नावली भूषण दोनो ओर से आरभ मे सूक्ष्म फिर स्थूल, फिर उस से अधिक स्थूल, मध्य मे विशेष स्थूल मणियो से युक्त होता है, वैसे ही जो तप आरभ मे स्वल्प फिर अधिक, फिर विशेष अधिक होता चला जाता है वह रत्नावली है। जिस प्रकार रत्नावली से शरीर की शोभा बढती है उसी प्रकार रत्नावली तप आत्मा को सद्गुणो से विभूपित करता है। रत्नावली तप मे पांच वर्ष दो मास और अट्ठाईस दिन लगते है।

इस तप का यन्त्र पूर्व पृष्ठ पर दिया गया है।

३—तयाणतर च णं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता विगइवज्ज पारेइ। एव जहा पढमाए परिवाडीए तहा बीयाए वि, नवरं—सव्वपारणए विगइवज्ज पारेइ जाव [एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स विइया परिवाडी एगेण सवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं जाव[2] आराहिया भवइ।

तयाणतरं च ण तच्चाए परिवाडीए चउत्थ करेइ, करेत्ता अलेवाडं पारेइ। सेसं तहेव। नवर अलेवाड पारेइ।

एवं चउत्था परिवाडी। नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ। सेसं त चेव।

सगहणी गाहा

पढमंमि सव्वकामं, पारणयं बिइयए विगइवज्जं।
तइयंमि अलेवाड, आयबिलमो चउत्थम्मि॥१॥

तए ण सा काली अज्जा रयणावलीतवोकम्मं पचहिं सवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठवीसाए य दिवसेहिं अहासुत्त जाव[3] आराहेत्ता जेणेव अज्जचदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचदण अज्जं वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

इस एक परिपाटी मे तीन सौ चोरासी दिन तपस्या के एव अठासी दिन पारणा के होते हैं। इस प्रकार कुल चार सौ बहत्तर दिन होते है। इसके पश्चात् दूसरी परिपाटी मे काली आर्या ने उपवास किया और विकृति (विगय) रहित पारणा किया, बेला किया और विगय रहित पारणा किया। इस प्रकार यह भी पहली परिपाटी के समान है। इसमे केवल यह विशेष (अन्तर) है कि पारणा विगयरहित होता है। इस प्रकार सूत्रानुसार इस दूसरी परिपाटी का आराधन किया जाता है।

१ अन्तगडसूत्र—सवृत्ति-पत्र-२५ २-३ वर्ग ८, सूत्र २.

इसके पश्चात् तीसरी परिपाटी मे वह काली आर्या उपवास करती है और लेपरहित पारणा करती है। शेष पहले की तरह है।

ऐसे ही काली आर्या ने चौथी परिपाटी की आराधना की। इसमे विशेषता यह है कि सब पारणे आयंबिल से करती है। शेष उसी प्रकार है।

गाथार्थ—

प्रथम परिपाटी मे सर्वकामगुण, दूसरी मे विगयरहित पारणा किया। तीसरी मे लेप रहित और चौथी परिपाटी मे आयंबिल से पारणा किया।

इस भांति काली आर्या ने रत्नावली तप की पांच वर्ष दो मास और अट्ठाईस दिनो मे सूत्रानुसार यावत् आराधना पूर्ण करके जहाँ आर्या चन्दना थी वहाँ आई और आर्या चंदना को वंदना-नमस्कार किया। तदनन्तर बहुत से उपवास, बेला, तेला, चार, पाँच आदि अनशन तप से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

विवेचन—"अलेवाड" अर्थात् जिस भोजन मे विकृति का लेप भी न हो, जो भोजन घृतादि से चुपड़ा हुआ भी न हो एकदम रूखा हो, उसे अलेपकृत कहते हैं।

'आयंबिल'—शब्द प्राकृतभाषा का है। संस्कृत मे इसके आचाम्ल, आचामाम्ल तथा आयामाम्ल, ये तीन रूप बनते हैं। इनमे एक ही बार घृत-दूध-दधि-तेल-गुड-शक्कर आदि से रहित नीरस भोजन करना होता है। यथा—चावल, उडद, सत्तू भुने हुए चने आदि।

रत्नावली तप की चारो परिपाटियो मे पाँच वर्ष, दो मास और २८ दिन लगते है।

काली आर्या की अन्तिम साधना : सिद्धि

४—तए णं सा काली अज्जा तेणं उरालेण जाव [विउलेणं पयत्तेण पग्गहिएण कल्लाणेणं सिवेणं धण्णेण मंगल्लेणं सस्सिरीएण उदग्गेणं उदत्तेण उत्तमेण उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेण सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठिचम्मावणद्धा किडिकिडियाभूया किसा] धमणिसंतया जाया यावि होत्था। से जहा इंगालसगडी वा जाव [उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, एवामेव कालीए वि अज्जा ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेण, अवचिए मंस-सोणिएण] हुयहुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं, तेएण, तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी-उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता-वरत्तकाले अयमज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था, जहा खंदयस्स चिंता जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे तावता मे सेयं कल्लं जाव[1] जलते अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए संलेहणा-झूसणा-झूसियाए भत्तपाण-पडियाइक्खाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जो! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा जाव[2] विहरित्तए। अहासुहं।

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा-झूसणा-झूसिया जाव[3]

---

१ वर्ग ३, सूत्र २२ २ ३ ऊपर आ चुका है।

विहरइ। तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइ अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता, जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[1] चरिमुस्सासेहिं सिद्धा। निक्खेवओ।

तत्पश्चात् काली आर्या, उस उराल-प्रधान, [विपुल, दीर्घकालीन, विस्तीर्ण, सश्रीक-शोभा-सम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, नीरोगता-जनक, शिव-मुक्ति के कारण, धन्य मागल्य-पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम-अज्ञान अन्धकार से रहित और महान् प्रभाववाले, तप कर्म से शुष्क-नीरस शरीरवाली, भूखी, रूक्ष, मासरहित] और नसो से व्याप्त हो गयी थी। जैसे कोई कोयलो से भरी गाडी हो, सूखी लकडियो से भरी गाडी हो, पत्तो से भरी गाडी हो, धूप मे डालकर सुखाई हो अर्थात् कोयला, लकडी पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हो और फिर गाडी मे भरे गये हो, तो वह गाडी खडखड आवाज करती हुई चलती है और ठहरती है, उसी प्रकार काली आर्या हाडो की खडखडाहट के साथ चलती थी और खडखडाहट के साथ खडी रहती थी। वह तपस्या से तो उपचित-वृद्धि को प्राप्त थी, मगर मास और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गई थी।] भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रही थी।

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर मे काली आर्या के हृदय मे स्कन्दकमुनि के समान विचार उत्पन्न हुआ—"इस कठोर तप-साधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। तथापि जब तक मेरे इस शरीर मे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है, मन मे श्रद्धा, धैर्य एव वैराग्य है तब तक मेरे लिये उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्या चदना से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर, सलेखना झूषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके मृत्यु के प्रति निष्काम हो कर विचरण करूँ।" ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चदना थी वहाँ आई और आर्या चन्दना को वदना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं सलेखना झूषणा करती हुई विचरना चाहती हूँ। आर्या चन्दना ने कहा—"हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हे सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य मे विलम्ब न करो।" तब आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर काली आर्या सलेखना झूषणा ग्रहण करके यावत् विचरने लगी। काली आर्या ने आर्य-चन्दना आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन करके एक मास की सलेखना से आत्मा को झूषित कर साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर, जिस हेतु से सयम ग्रहण किया था यावत् उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण किया और सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गई।

विवेचन—आर्या काली ने अपनी गुरुणी से ग्यारह अगशास्त्रो का अध्ययन किया, इस कथन से यह बात भली भाति प्रमाणित हो जाती है कि जिस प्रकार साधु को अगशास्त्र पढने का अधिकार है उसी प्रकार साध्वी को भी है। इसके अतिरिक्त काली देवी की जीवनी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि परम-कल्याणरूप निर्वाणपद की प्राप्ति मे साधु और साध्वी दोनो का समान अधिकार है।

व्यवहारसूत्र के दसवे उद्देशक मे साधु-साध्वी के पाठ्य-क्रम का वर्णन किया गया है। वहाँ लिखा है कि दस वर्ष की दीक्षावाला साधु व्याख्याप्रज्ञप्ति—(भगवती) सूत्र पढ सकता है, इससे पहले

१ वर्ग ५, सूत्र ६

नही । परन्तु काली देवी की दीक्षा आठ वर्ष की थी, उसने ग्यारह अग पढे । ऐसी दशा मे यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि व्यवहारसूत्रानुसार काली देवी ने अगशास्त्र पढने की अधिकारिणी न होते हुए भी अगशास्त्रो का अध्ययन क्यो किया ?

उत्तर मे निवेदन है कि स्थानाग भगवती आदि सूत्रो मे पाच प्रकार के व्यवहार वतलाए गये है । मोक्षाभिलापी आत्माओ की प्रवृत्ति और निवृत्ति एव तत्कारणक ज्ञान विशेष को व्यवहार कहते है । पाच व्यवहार इस प्रकार है—

१. **आगमव्यवहार**—केवलज्ञान, मन पर्यवज्ञान, अवधिज्ञान, चौदहपूर्व, दश पूर्व और नव पूर्व का अध्ययन आगम कहलाता है । आगम से प्रवृत्ति एव निवृत्तिरूप व्यवहार को आगम-व्यवहार कहते है ।

२ **श्रुतव्यवहार**—आचारप्रकल्पादि ज्ञान श्रुत है, इससे किया जानेवाला व्यवहार श्रुत-व्यवहार है । नव, दश और चौदह पूर्व का ज्ञान भी श्रुतरूप है, परन्तु अतीन्द्रिय अर्थविषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण होने से उक्त ज्ञान अतिशय वाला है, अत वह आगम रूप माना गया है ।

३. **आज्ञा-व्यवहार**—दो गीतार्थ साधु एक दूसरे से अलग भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे रहे हो और शरीर क्षीण हो जाने से वे विहार मे असमर्थ हो । उनमे से किसी एक को प्रायश्चित्त आने पर वह मुनि योग्य गीतार्थ शिष्य के अभाव मे अकुशल शिष्यो को गीतार्थ मुनि के पास भेजता है और उस के द्वारा आलोचना करता है । गूढ भाषा मे कही हुई आलोचना सुनकर वे गीतार्थ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, सहनन, धैर्य और वलादि का विचार कर स्वय वहा आते है अथवा योग्य गीतार्थ शिष्य को समझाकर भेजते हैं । यदि वैसे शिष्य का भी उनके पास योग न हो तो आलोचना का सदेश लानेवाले के द्वारा ही गूढ अर्थ मे अतिचार की शुद्धि अर्थात् प्रायश्चित्त देते हैं । यह आज्ञा-व्यवहार है ।

४ **धारणा-व्यवहार**—किसी गीतार्थ सविग्न मुनि के द्रव्य-क्षेत्र-काल एव भाव की अपेक्षा जिस अपराध मे जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसकी धारणा से वैसे अपराध मे वैसे ही प्रायश्चित्त का प्रयोग करना धारणा व्यवहार है ।

५. **जीत-व्यवहार**—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-पुरुष प्रतिसेवना का और सहनन, धृति आदि की हानि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीत-व्यवहार है ।

व्यवहारसूत्र मे दस वर्ष के दीक्षित मुनि को भगवतीसूत्र पढाने का जो विधान किया गया है वह प्रायश्चित्त-सूत्र-व्यवहार को लेकर लिखा गया है । आगम-व्यवहार को लेकर चलने वाले महापुरुषो पर यह विधान लागू नही होता । आगम-व्यवहारी जो कहते है उसे उचित ही माना जाता है । उनके किसी व्यवहार मे अनौचित्य के लिये कोई स्थान नही होता ।

काली देवी के सवध मे आठ वर्षो की दीक्षा-पर्याय मे अग-शास्त्र पढने का उल्लेख मिलता है, परतु धन्य अनगार के सवध मे तो लिखा है कि उन्होने नौ मास की दीक्षा-पर्याय मे अग-शास्त्र पढे । इससे स्पष्ट है कि आगम-व्यवहार के सामने सूत्र व्यवहार नगण्य है । इसी दृष्टि से व्याख्या-प्रज्ञप्ति, स्थानाग सूत्र और व्यवहार सूत्र मे लिखा है—"आगमवलिया समणा निग्गथा ।"

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि—व्यवहार सूत्र के अनुसार "दशवर्षीय" दीक्षित साधु को अग पढाए जाते है, पर यह विधान आगम-व्यवहार वाले मुनियो पर लागू नही होता । □

द्वितीय अध्ययन

सुकाली

सुकाली का कनकावली तप

५—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नाम देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि निक्खंता जाव[1] बहूहिं जाव[2] तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव[3] इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली-तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवरं—तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहिं रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए परिवाडीए संवच्छरो, पंच मासा, बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्ठारस दिवसा। सेस तहेव। नव वासा परियाओ जाव[4] सिद्धा।

उस काल और उस समय मे चपा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र उद्यान था और कोणिक राजा वहा राज्य करता था। उस नगरी मे श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली नाम की रानी थी। काली की तरह सुकाली भी प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास आदि तपो से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

फिर वह सुकाली आर्या अन्यदा किसी दिन आर्य-चन्दना आर्या के पास आकर इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं कनकावली तप अगीकार करके विचरना चाहती हूँ।" आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली के समान सुकाली ने कनकावली तप का आराधन किया। विशेषता इसमे यह थी कि तीनो स्थानो पर अष्टम-तेले किये जब कि रत्नावली मे षष्ठ-बेले किये जाते हैं। एक परिपाटी मे एक वर्ष, पाँच मास और बारह अहोरात्रिया लगती है। इस एक परिपाटी मे ८८ दिन का पारणा और १ वर्ष, २ मास १४ दिन का तप होता है। चारो परिपाटी का काल पाच वर्ष, नव मास और अठारह दिन होते है। शेष वर्णन काली आर्या के समान है। नव वर्ष तक चारित्र का पालन कर यावत् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

विवेचन—कनकावली तप और रत्नावली तप मे इतना ही भेद है कि रत्नावली मे जहाँ आठ बेले तथा ३४ बेले किये जाते है, वहाँ कनकावली तप मे आठ तेले और ३४ तेले किये जाते है। शेष तप के दिन बराबर है। पारणे मे भी समानता है। कनकावली तप की एक परिपाटी मे एक वर्ष पाँच मास और १२ दिन लगते हैं। इस प्रकार चारो परिपाटियो के ५ वर्ष ९ मास और १८ दिन होते है। कनकावली की प्रथम परिपाटी की रूपरेखा अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित यत्र द्वारा स्पष्ट होती है।

---

१ वर्ग ५, सूत्र ५-६
२ वर्ग ५, सूत्र ६
३ वर्ग ८, सूत्र ४
४. वर्ग ५, सूत्र ६
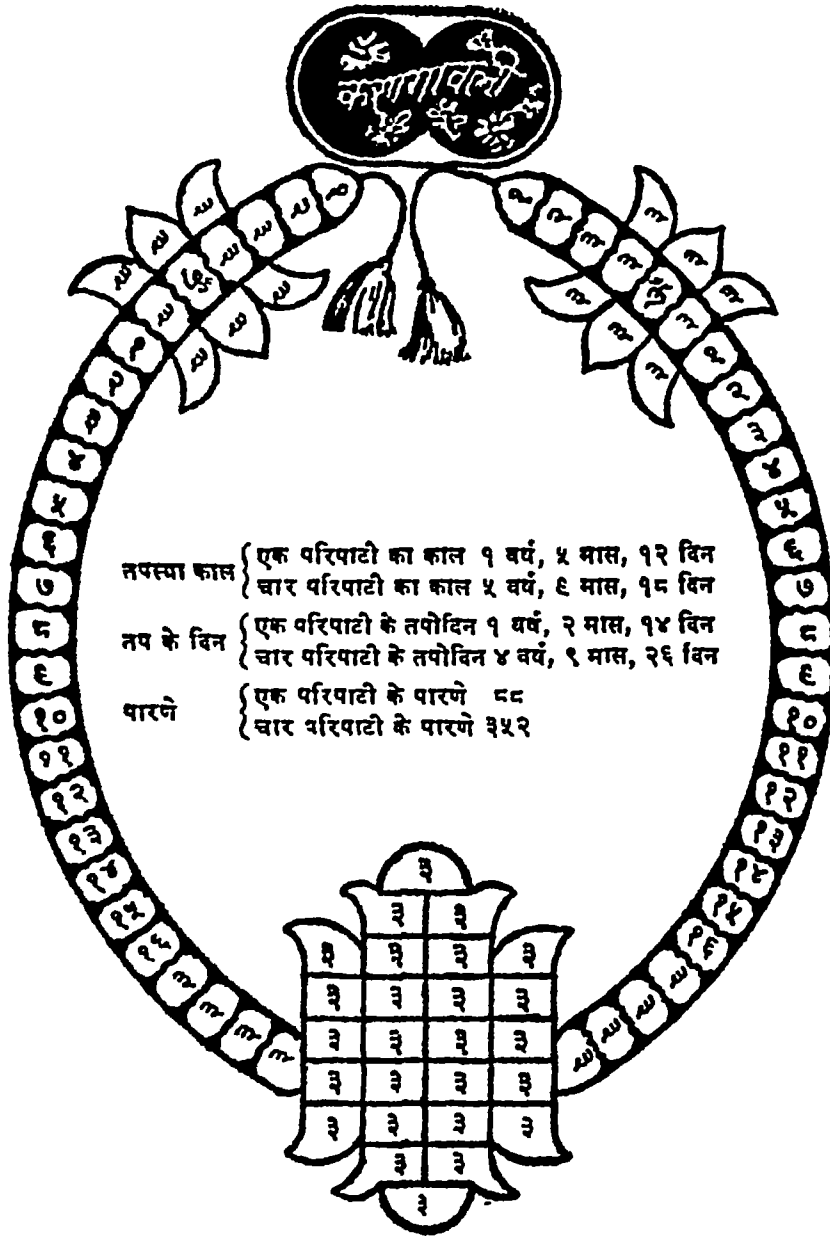
कनकावली
स्थापना-यन्त्र

तृतीय अध्ययन

महाकाली

महाकाली का क्षुल्लकसिंहनिष्क्रीडित तप

६—एवं महाकाली वि। नवरं—खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव[1] सिद्धा।

काली की तरह महाकाली ने भी दीक्षा अंगीकार की। विशेष यह कि उसने लघुसिंहनिष्क्रीडित तप किया जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा

१. वर्ग ८, सूत्र २

किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके मर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके वेला किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्व कामगुक्तयुक्त पारणा किया, करके वेला किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्व कामगुणयुक्त पारणा किया।

इमी प्रकार चारो परिपाटिया समझनी चाहिये। एक परिपाटी मे छह मास और सात दिन लगे। चारो परिपाटियो का काल दो वर्ष और अट्ठाईस दिन होते है यावत् महाकाली आर्या सिद्ध हुई।

विवेचन—आर्या महाकाली ने 'लघुसिंहनिष्क्रीडित तप' की आराधना की थी। प्रस्तुत सूत्र मे इसे "खुड्डाग सीहनिक्कीलिय" कहा है, जिसका अर्थ है—जिस प्रकार गमन करता हुआ सिंह अपने अतिक्रान्त मार्ग को पीछे लौटकर फिर देखता है, उसी प्रकार जिस तप मे अतिक्रमण किए हुए उपवास के दिनो को फिर से सेवन करके आगे बढा जाए।[1]

सिंहनिष्क्रीडित तप दो प्रकार का होता है, एक "लघुसिंहनिष्क्रीडित और दूसरा महासिंह-निष्क्रीडित तप"। प्रस्तुत अध्ययन मे वर्णित आर्या महाकाली ने लघुसिंह निष्क्रीडित तप की आराधना की। इस तप की भी चार परिपाटियाँ होती हैं। एक परिपाटी मे छह मास और सात दिन लगते हैं। ३३ दिन पारणे मे जाते हैं। इस तरह प्रथम परिपाटी ६ मास ७ दिन मे सम्पन्न होती है। चारो परिपाटियो मे दो वर्ष और अट्ठाईस दिन होते हैं।

अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित स्थापना यन्त्र से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

जैसे कालीदेवी ने रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी के पारणे मे दूध घृतादि सभी पदार्थों को गृहण किया, दूसरी परिपाटी के पारणे मे इन रसो को छोड दिया, तीसरी परिपाटी मे लेपमात्र का भी त्याग कर दिया तथा चतुर्थ परिपाटी मे उपवासो का पारणा आयविलो से किया, वैसे ही महाकाली देवी ने लघुसिंह-निष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी मे विगयो को ग्रहण किया, दूसरी मे

---

१ अन्तकृतदशागसूत्र—पत्र-२८/१

त्याग किया, तीसरी मे लेपमात्र का भी त्याग किया, चौथी मे उपवासो का पारणा आयंबिल तप से किया।
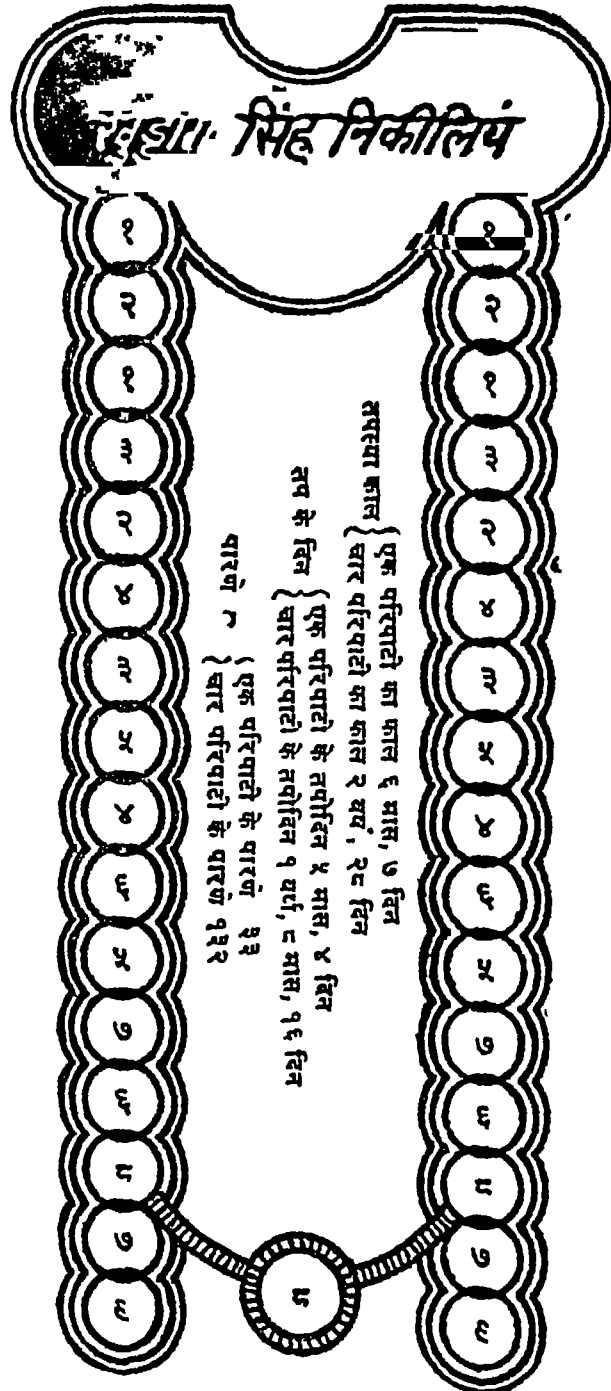
चतुर्थ अध्ययन

कृष्णा

कृष्णा देवी का महासिंहनिष्क्रीडित तप

७—एवं कण्हा वि। नवरं—महालयं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं, जहेव खुड्डागं। नवरं—चोत्तीसइम जाव नेयव्वं। 'तहेव ओसारेयव्वं'। एक्काए वरिस छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छव्वरिसा दो मासा वारस य अहोरत्ता। सेस जहा कालीए जाव[1] सिद्धा।

इसी प्रकार कृष्णा रानी के विषय मे भी समझना। विशेप यह कि कृष्णा ने महासिंहनिष्क्रीडित तप किया। लघुसिंहनिष्क्रीडित तप से इसमे इतनी विशेषता है कि इसमे एक से लेकर १६ तक अनशन तप किया जाता है और उसी प्रकार उतारा जाता है। एक परिपाटी मे एक वर्ष, छह मास और अठारह दिन लगते हैं। चारो परिपाटियो मे छह वर्ष, दो मास और बारह अहोरात्र लगते हैं।

विवेचन—विशेप जानकारी प्रस्तुत यत्र से स्पष्ट होती है—

---

१ वर्ग-५, सूत्र-६

पञ्चम अध्ययन

सुकृष्णा

सुकृष्णा का भिक्षुप्रतिमा आराधन

८—एवं सुकण्हा वि, नवरं—सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्क पाणयस्स।

दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स दो-दो पाणयस्स पडिगाहेइ।

तच्चे सत्तए तिण्णि-तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स, तिण्णि-तिण्णि दत्तीओ पाणयस्स।

चउत्थे सत्तए चत्तारि-चत्तारि दत्तीओ भोयणस्स, चत्तारि-चत्तारि दत्तीओ पाणयस्स।

पचमे सत्तए पंच-पच दत्तीओ भोयणस्स, पच-पंच दत्तीओ पाणयस्स।

छट्ठे सत्तए छ-छ दत्तीओ भोयणस्स, छ-छ दत्तीओ पाणयस्स।
सत्तमे सत्तए सत्त-सत्त दत्तीओ भोयणस्स, सत्त-सत्त दत्तीओ पाणयस्स पडिगाहेइ।

एवं खलु एयं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएण भिक्खा-सएण अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेहि।

काली आर्या की तरह आर्या सुकृष्णा ने भी दीक्षा ग्रहण की। विशेष यह कि वह सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा ग्रहण करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

प्रथम सप्तक मे एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। द्वितीय सप्तक मे दो दत्ति भोजन की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की। तृतीय सप्तक मे तीन दत्ति भोजन की और तीन दत्ति पानी की ग्रहण की। चतुर्थ सप्तक मे चार दत्ति भोजन की और चार दत्ति पानी की ग्रहण की। पाचवे सप्तक मे पाच दत्ति भोजन की और पाच दत्ति पानी की ग्रहण की। छट्ठे सप्तक मे छह दत्ति भोजन की और छह दत्ति पानी की ग्रहण की। सातवे सप्तक मे सात दत्ति भोजन की और सात दत्ति पानी की ग्रहण की।

इस प्रकार उनपचास (४९) रात-दिन मे एक सौ छियानवे (१९६) भिक्षा की दत्तिया होती हैं। सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि के अनुसार इसी 'सप्तसप्तमिका' भिक्षुप्रतिमा तप की सम्यग्

१ वर्ग ८, सूत्र २

आराधना की। इसमे आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह मे सात दत्तिया हुई, दूसरे सप्ताह मे चौदह, तीसरे सप्ताह मे इक्कीस, चौथे मे अट्ठाईस, पाचवें मे पैंतीस, छट्ठे मे बयालीस और सातवे सप्ताह मे उनपचास दत्तिया होती हैं। इस प्रकार सभी मिलाकर कुल एक सौ छियानवे (१९६) दत्तिया हुई। इस तरह सूत्रानुसार इस प्रतिमा का आराधन करके सुकृष्णा आर्या आर्य चन्दना आर्या के पास आई और उन्हे वदना नमस्कार करके इस प्रकार बोली—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं 'अष्ट-अष्टमिका' भिक्षु-प्रतिमा तप अगीकार करके विचरू।"

आर्या चन्दना ने कहा—हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हे सुख हो वैसा करो। धर्मकार्य मे प्रमाद मत करो।

विवेचन—तीसरे वर्ग के १९ वे सूत्र मे वर्णित भिक्षुप्रतिमा से यह सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा अलग है। उससे इसका कोई सवध नही है। सातवी भिक्षुप्रतिमा का समय एक मास है और उसमे सात दत्तियाँ भोजन की और सात दत्तिया पानी की ग्रहण की जाती है परन्तु प्रस्तुत अध्ययन मे वर्णित सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा का समय ४९ दिन-रात्रि का है। यह सात सप्ताहो मे पूर्ण होती है (७×७=४९)। प्रथम सप्ताह मे एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है, दूसरे मे दो-दो, तीसरे मे तीन-तोन, चौथे, पाचवे, छट्ठे, सातवें मे एक-एक की वृद्धि क्रमश करते हुए सातवे तक सात-सात दत्तिया अन्न पानी की ग्रहण की जाती हैं। इस सप्तसप्तमिका भिक्षु-प्रतिमा मे समस्त दत्तियो की सख्या १९६ होती है। अत इस भिक्षु-प्रतिमा का उक्त बारह भिक्षु-प्रतिमाओ के साथ कोई सम्वन्ध नही है। इसका स्थापनायत्र इस प्रकार है—
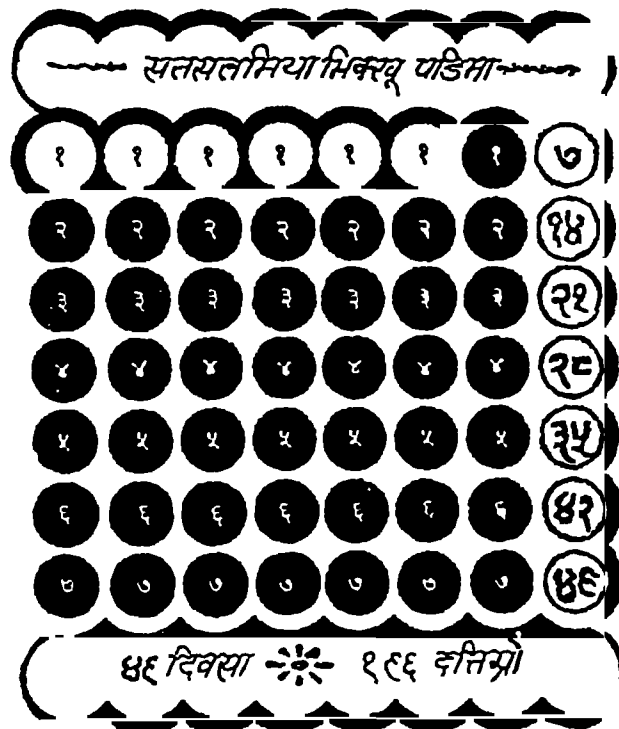
९—तए ण सा सुकण्हा अज्जा अज्जचदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरइ—

पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्ति पडिगाहेइ], अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स पडिगाहेइ, अट्ठट्ठ पाणयस्स ।

एवं खलु एयं अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिम चउसट्ठीए रातिदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[1] आराहित्ता नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्ति पडिगाहेइ] नवमे नवए नव-नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, नव-नव पाणयस्स ।

एवं खलु एयं नवनवमियं भिक्खुपडिमं एक्कासीतिए राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्त जाव[2] आराहेत्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

पढमे दसए एक्केक्क भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणयस्स जाव [दत्ति पडिगाहेइ]।

दसमे दसए दस-दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेइ, दस-दस पाणयस्स ।

एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिम एक्केण राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव[3] आराहेइ, आराहेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणी विहरइ ।

तए ण सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेण तवोकम्मेणं जाव[4] सिद्धा । निक्खेवओ ।

आर्यचन्दना आर्या से आज्ञा प्राप्त होने पर आर्या सुकृष्णा देवी अष्ट-अष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा को धारण कर के विचरने लगी। अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा का स्वरूप इस प्रकार है—

पहले आठ दिनो मे आर्या सुकृष्णा ने एक दत्ति भोजन की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। दूसरे अष्टक मे अन्न-पानी की दो-दो दत्तिया ली। इसी प्रकार क्रम से तीसरे मे तीन-तीन, चौथे मे चार-चार, पाचवे मे पाच-पाच, छट्ठे मे छह-छह, सातवे मे सात-सात और आठवे मे आठ-आठ अन्न-जल की दत्तिया ग्रहण की।

इस अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना मे ६४ दिन लगे और २८८ भिक्षाए ग्रहण की गई। इस भिक्षु-प्रतिमा की सूत्रोक्त पद्धति से आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने नव-नवमिकानामक भिक्षु-प्रतिमा की आराधना आरम्भ कर दी।

नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करते समय आर्या सुकृष्णा ने प्रथम नवक मे प्रतिदिन एक एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इसी प्रकार आगे क्रमश एक-एक दत्ति बढाते हुए नौवे नवक मे अन्न जल की नौ-नौ दत्तिया ग्रहण की।

इस प्रकार यह नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा इक्यासी (८१) दिनो मे पूर्ण हुई। इसमे भिक्षाओ की सख्या ४०५ तथा दिनो की सख्या ८१ होती है। सूत्रोक्त विधि के अनुसार नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने दश-दशमिकानामक भिक्षु प्रतिमा की आराधना आरभ की।

१-२-३ वर्ग ८, सूत्र २
४ वर्ग ८, सूत्र ४

दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करते समय आर्या सुकृष्णा प्रथम दशक मे एक-एक दत्ति भोजन और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण करती है ।

इसी प्रकार एक-एक दत्ति बढाते हुए दसवे दशक मे दस-दस दत्तिया भोजन की और पानी की स्वीकार करती है ।

दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा मे एक सौ रात्रि-दिन लग जाते है । इसमे साढे पाच सौ (५५०) भिक्षाएँ और ११ सौ दत्तिया ग्रहण करनी होती है । सूत्रोक्त विधि के अनुसार दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर आर्या सुकृष्णा ने उपवास, वेला, तेला, चौला, पचौला, छह, सात, आठ, से लेकर १५ तथा मासखमण तक की तपस्या के अतिरिक्त अन्य अनेकविध तपो से अपनी आत्मा को भावित किया ।

इस कठिन तप के कारण आर्या सुकृष्णा अत्यधिक दुर्बल हो गई यावत् सपूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्षगति हो प्राप्त हुई ।

विवेचन—सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा की तरह इस सूत्र मे कथित अष्टअष्टमिका, नव-नवमिका तथा दश-दशमिका भिक्षुप्रतिमाएँ होती है । तीनो का अन्तर यत्रो से स्पष्ट होता है ।

अट्ठअट्ठमिया भिक्खू-पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	८
२	२	२	२	२	२	२	२	१६
३	३	३	३	३	३	३	३	२४
४	४	४	४	४	४	४	४	३२
५	५	५	५	५	५	५	५	४०
६	६	६	६	६	६	६	६	४८
७	७	७	७	७	७	७	७	५६
८	८	८	८	८	८	८	८	[illegible]

६४ दिवसा २८८ दत्तिओ

१	१	१	१	१	१	१	१	१	९
२	२	२	२	२	२	२	२	२	१८
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७
४	४	४	४	४	४	४	४	४	३६
५	५	५	५	५	५	५	५	५	४५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	५४
७	७	७	७	७	७	७	७	७	६३
८	८	८	८	८	८	८	८	८	७२
९	९	९	९	९	९	९	९	९	८१

८१ दिवस : ४०५ दत्तिओ

दसदसमिया भिक्खु-पडिमा

१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१०
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२०
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३०
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४०
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६०
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७०
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९०
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१००

१०० दिवसा • ५५० दत्तिओ

षष्ठ अध्ययन

महाकृष्णा

महाकृष्णा का लघु सर्वतोभद्र तप

१०—एवं महाकण्हा वि, नवरं-खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं खलु एयं खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं दसहि य अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करेत्ता विगइवज्जं पारेइ, पारेत्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ। पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा। सेसं तहेव जाव[2] सिद्धा। निक्खेवओ।

इसी प्रकार महाकृष्णा ने भी दीक्षा ग्रहण की, विशेष—वह लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त

१ वर्ग ८, सूत्र २

२ वर्ग ८, सूत्र ३४

पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

इस प्रकार यह लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र तप-कर्म की प्रथम परिपाटी तीन माह और दस दिनो मे पूर्ण होती है। इसकी सूत्रानुसार सम्यग् रीति (विधि) से आराधना करके आर्या महा-कृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी मे उपवास किया और विगय रहित पारणा किया। जैसे रत्नावली तप मे चार परिपाटिया बताई गई वैसे ही इस मे भी होती है। पारणा भी उसी प्रकार समझना चाहिये। इस की प्रथम परिपाटी मे पूरे सौ दिन लगे, जिसमे पच्चीस दिन पारणा के और ७५ दिन उपवास के होते है। चारो परिपाटियो का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन हुआ।

विवेचन—"खुड्डिय सव्वओभद्द पडिम" मे क्षुल्लक शब्द महद् की अपेक्षा से है। सर्वतोभद्र तप दो प्रकार का है, एक महद् एक लघु। यह लघु है, इस बात को प्रकट करने के लिये क्षुल्लक शब्द का प्रयोग किया गया है। गणना करने पर जिसके अक सम अर्थात् बराबर हो, विषम न हो, जिधर से गणना की जाए उधर से ही समान हो, उसे सर्वतोभद्र कहते है। इसमे एक से लेकर पाच अक दिये जाते है, चारो ओर जिधर से चाहे गिन लें, सभी ओर १५ ही सख्या होती है। एक से पाच तक सभी ओर से गिनने पर एक जैसी सख्या होने से इसे सर्वतोभद्र कहा जाता है। यह प्रस्तुत यत्र से स्पष्ट होती है—

सप्तम अध्ययन

वीरकृष्णा

वीरकृष्णा का महत्सर्वतोभद्र तप

११—एवं—वीरकण्हा वि, नवरं—महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोद्दसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठम करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थ करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो अट्ठ मासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीस दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

---

१ वर्ग ८, सूत्र ३४

आर्या काली की तरह आर्या वीरकृष्णा ने भी दीक्षा अगीकार की। विशेष यह कि उसने महत्सर्वतो भद्र तप कर्म अगीकार किया, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता हुई।

तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया। बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह चौथी लता हुई।

छ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह पाचवी लता हुई।

बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचोला किया, करके

सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया।

इस तरह छठी लता पूर्ण हुई।

पचोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छ उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके वेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चोला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह सातवी लता पूर्ण हुई।

इस प्रकार सात लताओ की परिपाटी का काल आठ मास और पाच दिन हुआ। चारो परिपाटियो का काल दो वर्ष आठ मास और वीस दिन होता है। शेष पूर्ववत्। पूर्ण आराधना करके अन्त मे सलेखना करके वीरकृष्णा भी सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई।

विवेचन—महत्सर्वतोभद्र तप की प्रथम परिपाटी मे तप के १९६ होते हैं और पारणे के दिन ४९। इस प्रकार एक परिपाटी के कुल दिन २४५ होते है। इनको चार गुणा करने पर चारो परिपाटियो के ९८० दिन होते है। प्रस्तुत यत्र मे कही से भी गिनने पर सख्या २८ ही होती है। स्पष्टता के लिए देखे यत्र।

अष्टम अध्ययन

रामकृष्णा

रामकृष्णा का भद्रोत्तरप्रतिमा तप

१२—एवं रामकण्हा वि, नवरं—भद्दोत्तरपडिमं उवसपज्जित्ता णं विहरइ, तं तहा—

दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ; करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ,। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणिय पारेइ।

एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा। चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जहा काली जाव[1] सिद्धा।

आर्या काली की तरह आर्या रामकृष्णा का भी वृत्तान्त समझना चाहिए। विशेष यह कि रामकृष्णा आर्या भद्रोत्तर प्रतिमा अंगीकार करके विचरण करने लगी, जो इस प्रकार है—

पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया।

यह प्रथम लता हुई।

सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया।

यह दूसरी लता हुई।

नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया।

यह तीसरी लता पूर्ण हुई।

---

१ वर्ग ८, सूत्र ३, ४

छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाच उपवास किये, करके सर्वकाम गुणयुक्त पारणा किया।

यह चौथी लता हुई।

आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पाँच उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुण युक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया।

यह पाचवी लता पूर्ण हुई।

इस तरह पाच लताओ की एक परिपाटी हुई। ऐसी चार परिपाटिया इस तप मे होती है। एक परिपाटी का काल छह माह और वीस दिन है। चारो परिपाटियो का काल दो वर्ष, दो माह और वीस दिन होना है। शेष पूर्व वर्णन के अनुसार समझना चाहिये।

काली के समान आर्या रामकृष्णा भी सलेखना करके यावत् सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गई।

विवेचन—भद्रोत्तर प्रतिमा का अर्थ है—भद्रा-कल्याण की प्रदाता, उत्तर-प्रधान। यह प्रतिमा परम कल्याणप्रद होने मे भद्रोत्तरप्रतिमा कही जाती है। यह पाच उपवास से प्रारम्भ होकर नौ उपवास तक जाती है।

नवम अध्ययन

पितृसेनकृष्णा

पितृसेनकृष्णा का मुक्तावली तप

१३—एवं-पिउसेणकण्हा वि, नवरं—मुत्तावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, तं जहा—

चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छट्ठं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चोद्दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठारसमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बावीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउवीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। छव्वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। अट्ठावीसइमं करेइ करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। बत्तीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एवं तहेव ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करेत्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेसं जाव सिद्धा।

पितृसेनकृष्णा का चरित भी आर्या काली[1] की तरह समझना। विशेष यह कि पितृसेनकृष्णा ने मुक्तावली तप अंगीकार किया, जो इस प्रकार है—

उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके तेला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया,

१ वर्ग ८, सूत्र ३-४

करके चौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पचौला किया, करके सर्वकामगुणयुक्त दारणा किया, पारणा करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके छह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सात उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके आठ उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके नव उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके दस उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके ग्यारह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके बारह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकाम-गुणयुक्त पारणा किया, करके तेरह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके चौदह उपवास किये, करके सर्वकामगुण-युक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पन्द्रह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके सोलह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके उपवास किया, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके पन्द्रह उपवास किये, करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया ।

इस प्रकार जिस क्रम से उपवास बढाए जाते है उसी क्रम से उतारते जाते हैं यावत् अन्त मे उपवास करके सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया जाता है ।

इस तरह यह एक परिपाटी हुई । एक परिपाटी का काल ग्यारह माह और पन्द्रह दिन होते हैं । ऐसी चार परिपाटिया इस तप मे होती है । इन चारो परिपाटियो मे तीन वर्ष और दस मास का समय लगता हैं । शेष वर्णन पूर्व की तरह समझना चाहिये ।

विवेचन—मुक्तावली शब्द का अर्थ है—मोतियो का हार । जिस प्रकार मोतियो का हार बनाते समय उन मोतियो की स्थापना की जाती है, उसी प्रकार जिस तप मे उपवासो की स्थापना की जाए उस तप को मुक्तावली तप कहते है । स्पष्टता हेतु (अगले पृष्ठ पर) देखिए यन्त्र ।
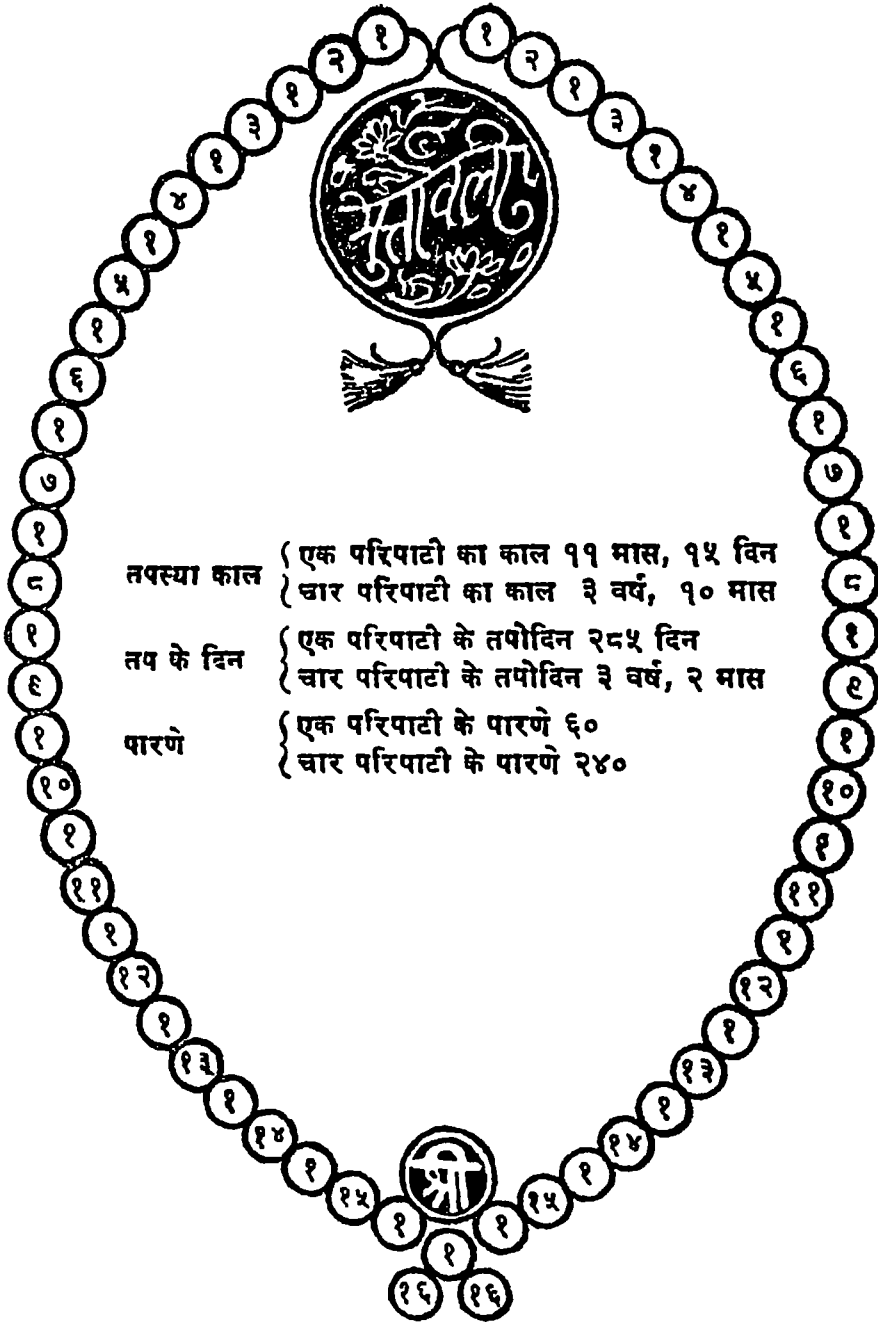
श्री
तपस्या काल { एक परिपाटी का काल ११ मास, १५ दिन
चार परिपाटी का काल ३ वर्ष, १० मास
तप के दिन { एक परिपाटी के तपोदिन २८५ दिन
चार परिपाटी के तपोदिन ३ वर्ष, २ मास
पारणे { एक परिपाटी के पारणे ६०
चार परिपाटी के पारणे २४०
मुक्तावली तप
का
स्थापना-यन्त्र

दशम अध्ययन

महासेनकृष्णा

महासेनकृष्णा का आयंबिल-वर्धमान तप

१४—एवं-महासेणकण्हा वि, नवरं-आयंबिलवड्ढमाण तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता ण विहरइ, तं जहा—

आयंबिलं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। बे आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। पंच आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ। छ आयंबिलाइं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ।

एक्कुत्तरियाए वड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ, करेत्ता चउत्थं करेइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव[1] आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ जाव भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव[2] तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता जहा खंदयस्स, जाव[4] अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ। जाव[5] संलेहणा कालं अणवकंखमाणी विहरइ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे जाव[6] तमट्ठं आराहेइ, आराहित्ता चरिमउस्सास-निस्सासेहिं सिद्धा।

संगहणी-गाहा

अट्ठ य वासा आई, एक्कोत्तरियाए जाव सत्तरस।
एसो खलु परियाओ, सेणियभज्जाण नायव्वो ॥१॥

इसी प्रकार महासेनकृष्णा का वृत्तान्त भी समझना। विशेष यह कि इन्होंने वर्द्धमान-आयंबिल तप अंगीकार किया जो इस प्रकार है—

१ वर्ग ८, सूत्र २
२ वर्ग ५, सूत्र ६
३-४-५ वर्ग ८, सूत्र ४
६ वर्ग ५, सूत्र ६

एक आयविल किया, करके उपवास किया, करके दो आयविल किये, करके उपवास किया, करके तीन आयविल किये, करके उपवास किया, करके चार आयविल किये, करके उपवास किया, करके पाँच आयविल किये, करके उपवास किया, करके छह आयविल किये, करके उपवास किया।

ऐसे एक एक की वृद्धि से आयविल बढाए। बीच-बीच मे उपवास किया, इस प्रकार सौ आयविल तक करके उपवास किया।

इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने इस 'वर्द्धमान-आयविल' तप की आराधना चौदह वर्ष, तीन माह और बीस अहोरात्र की अवधि मे सूत्रानुसार विधिपूर्वक पूर्ण की। आराधना पूर्ण करके आर्या महासेनकृष्णा जहाँ अपनी गुरुणी आर्या चन्दनबाला थी, वहाँ आई और चंदनबाला को वदना-नमस्कार करके, उनकी आज्ञा प्राप्त करके, बहुत से उपवास आदि मे आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस महान् तपतेज से महासेनकृष्णा आर्या शरीर से दुर्बल हो जाने पर भी अत्यन्त देदीप्यमान लगने लगी। एकदा महासेनकृष्णा आर्या को स्कदक के समान धर्म-चिन्तन उत्पन्न हुआ। आर्यचन्दना आर्या से पूछकर यावत् सलेखना की और जीवन-मरण की आकाँक्षा से रहित होकर विचरने लगी।

महासेनकृष्णा आर्या ने आर्यचन्दना आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया, पूरे सत्रह वर्ष तक संयमधर्म का पालन करके, एक मास की सलेखना से आत्मा को भावित करके साठ भक्त अनशन को पूर्णकर यावत् जिस कार्य के लिये सयम लिया था उसकी पूर्ण आराधना करके अन्तिम श्वास-उच्छ्वास से सिद्ध बुद्ध हुई।

गाथार्थ—एव श्रेणिक राजा की भार्याओ मे से पहली काली देवी का दीक्षाकाल आठ वर्ष का, तत्पश्चात् क्रमश एक-एक वर्ष की वृद्धि करते-करते दसवी महासेनकृष्णा का दीक्षाकाल सत्तरह वर्ष का जानना चाहिए।

विवेचन—"आयविलवड्ढमाण"—आयविल-वर्धमान—वह तप है जिसमे आयविल क्रमश बढाया जाता है। इस तप की आराधना मे १४ वर्ष ३ मास और २० दिन लगते है।

पिछले तपो का परिशीलन करने से पता चलता है कि सूत्रकार ने तपो की जो दिन-सख्या लिखी है, उसमे तपस्या के दिन और पारणे के दिन, इस प्रकार सभी दिन सकलित किए जाते हैं। यदि उसी पद्धति का अनुसरण किया जाए तो इसका काल-मान १४ वर्ष ३ माह और २० दिन कैसे हो सकता है? समाधान यही है कि इसमे पारणे का कोई दिन नही आता। इसके दो कारण है—प्रथम तो सूत्रकार जैसे पीछे पारणे का निर्देश करते चले आ रहे है, वैसे यहा पर सूत्रकार ने निर्देश नही किया, दूसरा यदि पारणो के सब दिन भी साथ मे सम्मिलित कर दिए जाए तो इस तप की दिनसख्या १४ वर्ष ३ मास २० दिन न रहकर १४ वर्ष १० दिन हो जाती है। अत यही समझना ठीक है कि आर्या महासेनकृष्णा ने १४ वर्ष ३ मास और २० दिन तक तप किया, बीच मे कोई पारणा नही किया। आयविल-वर्धमान-तप का स्थापनायत्र इस प्रकार है—

आयम्बिल-वर्धमान स्थापना-यन्त्र

१	१	२	१	३	१	४	१	५	१	६	१	७	१	८	१	९	१	१०	१
११	१	१२	१	१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१
२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१
३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१
४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१
५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१
६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१
७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१
८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१
९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१

निक्षेप : उपसहार

१५—एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेण जाव[1] संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते ।

अंतगडदसाणं अगस्स एगो सुयखंधो । अट्ठ वग्गा । अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति । तत्थ पढमबिइयवग्गे दस-दस उद्देसगा । तइयवग्गे तेरस उद्देसगा । चउत्थ-पंचमवग्गे दस-दस उद्देसगा । छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा । सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा । अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा । सेसं जहा नायाधम्मकहाणं ।

इस प्रकार हे जबू ! यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने आठवे अग अन्तकृद्दशा का यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ ।

अतगडदशा अग मे एक श्रुतस्कध है । आठ वर्ग है । आठ ही दिनो मे इनका वाचन होता है । इसमे प्रथम और द्वितीय वर्ग मे दस दस उद्देशक है, तीसरे वर्ग मे तेरह उद्देशक है, चौथे और पाँचवें वर्ग मे दस-दस उद्देशक है, छठे वर्ग मे सोलह उद्देशक है । सातवें वर्ग मे तेरह उद्देशक है और आठवे वर्ग मे दस उद्देशक है । शेष वर्णन ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार जानना चाहिए । □□

---

१ वर्ग १, सूत्र २,

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

आगम में वर्णित विशेषनाम

१ तीर्थंकर विशेष
२ आगम मे वर्णित "जहा" शब्द से गृहीत व्यक्तिविशेष
३ आगमविशेष
४ व्यक्तिविशेष—मुनि आदि
५ देवविशेष
६ क्षत्रियवर्ण के व्यक्ति
७ वैश्यवर्ण के व्यक्ति– गाथापति आदि
८ ब्राह्मणवर्ण के व्यक्ति
९ शूद्रवर्ण के व्यक्ति
१० मडलीविशेष
११ पशुविशेष
१२ तपविशेष
१३ स्वप्नविशेष
१४ नगरीविशेष
१५ द्वीपविशेष
१६ यक्षायतन
१७ उद्यान
१८ पर्वत
१९ वृक्षविशेष
२० पुष्पलतादि
२१ धातुविशेष
२२ भवनविशेष
२३ बन्धनविशेष
२४ वस्तुविशेष
२५ यानविशेष
२६ अलकारविशेष
२७ पक्वान्नविशेष
२८ ग्रहविशेष
२९ मणिरत्नादि
३० क्षेत्रविशेष

परिशिष्ट—२

व्यक्ति और भौगोलिक परिचय

१. विशिष्ट व्यक्ति-परिचय

१ इन्द्रभूति गौतम गणधर
२ कृष्ण
३ कोणिक
४ चेल्लणा
५ जम्बूस्वामी
६ जमालि
७ जितशत्रुराजा
८ धारिणी देवी
९ महाबल कुमार
१०. मेघकुमार
११ स्कन्दक मुनि
१२ सुधर्मा स्वामी
१३ श्रेणिक राजा

२. भौगोलिक परिचय

१ काकन्दी
२. गुणशील
३. चम्पा
४ जम्बूद्वीप
५. द्वारका (द्वारवती)
६ दूतिपलाश चैत्य
७ पूर्णभद्र चैत्य
८ भद्दिलपुर
९ भरतक्षेत्र
१० राजगृह
११ रैवतक
१२ विपुलगिरि पर्वत
१३ सहस्राम्रवन उद्यान
१४ साकेत
१५ श्रावस्ती

आगम में वर्णित विशेषनाम

सकेत– वर्ग / सूत्र

१. तीर्थंकरविशेष—

१ अमम तीर्थंकर ५/३

२ अरिष्टनेमि भगवान्—वर्ग ३ से वर्ग ५ तक

३ महावीर स्वामी—वर्ग ६ से वर्ग ८ तक

२. आगम मे वर्णित (जहा) शब्द से गृहीत व्यक्तिविशेष—

१	अभयकुमार	३/१३
२	उदायन	६/१६
३	गगदत्त	६/१
४	गौतमस्वामी	३/६, ६/१२
५	देवानन्दा ब्राह्मणी	३/६
६	महावल कुमार	१/७, ३/१८
७	मेघकुमार	१/८, ३/१८
८	स्कन्दकमुनि	१/६, ६/१, ८/१४

३ आगम विशेष—

१	उवासगदसा (उपासकदशाग)	१/२
२	पण्णत्ति (प्रज्ञप्ति-भगवतीसूत्र)	६/१, ६/१५

४. प्रयुक्त व्यक्तिविशेष—मुनि आदि

१	अतिमुक्तकुमार श्रमण (जिसने देवकी को भविष्य कहा था)	३/६
२	गौतम स्वामी	६/१५
३	चन्दना साध्वी	८/१
४	यक्षिणी साध्वी	५/६

५. देव—विशेष

१	मुद्गरपाणि यक्ष	६/२
२	वैश्रमण कुवेर	१/५
३	हरिणैगमेषी	३/१०

६. क्षत्रियवर्ण के व्यक्तिविशेष—

राजा

१	अन्धकवृष्णि	१/७
२	अलक्षराजा	६/१६
३	श्रीकृष्ण वासुदेव	१/६
४	कोणिकराजा	८/१
५	जितशत्रु	३/१
६	प्रद्युम्न	४/१
७	विजयराजा	६/१५
८	वसुदेवराजा	३/४
९	वलदेव	३/२८
१०	समुद्रविजय	४/१
११	श्रेणिकराजा	६/१

रानियां—

१	अन्धकवृष्णि-पत्नी	१/७
२	काली	८/१-४
३	कृष्ण	८/७
४	गाधारी	५/१
५	गौरीदेवी	५/१
६	चेल्लणा	६/२
७	जाम्ववती	४/१
८	देवकी	३/७
९	धारिणी	१/७
१०	नन्दश्रेणिका	७/१
११	नन्दा	७/१
१२	नन्दावती	७/१
१३	नन्दोत्तरा	७/१
१४	पद्मावती	५/१
१५	पितृसेनकृष्णा	८/१३
१६	वलदेवपत्नी	३/२८

१७	भद्रा	७/१
१८	मरुतदेवी	७/१
१९	मरुतादेवी	७/१
२०	महाकाली	८/६
२१	महाकृष्णा	८/१०
२२	महामरुता	७/१
२३	महासेनकृष्णा	८/१४
२४	मूलदत्ता	५/१
२५.	मूलश्री	५/१
२६	रामकृष्णा	८/१२
२७	रुक्मिणी	४/१
२८	लक्ष्मणा	५/१
२९	वसुदेव-पत्नी	४/१
३०	वीरकृष्णा	८/११
३१	वैदर्भी	४/१
३२	सत्यभामा	५/१
३३	सुकालिका	८/५
३४.	सुकृष्णा	८/९
३५.	सुजाता	७/१
३६	सुभद्रा	७/१
३७	सुमनतिका	७/१
३८	सुमरुता	७/१
३९	सुसीमा	५/१
४०	श्रीदेवी	६/१५

राजकुमार

१	अचलकुमार	१/१०
२	अतिमुक्तकुमार	६/१५
३	अनतसेन कुमार	३/१-५
४	अनादृष्टि कुमार	३/४
५	अनियस कुमार	३/१
६	अनिरुद्धकुमार	४/१
७	अनिहतकुमार	३/१
८	अभिचन्द्रकुमार	२/१
९	अक्षोभकुमार	१/१०
१०	उवयालिकुमार	४/१
११	कापिल्यकुमार	१/१०
१२	कूपककुमार	३/४
१३	गजसुकुमार	३/४
१४	गभीरकुमार	१/१०
१५	गौतमकुमार	१/७
१६	जालिकुमार	४/१
१७	दृढनेमि कुमार	४/१
१८	दारुककुमार	३/४
१९	दुर्मुखकुमार	३/४
२०	देवयश कुमार	३/१
२१	धरणकुमार	२/१
२२	प्रद्युम्नकुमार	४/१
२३	प्रसेनजित	१/१०
२४	पुरुषषेण	४/१
२५	पूर्णकुमार	२/१
२६	मयालिकुमार	४/१
२७	वारिषेणकुमार	४/१
२८	विदुकुमार	३/१
२९	विष्णुकुमार	१/१०
३०	सत्यनेमिकुमार	४/१
३१	समुद्रकुमार	१/१०
३२	सागरकुमार	१/१०
३३	सारणकुमार	३/४
३४	स्तिमितकुमार	१/१०
३५	सुमुखकुमार	३/४
३६	शत्रुसेनकुमार	३/१
३७	शाम्वकुमार	४/१
३८	हैमवन्तकुमार	१/१०

७. वैश्य वर्ण के व्यक्ति-गाथापति आदि—

१	काश्यप गाथापति	६/१४
२	किंकर्मा गाथापति	६/१
३	कैलाशजी	६/१४
४	द्वैपायनऋषि	५/२
५	धृतिधरजी	६/१४
६	नागगाथापति	३/१

परिशिष्ट—२

व्यक्ति और भौगोलिक परिचय

विशिष्ट व्यक्ति परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ मे अनेक तीर्थकरो, गणधरो, राजाओ, राजकुमारो एव रानियो आदि का उल्लेख हुआ है। आगम और इतिहास की दृष्टि से उनके विशेष परिचय को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। भगवान् अरिष्टनेमि तथा तीर्थंकर महावीर, जो सिद्धि प्राप्त आत्माओ के प्राणाधार हैं, के प्रसिद्ध होने मे उनका परिचय नही दिया गया है।

(१) इन्द्रभूति गौतम गणधर

इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे। मगध की राजधानी राजगृह के पास गोवरगाव उनकी जन्मभूमि थी[१], जो आज नालन्दा का ही एक विभाग माना जाता है। उनके पिता का नाम वसुभूति और माता का नाम पृथ्वी था। उनका गोत्र गौतम था।[२]

गौतम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ करते हुए जैनाचार्यो ने लिखा है—वुद्धि के द्वारा जिसका अधकार नष्ट हो गया है, वह गौतम।[३] यो तो गौतम शब्द कुल और वश का वाचक रहा है। स्थानाग मे सात प्रकार के गौतम बताए गये हैं— गौतम, गार्ग्य, भारद्वाज, आगिरस, शर्कराभ, भास्कराभ, उदकात्माभ।[४] वैदिक साहित्य मे गौतम नाम कुल से भी सम्वद्ध रहा है और ऋषियो से भी। ऋग्वेद मे गौतम के नाम से अनेक सूक्त मिलते है, जिनका गौतम राहूगण नामक ऋषि से सम्बन्ध है।[५]

वैसे गौतम नाम से अनेक ऋषि, धर्मसूत्रकार, न्यायशास्त्रकार, धर्मशास्त्रकार प्रभृति व्यक्ति हो चुके है। अरुणउद्दालक, आरुणि आदि ऋषियो का भी पैतृक नाम गौतम था।[६] यह कहना कठिन है कि इन्द्रभूति गौतम का गोत्र क्या था, वे किस ऋषि के वश से सम्बद्ध थे? किन्तु इतना तो

---

१ मगहा गुव्वरगामे जाया तिन्नेव गोयमसगुत्ता। आवश्यक निर्युक्ति, गा. ६४३

२ (क) आवश्यक निर्युक्ति, गा ६४७-४८
(ख) आद्याना त्रयाणा गणभृता पिता वसुभूति।
आद्याना त्रयाणा गणभृता माता पृथिवी। —आवश्यक मलय ३३८

३ गोभिस्तमो ध्वस्त यस्य—अभिधानराजेन्द्रकोप भा ३

४ जे गोयमा ते सत्तविहा पण्णत्ता, त जहा ते गोयमा, ते गग्गा, ते भारद्दा,
ते अगिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्खराभा, ते उदगत्ताभा। स्थानाग ७।५५१

५ ऋग्वेद १।६२।१३, वैदिक कोश, पृ १३४

६ भारतीय प्राचीन-चरित्र कोश, पृ १९३-१९५

स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था।

एक बार इन्द्रभूति सोमिल आर्य के निमन्त्रण पर पावापुरी मे होने वाले यज्ञोत्सव मे गए थे। उसी अवसर पर भगवान् महावीर भी पावापुरी के बाहर महासेन उद्यान मे पधारे हुए थे। भगवान् की महिमा को देखकर इन्द्रभूति उन्हे पराजित करने की भावना से भगवान् के समवसरण मे आये, किन्तु वह स्वय ही पराजित हो गये। अपने मन का सशय दूर हो जाने पर वह अपने पाँच-सौ शिष्यो सहित भगवान् के शिष्य हो गये। गौतम प्रथम गणधर हुए।

आगमो मे व आगमेत्तर साहित्य मे गौतम के जीवन के सम्वन्ध मे वहुत कुछ लिखा मिलता है।

इन्द्रभूति गौतम दीक्षा के समय ५० वर्ष के थे। ३० वर्ष साधु-पर्याय मे और १२ वर्ष केवली-पर्याय मे रहे। अपने निर्वाण के समय अपना गण सुधर्मा को सौपकर गुण-शिलक चैत्य मे मासिक अनशन करके भगवान् के निर्वाण से १२ वर्ष वाद ९२ वर्ष की अवस्था मे निर्वाण को प्राप्त हुए।

शास्त्रो मे गणधर गौतम का परिचय इस प्रकार का दिया गया है—वे भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य थे। सात हाथ ऊँचे थे। उनके शरीर का सस्थान और सहनन उत्कृष्ट प्रकार का था। सुवर्ण रेखा के समान गौर थे। उग्र तपस्वी, महा तपस्वी, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचारी और सक्षिप्त विपुल-तेजोलेश्या सम्पन्न थे। शरीर मे अनासक्त थे। चौदह पूर्वधर थे। मति, श्रुत, अवधि और मन पर्याय—चार ज्ञान के धारक थे। सर्वाक्षरसन्निपाती थे, वे भगवान् महावीर के समीप मे उक्कुड आसन से नीचा सिर कर के बैठते थे। ध्यान-मुद्रा मे स्थिर रहते हुए सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

(२) कृष्ण

कृष्ण वासुदेव। माता का नाम देवकी, पिता का नाम वासुदेव था। कृष्ण का जन्म अपने मामा कस की कारा मे मथुरा मे हुआ था।

जरासन्ध के उपद्रवो के कारण श्रीकृष्ण ने व्रज-भूमि को छोड कर सुदूर सौराष्ट्र मे जाकर द्वारका की रचना की।

श्रीकृष्ण भगवान् नेमिनाथ के परम भक्त थे। भविष्य मे वह अमम नाम के तीर्थंकर होगे। जैन साहित्य मे, सस्कृत और प्राकृत उभय भाषाओ मे श्रीकृष्ण का जीवन विस्तृत रूप मे मिलता है।

द्वारका का विनाश हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत्यु जराकुमार के हाथो से हुई। श्रीकृष्ण का जीवन महान् था।

(३) कोणिक

राजा श्रेणिक की रानी चेल्लणा का पुत्र, अगदेश की राजधानी चम्पा नगरी का अधिपति। भगवान् महावीर का परम भक्त।

कोणिक राजा एक प्रसिद्ध राजा है। जैनागमो मे अनेक स्थानो पर उसका अनेक प्रकार से वर्णन आता है।

भगवती, औपपातिक और निरयावलिका मे कोणिक का विस्तृत वर्णन है ।

राज्य-लोभ के कारण इसने अपने पिता श्रेणिक को कैद मे डाल दिया था। श्रेणिक की मृत्यु के वाद कोणिक ने अगदेश मे चम्पानगरी को अपनी राजधानी वनाया था ।

अपने सहोदर भाई हल्ल और विहल्ल से हार और सेचनक हाथी को छीनने के लिए इसने नाना चेटक से भयकर युद्ध भी किया था । कोणिक-चेटकयुद्ध प्रसिद्ध है ।

(४) चेल्लणा

राजा श्रेणिक की रानी और वेशाली के अधिपति चेटक राजा की पुत्री ।

चेल्लणा सुन्दरी, गुणवती, वुद्धिमती, धर्म-प्राणा नारी थी। श्रेणिक राजा को धार्मिक वनाने मे, जैनधर्म के प्रति अनुरक्त करने मे चेल्लणा का वहुत वडा योग था ।

चेल्लणा का राजा श्रेणिक के प्रति कितना प्रगाढ अनुराग था, इसका प्रमाण "निरयावलिका" मे मिलता है । कोणिक, हल्ल और विहल्ल ये तीनो चेल्लणा के पुत्र थे ।

(५) जम्बूस्वामी

आर्य सुधर्मा के शिष्य जम्बू एक परम जिज्ञासु के रूप मे आगमो मे सर्वत्र दीख पडते हैं ।

जम्बू राजगृह नगर के समृद्ध, वैभवशाली-इभ्य-सेठ के पुत्र थे। पिता का नाम ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था । जम्बूकुमार की माता ने जम्बूकुमार के जन्म से पूर्व स्वप्न मे जम्बू वृक्ष देखा था, इसी कारण पुत्र का नाम जम्बूकुमार रखा ।

सुधर्मा की वाणी से जम्बूकुमार के मन मे वैराग्य जागा। परन्तु माता-पिता के अत्यन्त आग्रह से विवाह की स्वीकृति दी । आठ इभ्य-वर सेठो की कन्याओ के साथ जम्बूकुमार का विवाह हो गया ।

जिस समय जम्बूकुमार अपनी आठ नवविवाहिता पत्नियो को प्रतिवोध दे रहे थे, उस समय एक चोर चोरी करने को आया । उसका नाम प्रभव था। जम्बूकुमार की वैराग्यपूर्ण वाणी सुनकर वह भी प्रतिवुद्ध हो गया ।

५०१ चोर, ८ पत्नियाँ, पत्नियो के १६ माता-पिता, स्वय के २ माता-पिता और स्वय जम्बूकुमार इस प्रकार ५२८ ने एक साथ सुधर्मा के पास दीक्षा ग्रहण की ।

जम्बूकुमार १६ वर्ष गृहस्थ मे रहे, २० वर्ष छद्मस्थ रहे, ४४ वर्ष केवली पर्याय मे रहे। ८० वर्ष की आयु भोग कर जम्बू स्वामी अपने पाट पर प्रभव को छोडकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए ।

(६) जमालि

वैशाली के क्षत्रियकुण्ड का एक राजकुमार था। एक बार भगवान् क्षत्रियकुण्ड ग्राम मे पधारे । जमालि भी उपदेश सुनने को आया ।

वापिस घर लौट कर जमालि ने अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मागी। माता घवरा उठी, वह मूर्च्छित हो गई ।

जमालि के माता-पिता उसको उसके संकल्प से हटा नही सके। अपनी आठ पत्नियो का त्याग करके उसने पाँच-सौ क्षत्रिय कुमारो के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली।

जमालि ने भगवान् के सिद्धान्त-विरुद्ध प्ररूपणा की थी।

(७) जितशत्रुराजा

शत्रुको जीतने वाला। जिस प्रकार बौद्ध जातको मे प्राय ब्रह्मदत्त राजा का नाम आता है, उसी प्रकार जैन-ग्रन्थो मे प्राय जितशत्रु राजा का नाम आता है। जितशत्रु के साथ प्राय धारिणी का भी नाम आता है। किसी भी कथा के प्रारम्भ मे किसी न किसी राजा का नाम बतलाना, कथाकारो की पुरातन पद्धति रही है।

इस नाम का भले ही कोई राजा न भी हो, तथापि कथाकार अपनी कथा के प्रारम्भ मे इस नाम का उपयोग करता है। वैसे जैन-साहित्य के कथा-ग्रन्थो ने जितशत्रु राजा का उल्लेख बहुत आता है। निम्नलिखित नगरो के राजा का नाम जितशत्रु बताया गया है—

	नगर	राजा
१	वाणिज्य ग्राम	जितशत्रु
२	चम्पा नगरी	"
३	उज्जयनी	"
४	सर्वतोभद्र नगर	"
५	मिथिला नगरी	"
६	पाचाल देश	"
७	आमलकल्पा नगरी	"
८	सावत्थी नगरी	"
९.	वाणारसी नगरी	"
१०.	आलभिया नगरी	"
११	पोलासपुर	"

(८) धारिणी देवी

श्रेणिक राजा की पटरानी थी। धारिणी का उल्लेख आगमो में प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है।

सस्कृत साहित्य के नाटको मे प्राय राजा की सबसे बडी रानी के नाम के आगे 'देवी' विशेषण लगाया जाता है, जिसका अर्थ होता है रानियो मे सबसे बडी अभिषिक्त रानी, अर्थात्—पटरानी।

राजा श्रेणिक के अनेक रानिया थी, उनमे धारिणी मुख्य थी। इसीलिए धारिणी के आगे 'देवी' विशेपण लगाया गया है। देवी का अर्थ है—पूज्या।

मेघकुमार इसी धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

(९) महाबलकुमार

वल राजा का पुत्र। सुदर्शन सेठ का जीव महावलकुमार। हस्तिनापुर नामक नगर था। वहाँ का राजा वल और रानी प्रभावती थी। एक वार रात मे अर्धनिद्रा मे रानी ने देखा—

"एक सिंह आकाश से उतर कर मुख मे प्रवेश कर रहा है।" सिंह का स्वप्न देखकर रानी जाग उठी, और राजा वल के शयन-कक्ष मे जाकर स्वप्न सुनाया। राजा ने मधुर स्वर मे कहा—

"स्वप्न वहुत अच्छा है। तेजस्वी पुत्र की माता वनोगी।"

प्रात राजसभा मे राजा ने स्वप्न-पाठको से भी स्वप्न का फल पूछा। स्वप्नपाठको ने कहा—"राजन् ! स्वप्नशास्त्र मे ४२ सामान्य और ३० महास्वप्न हैं, इस प्रकार कुल ७२ स्वप्न कहे है।

तीर्थंकरमाता और चक्रवर्तीमाता ३० महास्वप्नो मे से इन १४ स्पप्नो को देखती है —

१	गज	८	ध्वजा
२	वृषभ	९	कुम्भ
३	सिंह	१०	पद्मसरोवर
४	लक्ष्मी	११	समुद्र
५	पुष्पमाला	१२	विमान
६	चन्द्र	१३	रत्नराशि
७	सूर्य	१४	निर्धूम अग्नि

राजन् ! प्रभावती देवी ने यह महास्वप्न देखा है। अत इसका फल अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा।

कालान्तर मे पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम महावलकुमार रखा गया। कलाचार्य के पास ७२ कलाओ का अभ्यास करके महावल कुशल हो गया।

आठ राजकन्याओ के साथ महावलकुमार का विवाह किया गया। महावलकुमार भौतिक सुखो मे लीन हो गया।

एक वार तीर्थंकर विमलनाथ के प्रशिष्य धर्मघोप मुनि हस्तिनापुर पधारे। उपदेश सुनकर महावल को वैराग्य हो गया। धर्मघोप मुनि के पास दीक्षा लेकर वह श्रमण वन गया, भिक्षु वन गया।

महावल मुनि ने १४ पूर्व का अध्ययन किया। अनेक प्रकार का तप किया। १२ वर्ष का श्रमण-पर्याय पालकर, काल के समय काल करके ब्रह्मलोक कल्प मे देव वना।

(१०) मेघकुमार

मगध सम्राट श्रेणिक और धारिणी देवी का पुत्र था, जिसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

एक वार भगवान् महावीर राजगृह के गुणशीलक उद्यान मे पधारे। मेघकुमार ने भी उपदेश सुना। माता-पिता से अनुमति लेकर भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

जिस दिन दीक्षा ग्रहण की, उसी रात को मुनियो के यातायात से, पैरो की रज और ठोकर लगने से मेघ मुनि व्याकुल हो गया, अशान्त वन गया।

भगवान् ने पूर्वभवो का स्मरण करते हुए संयम मे धृति रखने का उपदेश दिया, जिससे मेघ मुनि सयम मे स्थिर हो गया।

एक मास की सलेखना की। सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवरूप से उत्पन्न हुआ। महाविदेहवास से सिद्ध होगा।

(११) स्कन्दक मुनि

स्कन्दक सन्यासी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले गर्द्दभालि परिव्राजक का शिष्य था और गौतम स्वामी का पूर्व मित्र था। भगवान् महावीर के शिष्य पिङ्गलक निर्ग्रन्थ के प्रश्नो का उत्तर नही दे सका, फलत श्रावस्ती के लोगो से जब सुना कि भगवान् महावीर कृतगला नगर के बाहर छत्र-पलाश उद्यान मे पधारे है, तो स्कन्दक भी भगवान् के पास जा पहुचा। अपना समाधान मिलने पर वह वही पर भगवान् का शिष्य हो गया।

स्कन्दक मुनि ने स्थविरो के पास रहकर ११ अगो का अध्ययन किया।

भिक्षु की १२ प्रतिमाओ की क्रम से साधना की, आराधना की।

गुणरत्नसवत्सर तप किया। शरीर दुर्बल, क्षीण और अशक्त हो गया। अन्त मे राजगृह के समीप विपुल-गिरि पर जाकर एक मास की सलेखना की। काल करके १२ वे देवलोक मे गया। वहाँ से महाविदेहवास से सिद्ध होगा।

स्कन्दक मुनि की दीक्षा-पर्याय १२ वर्ष की थी।

(१२) सुधर्मा स्वामी

ये कोल्लाग सनिवेश के निवासी अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता धम्मिल थे और माता भद्दिला थी। पाच सौ छात्र इनके पास अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था मे शिष्यो के साथ प्रव्रज्या ली। बयालीस वर्ष पर्यन्त छद्मावस्था मे रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष व्यतीत होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था मे रहे।

श्रमण भगवान के सर्व गणधरो मे सुधर्मा दीर्घजीवी थे, अत अन्यान्य गणधरो ने अपने-अपने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित कर दिये थे।[1]

महावीर-निर्वाण के १२ वर्ष बाद सुधर्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बीस वर्ष के पश्चात् सौ वर्ष की अवस्था मे मासिक अनशन-पूर्वक राजगृह के गुणशीलचैत्य मे निर्वाण प्राप्त किया।[2]

(१३) श्रेणिक राजा

मगध देश का सम्राट् था। अनाथी मुनि से प्रतिबोधित होकर भगवान् महावीर का परम भक्त हो गया था। ऐसी एक जन-श्रुति है।

१ (क) जीवते चेव भट्टारए णवहिं जणेहिं अज्ज सुधम्मस्स गणो णिक्खित्तो दीहाउगोत्ति णातु।

—कल्पसूत्र चूर्णि २०१

(ख) परिनिव्वुया गणहरा जीवते नायए नव जणा उ, इदभूई सुहम्मो अ, रायगिहे निव्वए वीरे।

—आवश्यक निर्युक्ति गा ६५८.

२. आवश्यक निर्युक्ति, ६५५

राजा श्रेणिक का वर्णन जैन ग्रन्थो तथा बौद्ध ग्रन्थो मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है। इतिहासकार कहते हैं, कि श्रेणिक राजा हैहय कुल और शिशुनाग वश का था।

बौद्ध ग्रन्थो मे 'सेनिय' और 'बिंबिसार' ये दो नाम मिलते है। जैन ग्रन्थो मे 'सेणिय, भिंभिसार और भंभासार'—ये नाम उपलब्ध हैं।

भिंभसार और भंभासार नाम कैसे पडा ? इस सम्बन्ध मे श्रेणिक के जीवन का एक सुन्दर प्रसग है—

श्रेणिक के पिता राजा प्रसेनजित कुशाग्रपुर मे राज्य करते थे।

एक दिन की बात है, राजप्रासाद मे सहसा आग लग गई। हरेक राजकुमार अपनी-अपनी प्रिय वस्तु को लेकर बाहर भागा। कोई गज लेकर, तो कोई अश्व लेकर, कोई रत्न-मणि लेकर। परन्तु श्रेणिक मात्र एक "भंभा"[1] लेकर ही बाहर निकला था।

श्रेणिक को देखकर दूसरे भाई हस रहे थे, पर पिता प्रसनेजित प्रसन्न थे, क्योकि श्रेणिक ने अन्य सब कुछ छोडकर एकमात्र राज्य-चिह्न की रक्षा की थी।

उस पर राजा प्रसेनजित ने उसका नाम भिंभिसार रखा। भिंभिसार ही सभवत आगे चलकर उच्चारण-भेद से बिंबिसार बन गया।

भौगोलिक परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनेक देशो, नगरो, पर्वतो व नदियो का उल्लेख हुआ है। भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् महावीर के युग मे जिन देशो व नगरो के जो नाम थे आज उनके नामो मे अत्यधिक परिवर्तन हो चुका है। उस समय वे समृद्ध थे तो आज वे खण्डहर मात्र रह गये है, और कितने ही पूर्ण रूप से नष्ट भी हो चुके है। कितने ही नगरो के सम्बन्ध मे पुरातत्त्ववेत्ताओ ने काफी खोज की है। हम यहा पर प्रमुख-प्रमुख स्थलो का सक्षेप मे वर्णन कर रहे हैं।

(१) काकदी

भगवान् महावीर के समय यह उत्तर भारत की बहुत ही प्रसिद्ध नगरी थी। उस समय वहाँ का अधिपति जितशत्रु था। नगर के बाहर सहस्राम्रवन था, भगवान् जब कभी वहाँ पर पधारते तब वहाँ पर विराजते थे। भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य, सुनक्षत्र तथा क्षेमक और धृतिधर आदि अनेक साधको ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

पण्डित मुनिश्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार वर्तमान मे लछुआड से पूर्व मे काकन्दी तीर्थ है, वह प्राचीन काकन्दी का स्थान नही है। काकन्दी उत्तर भारत मे थी। नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण-पूर्व तीस मील पर दिगम्बर जैन जिस स्थल को किष्किधा अथवा खुखु दोजी नामक तीर्थ मानते है वही प्राचीन काकन्दी होनी चाहिए।

---

१ भेरी, सग्राम-विजय-सूचक वाद्य-विशेष।

(२) गुणशील

राजगृह के बाहर गुणशील नामक एक प्रसिद्ध बगीचा था। भगवान महावीर के शताधिक बार यहाँ समवसरण लगे थे। शताधिक व्यक्तियो ने यहाँ पर श्रमणधर्म व चारित्रधर्म ग्रहण किया था। भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधरो ने यही पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया था। वर्तमान का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, वही महावीर के समय का गुणशील है।

(३) चम्पा

चम्पा अग देश की राजधानी थी। कनिघम ने लिखा है—भागलपुर से ठीक २४ मील पर पत्थरघाट है। यही इसके आस-पास चम्पा की उपस्थिति होनी चाहिए। इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बडा गाव है, जिसे चम्पानगर कहते है और एक छोटा-सा गाव है, जिसे चम्पापुर कहते हैं। सभव है, ये दोनो प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हो।[1]

फाहियान ने चम्पा को पाटलिपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा मे गगा के दक्षिण तट पर स्थित माना है।[2]

महाभारत की दृष्टि से चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्प ने उसका नाम चम्पा रखा।[3]

स्थानाग[4] मे जिन दस राजधानियो का उल्लेख हुआ है और दीघनिकाय मे जिन छह महानगरियो का वर्णन किया गया है, उनमे एक चम्पा भी है। औपपातिक सूत्र मे इसका विस्तार मे निरूपण है।[5] दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यभव ने यही पर की थी।[6]

सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् कूणिक (अजातशत्रु) को राजगृह मे रहना अच्छा न लगा और एक स्थान पर चम्पा के सुन्दर उद्यान को देखकर चम्पानगर बसाया।[7] गणि कल्याण-विजयजी के अभिमतानुसार चम्पा पटना से पूर्व (कुछ दक्षिण मे) लगभग सौ कोस पर थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते है। यह स्थान भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम मे है।[8]

चम्पा के उत्तर-पूर्व मे पूर्णभद्र नाम का रमणीय चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर ठहरते थे।

---

१ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ ५४६-५४७
२ ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान, पृ ६५
३ महाभारत १२/५/१३४
४ स्थानाग १०/७१७
५ औपपातिक, चम्पा वर्णन
६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ ४६४
७ विविध तीर्थकल्प, पृ ६५
८ श्रमण भगवान महावीर, पृ ३६९

चम्पा उस युग मे व्यापार का प्रमुख केन्द्र था, जहाँ पर माल लेने के लिए दूर-दूर से व्यापारी आते थे और चम्पा के व्यापारी भी माल लेकर मिथिला, अहिच्छत्रा और पिहुँड (चिकाकोट और कलिगपट्टम का एक प्रदेश) आदि मे व्यापारार्थ जाते थे।[1] चम्पा और मिथिला मे साठ योजन का अन्तर था।

(४) जम्बूद्वीप

जैनागमो की दृष्टि से इस विशाल भूमण्डल के मध्य मे जम्बूद्वीप है।[2] इसका विस्तार एक लक्ष योजन है और यह सबसे लघु है। इसके चारो ओर लवणसमुद्र है। लवणसमुद्र के चारो ओर धातकीखण्ड द्वीप है। इसी प्रकार आगे भी एक द्वीप और एक समुद्र है और उन सब द्वीपो और समुद्रो की सख्या असख्यात है।[3] अन्तिम समुद्र का नाम स्वयभूरमण समुद्र है।[4] जम्बूद्वीप से दूना विस्तार वाला लवणसमुद्र है और लवणसमुद्र से दुगुना विस्तृत धातकीखण्ड है। इस प्रकार द्वीप और समुद्र एक दूसरे से दूने होते चले गये है।[5]

इसमे शाश्वत जम्बूवृक्ष होने के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पडा।[6] जम्बूद्वीप के मध्य मे सुमेरु नामक पर्वत है[7] जो एक लाख योजन ऊचा है।[8]

जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है।[9] इसकी परिधि ३,१६,२२७ योजन, ३ कोस १२८ धनुष, १३।। अगुल, ५ यव और १ यूका है।[10] इसका क्षेत्रफल ७,९०,५६,९४,१५० योजन १।।। कोस, १५ धनुष और २।। हाथ है।[11]

श्रीमद्भागवत मे सात द्वीपो का वर्णन है। उसमे जम्बूद्वीप प्रथम है।[12]

---

१ (क) ज्ञाताधर्मकथा ८, पृ ९७, ९, पृ १२१-१५ पृ १५७
(ख) उत्तराध्ययन २१/२

२ लोकप्रकाश सर्ग १५, श्लोक ६

३ वही श्लोक १८

४ वही श्लोक २६

५ वही श्लोक २८

६ वही १५/३१-३२

७ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार ४, सू १०३, पत्र ३५९-३६०

८ वही ४/११३ पत्र ३५९/२

९ (क) समवायाग सूत्र १२४, पत्र २०७/२, प्र जैन धर्म प्रचारक सभा, भावनगर
(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार १/१०/६७
(ग) हरिवशपुराण ५/४-५

१० (क) लोकप्रकाश १५/३४-३४
(ख) हरिवशपुराण ५/४-५

११ (क) लोकप्रकाश १५/३६-३७
(ख) हरिवशपुराण ५/६-७

१२ श्रीमद्भागवत प्र खण्ड, स्कध ४, अ १, पृ ५४६

बौद्ध दृष्टि से चार महाद्वीप है, उन चारो के केन्द्र मे सुमेरु है। सुमेरु के पूर्व मे पुब्व विदेह[1] पश्चिम मे अपरगोयान अथवा अपर गोदान[2] उत्तर मे उत्तर कुरु[3] और दक्षिण मे जम्बूद्वीप है।[4]

बौद्ध परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप दस हजार योजन वडा है।[5] इसमे चार योजन जल से भरा होने के कारण समुद्र कहा जाता है और तीन हजार योजन मे मानव रहते है। शेष तीन हजार योजन मे चौरासी हजार कूटो (चोटियो) से सुशोभित चारो ओर वहती ५०० नदियो से ऊँचा हिमवान पर्वत है।[6]

उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट है कि जिसे हमे भारत के नाम से जानते है वही वौद्धो मे जम्बूद्वीप के नाम से विख्यात है।[7]

(५) द्वारका (द्वारवती) :—

भारत की प्राचीन प्रसिद्ध नगरियो मे द्वारका का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। श्रमण और वैदिक दोनो ही सस्कृतियो के वाड्मय मे द्वारका की विस्तार से चर्चा है।

(१) ज्ञाताधर्मकथा व अन्तगडदसाओ के अनुसार द्वारका सौराष्ट्र मे थी।[8] वह पूर्व-पश्चिम मे बारह योजन लम्बी, और उत्तर-दक्षिण मे नव योजन विस्तीर्ण थी। वह स्वय कुवेर द्वारा निर्मित सोने के प्राकार वाली थी, जिस पर पाच वर्णो के नाना मणियो से सुसज्जित कपिशीर्षक- कगूरे थे। वह वडी सुरम्य, अलकापुरी-तुल्य और प्रत्यक्ष देवलोक-सदृश थी। वह प्रासादिक, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप थी। उसके उत्तर-पूर्व मे रैवतक नामक पर्वत था। उसके पास समस्त ऋतुओ मे फल-फूलो से लदा रहनेवाला नन्दनवन नामक सुरम्य उद्यान था। उस उद्यान मे सुरप्रिय यक्षायतन था। उस द्वारका मे श्रीकृष्ण वासुदेव अपने सम्पूर्ण राजपरिवार के साथ रहते थे।[9]

---

१. डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, खण्ड २, पृ २३६
२ वही खण्ड १, पृ ११७
३ वही खण्ड १, पृ ३५५
४ वही खण्ड १ पृ ९४१
५ वही खण्ड १, पृ ९४१
६ वही खण्ड २, पृ १३२५-१३२६
७ (क) इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स आव वुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म पृ १, विमलचरण लॉ लिखित,
(ख) जातक प्रथम खण्ड, पृ २८२, ईशानचन्द्र घोप
(ग) भारतीय इतिहास की रूपरेखा भा १, पृ ४, लेखक-जयचन्द्र विद्यालकार
(घ) पाली इगलिश डिक्शनरी पृ ११२, टी डव्ल्यू रीस डेविस तथा विलियम स्टेड
(ङ) सुत्तनिपात की भूमिका-धर्मरक्षित पृ १
(च) जातक-मानचित्र—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
८ (क) ज्ञाताधर्म कथा १।१६, सूत्र ११३
(ख) अन्तगडदशाओ
९ ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

बृहत्कल्प के अनुसार द्वारका के चारों ओर पत्थर का प्राकार था ।[1] वण्हिदसाओ मे भी यही द्वारका का वर्णन मिलता है ।[2]

आचार्य हेमचन्द्र ने द्वारका का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह बारह योजन आयाम वाली और नव योजन विस्तृत थी । वह रत्नमयी थी । उसके आसपास १८ हाथ ऊंचा, ९ हाथ भूमिगत और १२ हाथ चौड़ा सब ओर से खाई से घिरा हुआ किला था । चारो दिशाओ मे अनेक प्रासाद और किले थे । राम-कृष्ण के प्रासाद के पास प्रभासा नामक सभा थी । उसके समीप पूर्व मे रैवतक गिरि, दक्षिण मे माल्यवान शैल, पश्चिम मे सौमनस पर्वत और उत्तर मे गधमादन गिरि थे ।[3]

आचार्य हेमचन्द्र[4] आचार्य शीलाङ्क[5], देवप्रभसूरि[6], आचार्य जिनसेन[7], आचार्य गुणभद्र[8] आदि श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रन्थकारो ने तथा वैदिक हरिवंशपुराण[9], विष्णुपुराण[10] और श्रीमद्-भागवत[11] आदि मे द्वारका को समुद्र के किनारे माना है और कितने ही ग्रन्थकारो ने समुद्र से बारह

---

१ बृहत्कल्प भा २, पृ २५१

२ वण्हिदसाओ

३ शक्राज्ञया वैश्रमणश्चक्रे रत्नमयी पुरीम् ।
द्वादशयोजनायामा नवयोजनविस्तृताम् ॥३९९॥
[illegible] भूगतम् ।
विस्तीर्णं द्वादशहस्ताग्रे वप्र [illegible] ॥४००॥
—त्रिषष्टि पर्व ८, सर्ग ५, पृ ९२

४ त्रिषष्टि, पर्व ८, सर्ग ५, पृ ९२

५ चउप्पन्नमहापुरिसचरिय

६ पाण्डवचरित्र

७. ततो द्वारवती नाम्ना पुरी [illegible] पुरीम् ।
नगरी द्वादशायामा, नवयोजनविस्तृति ।
वज्रप्राकार-वलया, समुद्र-परिखावृता ॥
—हरिवंशपुराण ४१।१८-१९

८ [illegible] देव [illegible] पयोनिधेः ।
[illegible], पुरं द्वादशयोजनम् ॥२०॥
[illegible] सुरेन्द्रेण मधुसूदन ।
[illegible] निश्चित्य [illegible] पुण्यं न क [illegible] ॥२१॥
[illegible] स्यात् ॥
—उत्तरपुराण ७१।२०-२३, पृ ३७६

९. हरिवंशपुराण २।५४

१०. विष्णुपुराण ५।२३।१३

११. इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादश-योजनम् ।
अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥
—श्रीमद्भागवत १०, अ ५०।५०

(ख) ता जह पुव्वि दिन्न ठाण नयरीए आइमचउण्ह ।
तुम्ह तिविट्ठपमुहाण वासुदेवाण सिंधुतडे ॥
—भव-भावना २५३७

योजन धरती लेकर द्वारका का निर्माण किया बताया है।

महाभारत मे श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के बारे मे युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोडकर हम कुशस्थली नामक नगरी मे आये जो रैवतक पर्वत से उपशोभित थी। वहा दुर्गम दुर्ग का निर्माण किया, अधिक द्वारो वाली होने के कारण द्वारवती अथवा द्वारका कहलाई।[1]

महाभारत जन-पर्व मे नीलकठ ने कुशावर्त का अर्थ द्वारका किया है।[2]

'व्रज का सास्कृतिक इतिहास' मे प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है[3] शूरसेन जनपद से यादवो के आ जाने के कारण द्वारका के उस छोटे से राज्य की वडी उन्नति हुई थी। वहा पर दुर्भेद्य दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और उसे अधक-वृष्णि सघ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप मे सगठित किया गया। भारत के समुद्र-तट का वह सुदृढ राज्य विदेशी अनार्यो के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी भी वन गया था। गुजराती भाषा मे 'द्वार' का अर्थ वदरगाह है। इस प्रकार द्वारका या द्वारवती का अर्थ हुआ 'वदरगाहो की नगरी।' उन वदरगाहो से यादवो ने सुदूर-समुद्र की यात्रा कर विपुल सम्पत्ति अर्जित की थी। द्वारका मे निर्धन, भाग्यहीन, निर्बल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नही था।[4]

(१) रायस डेविड्स ने कम्बोज को द्वारका की राजधानी लिखा है।[5]

(२) पेतवत्थु मे द्वारका को कम्बोज का एक नगर माना है।[6] डाक्टर मलशेखर ने प्रस्तुत कथन का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है सभव है—यह कम्बोज ही 'कसभोज' हो, जो कि अधकवृष्णि के दस पुत्रो का देश था।[7]

(२) डा मोतीचन्द्र कम्बोज को पामीर प्रदेश मानते है और द्वारका को वदरवशा से उत्तर मे अवस्थित 'दरवाज' नामक नगर कहते है।[8]

---

१ कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभिताम्।
ततो निवेश तस्या च कृतवन्तो वय नृप ! ॥५०॥
तथैव दुर्ग-सस्कार देवैरपि दुरासदम्।
स्त्रियोऽपि यस्या युध्येयु किमु वृष्णि महारथा ॥५१॥
मथुरा सपरित्यज्य गता द्वारवतीपुरीम् ॥६७।
—महाभारतसभापर्व, अ १४

२, (क) महाभारत जन पर्व, अ १६० श्लोक ५०
(ख) अतीत का अनावरण, पृ १६३

३ द्वितीय खण्ड व्रज का इतिहास, पृ ४७

४ हरिवशपुराण २।५८।६५

५ Buddhist India, P 28
Kamboja was the adjoining country in the extreme North-West, with Dvaraka as its Capital

६ पेतवत्थु भाग २, पृ ९

७ दि डिक्शनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स, भाग १, पृ ११२६

८ ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनॉमिक स्टडीज इन दी महाभारत, पृष्ठ ३२-४०

(४) घट जातक का अभिमत है कि द्वारका के एक ओर विराट् समुद्र अठखेलिया कर रहा था तो दूसरी ओर गगनचुम्बी पर्वत था।[१] डा मलशेखर का भी यही अभिमत रहा है।[२]

(५) उपाध्याय भरतसिंह के मन्तव्यानुसार द्वारका सौराष्ट्र का एक नगर था। सम्प्रति द्वारका कस्वे से आगे वीस मील की दूरी पर कच्छ की खाडी मे एक छोटा-सा टापू है। वहा एक दूसरी द्वारका है जो 'वेट द्वारका' कही जाती है। माना जाता है कि यहा पर श्रीकृष्ण परिभ्रमणार्थ आते थे। द्वारका और वेट द्वारका दोनो ही स्थलो मे राधा, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के मन्दिर है।[३]

(६) वॉम्वे गेजेटीअर मे कितने ही विद्वानो ने द्वारका की अवस्थिति पजाव मे मानने की सभावना की है।[४]

(७) डॉ अनन्तसदाशिव अल्तेकर ने लिखा है—प्राचीन द्वारका समुद्र मे डूव गई, अत द्वारका की अवस्थिति का निर्णय करना सशयास्पद है।[५]

(६) दूतिपलाश चैत्य.—

दूतिपलाश नामक उद्यान वाणिज्यग्राम के वाहर था। जहाँ पर भगवान महावीर ने आनन्द गाथापति, सुदर्शन श्रेष्ठी आदि को श्रावक धर्म मे दीक्षित किया था।

(७) पूर्णभद्रचैत्य.—

चम्पा का यह प्रसिद्ध उद्यान था। जहा पर भगवान महावीर ने शताधिक व्यक्तियो को श्रमण व श्रावक धर्म मे दीक्षित किया था। राजा कूणिक भगवान् को वडे ठाट-वाट से वन्दन के लिये गया था।

(८) भद्दिलपुर.—

भद्दिलपुर मलयदेश की राजधानी थी। इसकी परिगणना अतिशय क्षेत्रो मे की गई है। मुनि कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार पटना से दक्षिण मे लगभग एक सौ मील और गया से नैऋत्य दक्षिण मे अट्ठाईस मील की दूरी पर गया जिले मे अवस्थित हटरिया और दन्तारा गावो के पास प्राचीन भद्दिलनगरी थी, जो पिछले समय मे भद्दिलपुर नाम से जैनो का एक पवित्र तीर्थ रहा है।[६]

आवश्यक सूत्र के निर्देशानुसार श्रमण भगवान् महावीर ने एक चातुर्मास भद्दिलपुर मे किया था।

डा जगदीशचन्द्र जैन का मन्तव्य है कि हजारीवाग जिले मे भदिया नामक जो गाँव है, वही भद्दिलपुर था। यह स्थान हटरगज से छह मील के फासले पर कुलुहा पहाडी के पास है।[७]

१. जातक (चतुर्थ खण्ड) पृ २८४
२. दि डिक्शनरी ऑफ पाली प्रॉपर नेम्स, भाग १, पृ ११२५.
३ वौद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ ४८७
४. वॉम्वे गेजेटीअर भाग १ पार्ट १, पृ ११ का टिप्पण १
५. इण्डियन एन्टिक्वेरी, सन् १९२५, सप्लिमेण्ट पृ. २५
६. श्रमण भगवान महावीर, पृ ३८०
७. जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ. ४७७

(९) भरतक्षेत्र —

जम्बूद्वीप का दक्षिणी छोर का भूखण्ड भरतक्षेत्र के नाम से विश्रुत है। यह अर्धचन्द्राकार है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार इसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा मे लवण समुद्र है।[1] उत्तर दिशा मे चूलहिमवत पर्वत है।[2] उत्तर से दक्षिण तक भरतक्षेत्र की लम्बाई ५२६ योजन ६ कला है और पूर्व से पश्चिम की लम्बाई १४४७१ योजन और कुछ कम ६ कला है।[3] इसका क्षेत्रफल ५३,८०,६८१ योजन, १७ कला और १७ विकला है।[4]

भरतक्षेत्र की सीमा मे उत्तर मे चूलहिमवत नामक पर्वतसे पूर्व मे गगा और पश्चिम मे सिन्धु नामक नदिया बहती है। भरतक्षेत्र के मध्य भाग मे ५० योजन विस्तारवाला वैताढ्य पर्वत है।[5] जिसके पूर्व और पश्चिम मे लवणसमुद्र है। इस वैताढ्य से भरत-क्षेत्र दो भागो मे विभक्त हो गया है[6] जिन्हे उत्तर भरत और दक्षिण भरत कहते है। जो गगा और सिन्धु नदियाँ चूलहिमवत पर्वत से निकलती है वे वैताढ्य पर्वत मे से होकर लवणसमुद्र मे गिरती है। इस प्रकार इन नदियो के कारण, उत्तर भरत खण्ड तीन भागो मे और दक्षिण भरत खण्ड भी तीन भागो मे विभक्त होता है।[7]

इन छह खण्डो मे उत्तरार्द्ध के तीन खण्ड अनार्य कहे जाते है। दक्षिण के अगल-वगल के खण्डो मे भी अनार्य रहते है। जो मध्यखण्ड है उसमे २५॥ देश आर्य माने गये है।[8] उत्तरार्द्ध भरत उत्तर से दक्षिण तक २३८ योजन ३ कला है और दक्षिणार्द्ध भरत भी २३८ योजन ३ कला है।

जिनसेन के अनुसार भरत क्षेत्र मे सुकोशल, अवन्ती, पूण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिग, अग, बग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजागल करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाटक, कौशल, चोल, केरल दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्वोज, आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक और केकय आदि देशो की रचना मानी गई है।[9]

वौद्ध साहित्य मे अग, मगध, काशी, कौशल, वज्ज, मल्ल, चेति, वत्स, कुरु, पचाल मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ती, गधार और कम्वोज इन सोलह जनपदो के नाम मिलते है।[10]

---

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सटीक, वक्षस्कार १, सूत्र १०, पृ ६५।२
२ वही १।१०।६५-२
३ लोकप्रकाश, सर्ग १६, श्लोक ३०-३१
४ लोकप्रकाश, सर्ग १६, श्लोक ३३-३४
५ वही १६।४८
६ वही १६।३५
७ वही १६।३६
९ (क) वही १६, श्लोक ४४
(ख) वृहत्कल्पभाष्य १, ३२६३ वृत्ति, तथा १, ३२७५-३२८९
८. आदिपुराण १६।१५२-१५६
१० अगुत्तरनिकाय, पालिटैक्स्ट सोसायटी सस्करण जिल्द १, पृ २१३, जिल्द ४, पृ २५२

(१०) राजगृहः—

मगध की राजधानी राजगृह थी, जिसे मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामो से पुकारा जाता रहा है।

आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुशाग्रपुर मे प्राय आग लग जाती थी। अत राजा श्रेणिक ने राजगृह बसाया।[1] महाभारत युग मे राजगृह मे जरासघ राज्य करता था।[2] रामायण काल मे बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म राजगृह मे हुआ था।[3]

दिगम्बर जैन ग्रन्थो के अनुसार भगवान् महावीर का प्रथम उपदेश और सघ की सस्थापना राजगृह मे हुई थी।[4] अन्तिम केवली जम्बू की जन्मस्थली निर्वाणस्थली भी राजगृह रही है।[5] धन्ना और शालिभद्र जैसे धन कुबेर राजगृह के निवासी थे।[6] परम साहसी महान भक्त सेठ सुदर्शन भी राजगृह का रहने वाला था।[7] प्रतिभामूर्ति अभयकुमार आदि अनेक महान् आत्माओ को जन्म देने का श्रेय राजगृह को था।[8]

पाच पहाडियो से घिरे होने के कारण उसे गिरिव्रज भी कहते थे। उन पहाडियो के नाम जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनो ही परम्पराओ मे पृथक्-पृथक् रहे है।[9] ये पहाडिया आज भी राजगृह मे हैं। वैभार और विपुल पहाडियो का वर्णन जैन ग्रन्थो मे विशेष रूप से आया है। वृक्षादि मे वे खूब हरी-भरी थी। वहा अनेक जैन-श्रमणो ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैभार पहाडी के

---

१. आवश्यक चूर्णि २, पृ १५८

२. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन,

३ (क) रायगिहे मुणिसुव्वयदेवो पउमा सुमित्त राएहिं।
—तिलोय पण्णति।

(ख) हरिवशपुराण, सर्ग ६०

(ग) उत्तरपुराण, पर्व ६७

४ (क) हरिवशपुराण, सर्ग २, श्लोक ६१-६२

(ख) पद्मपुराण, पर्व २, श्लोक ११३

(ग) महापुराण, पर्व १, श्लोक १९६

५ उत्तरपुराण, पर्व ७६
जम्बूसामी चरिय, पर्व ५-१३

६ त्रिषष्टि १०।१०।१३६-१४८

७ अन्तकृत्दशाग

८ त्रिषष्टि

९ जैन—विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ग और वैभार
वैदिक—वैहार, वाराह, वृषभ, ऋषिगिरि, और चैत्यक
बौद्ध—चन्दन, गिज्भकूट, वेभार, इसगिलि और वेपुल्ल।
—सुत्तनिपात की अट्ठकथा २, पृ ३८२

नीचे ही तपोदा, और महातपोपतीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।[१] वर्तमान मे भी वह राजगिर मे तपोवन नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान् महावीर ने अनेक चातुर्मास वहा व्यतीत किये।[२] दो सौ से भी अधिक वार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य मे मिलते है। वहाँ पर गुणशील[३] मडिकुच्छ[४] और मोग्गरिपाणि[५] आदि उद्यान थे। भगवान् महावीर प्राय गुणशील (वर्तमान मे जिसे गुणावा कहते हैं) उद्यान मे ठहरा करते थे।

राजगृह व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहा पर दूर-दूर से व्यापारी आया करते थे। वहा से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा, प्रभृति भारत के प्रसिद्ध नगरो मे जाने के मार्ग थे।[६] बौद्ध ग्रन्थो मे वहा के सुन्दर धान के खेतो का वर्णन है।

आगम साहित्य मे राजगृह को प्रत्यक्ष देवलोकभूत एव अलकापुरी सदृश कहा है।[७] महाकवि पुष्पदन्त ने लिखा है—सोने, चादी से निर्मित राजगृही ऐसी प्रतिभासित होती थी कि स्वर्ग से अलकापुरी ही पृथ्वी पर आ गई है।[८] रविषेणाचार्य ने राजगृह को धरती का यौवन कहा है।[९] अन्य अनेक कवियो ने राजगृह के महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

जैनियो का ही नही अपितु बौद्धो का भी राजगृह के साथ मधुर सबध रहा है। विनयपिटक से स्पष्ट है कि बुद्ध गृहत्याग कर राजगृह आए। तब राजा श्रेणिक ने उनको अपने साथ राजगृह मे रहने की प्रेरणा दी थी। पर बुद्ध ने वह बात नही मानी। बुद्ध अपने मत का प्रचार करने के लिए

---

१ (क) व्याख्याप्रज्ञप्ति, २।५, पृ १४१
(ख) बृहत्कल्पभाष्य, वृत्ति २।३४२९
(ग) वायुपुराण, १।४।५

२ (क) कल्पसूत्र, ४।१२३
(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति, ७।४, ५।९, २।५
(ग) आवश्यक निर्युक्ति, ४७३।४९२।५१८

३ (क) ज्ञातृधर्मकथा, पृ ४७
(ख) दशाश्रुतस्कध, १०९। पृ ३६४
(ग) उपासकदशा, ८, पृ ५१

४ व्याख्याप्रज्ञप्ति, १५

५ अन्तकृद्दशाग ६, पृ ३१

६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ ४६२

७ पच्चक्ख देवलोगभूया एव अलकापुरीसकासा।

८ तहिं पखवरु णामे रायगिहु कणयरयण कोडिहिं घडिउ।
वलिवड घर तहो सुखइहि सुरणयरु गयणपडिउ॥
—णायकुमार चरिउ, ६

९ तत्रास्ति सर्वत कात नाम्ना राजगृह पुरम्।
कुसुमामोदसुभग भुवनस्येव यौवनम्। पद्मपुराण ३३।२

कई वार राजगृह आये थे। वे प्राय गुद्धकूट पर्वत, कलन्दकनिवाय और वेणुवन मे ठहरते थे।[1] एक वार वुद्ध जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन मे थे तव अभयकुमार ने उनसे हिंसा-अहिसा के सम्वन्ध मे चर्चा की थी।

जव वे वेणुवन मे थे तव अभयकुमार ने उनसे विचार-चर्चा की थी।[2] साधु सकलोदायि ने भी वुद्ध से यहा पर वार्तालाप किया।[3] एक वार वुद्ध ने तपोदाराम जहा गर्म पानी के कुँड थे वहाँ पर विहार किया था। वुद्ध के निर्वाण के पश्चात् राजगृह की अवनति होने लगी। जव चीनी यात्री ह्वेनसाग यहाँ पर आया था तव राजगृह पूर्व जैसा नही था। आज वहाँ के निवासी दरिद्र और अभावग्रस्त है। आजकल राजगृह 'राजगिर' के नाम से विश्रुत है। राजगिर विहार प्रान्त मे पटना से पूर्व और गया से पूर्वोत्तर मे अवस्थित है।

(११) रैवतक :—

पार्जिटर रैवतक की पहचान काठियावाड के पश्चिम भाग मे वरदा की पहाडी से करते है।[4] ज्ञातासूत्र के अनुसार द्वारका के उत्तर-पूर्व मे रैवतक नामक पर्वत था।[5] अन्तकृतदशा मे भी यही वर्णन है।[6] त्रिपष्टिशलाका पुरुपचरित्र के अनुसार द्वारका के समीप पूर्व मे रैवतक गिरि, दक्षिण मे माल्यवान शैल, पश्चिम मे सौमनस पर्वत और उत्तर मे गधमादन गिरि है।[7] महाभारत की दृष्टि से रैवतक कुशस्थली के सन्निकट था।[8] वैदिक हरिवशपुराण के अनुसार यादव मथुरा छोड़कर सिन्धु मे गये और समुद्र किनारे रैवतक पर्वत से न अतिदूर और न अधिक निकट द्वारका वसाई।[9] आगम साहित्य मे रैवतक पर्वत का सर्वथा स्वाभाविक वर्णन मिलता है।[10]

भगवान् अरिष्टनेमि अभिनिष्क्रमण के लिए निकले, वे देव और मनुष्यो से परिवृत शिविका-रत्न मे आरूढ हुए और रैवतक पर्वत पर अवस्थित हुए।[11] राजीमती भी सयम लेकर द्वारका से

---

१ मज्झिमनिकाय, (सारनाथ १९३३)

२ मज्झिमनिकाय, अभयराजकुमार सुत्तन्त, पृ, २३४

३ मज्झिमनिकाय, चलमकलोदायी सुत्तन्त, पृ, ३०५

४ हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र, जिल्द ४, पृ ७९४-९५

५ ज्ञाताधर्मकथा, १'५, सू ५८

६ अन्तकृद्दशाग

७ तस्या पुरो रैवतकोऽपाच्यामसीत्तु माल्यवान्
सौमनसोऽद्रि प्रतीच्यामुदीच्या गधमादन ॥
—त्रिपष्टि, पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक ४१८

८. कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभिताम्
—महाभारत, सभापर्व, अ. १४, श्लोक ५०

९ हरिवशपुराण २।५५

१० ज्ञाताधर्मकथा १।५, सूत्र ५८

११ देव-मणुस्स-परिवुडो, सीयारयण तओ समारूढो।
निक्खमिय वारगाओ, रेवयम्मि ठिओ भगव ॥
—उत्तराध्ययन २२।२२

रैवतक पर्वत पर जा रही थी। बीच मे वह वर्षा से भीग गई और कपडे सुखाने के लिए वही एक गुफा मे ठहरी,[1] जिसकी पहचान आज भी राजीमती गुफा से की जाती है।[2] रैवतक पर्वत सौराष्ट्र मे आज भी विद्यमान है। सभव है प्राचीन द्वारका इसी की तलहटी मे वसी हो।

रैवतक पर्वत का नाम ऊर्जयन्त भी है।[3] रुद्रदाम और स्कधगुप्त के गिरनार शिला-लेखो मे इसका उल्लेख है। वहा पर एक नन्दनवन था, जिसमे सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। यह पर्वत अनेक पक्षियो एव लताओ से सुशोभित था। यहा पर पानी के झरने भी वहा करते थे[4] और प्रतिवर्ष हजारो लोग सखडि (भोज, जीमनवार) करने के लिए एकत्रित होते थे। यहा भगवान् अरिष्टनेमि ने निर्वाण प्राप्त किया था।[5]

दिगम्वर परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत की चन्द्रगुफा मे आचार्य धरसेन ने तप किया था, और यही पर भूतवलि और पुष्पदन्त आचार्यो ने अवशिष्ट श्रुतज्ञान को लिपिवद्ध करने का आदेश दिया था।[6]

महाभारत मे पाण्डवो और यादवो का रैवतक पर युद्ध होने का वर्णन आया है।[7]

जैन ग्रन्थो मे रैवतक, उज्जयत, उज्ज्वल, गिरिणाल और गिरनार आदि नाम इस पर्वत के आये है। महाभारत मे भी इस पर्वत का दूसरा नाम उज्जयत आया है।[8]

(१२) विपुल-गिरि पर्वत :—

राजगृह नगर के समीप का एक पर्वत। आगमो मे अनेक स्थलो पर इसका उल्लेख मिलता है। स्थविरो की देख-रेख मे घोर तपस्वी यहा आकर सलेखना करते थे।

जैन ग्रन्थो मे इन पाच पर्वतो का उल्लेख मिलता है—

१ वैभारगिरि
२ विपुल गिरि

---

१ गिरिं रेवयय जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा।
वासन्ते अन्धयारमि अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥

२ विविध तीर्थकल्प, ३।१९

३. जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ ४७२

४ वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति, १।२९२२

५ (क) आवश्यकनिर्युक्ति, ३०७
(ख) कल्पसूत्र, ६।१७४, पृ. १८२
(ग) ज्ञातृधर्म कथा, ५, पृ ६८
(घ) अन्तकृत्दशा, ५, पृ. २८
(ङ) उत्तराध्ययन टीका, २२, पृ २८०

६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ ४७३

७ आदिपुराण मे भारत, पृ १०९

८ भ महावीर नी धर्मकथाओ, पृ २१६, प. वेचरदासजी

३ उदय गिरि
४ सुवर्ण गिरि
५ रत्न गिरि

महाभारत मे पाच पर्वतो के नाम ये है—वैभार, वाराह, वृषभ, ऋषि गिरि और चैत्यक।

वायुपुराण मे भी पाच पर्वतो का उल्लेख मिलता है। जैसे—वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज और रत्नाचल।

भगवती सूत्र के शतक २ उद्देश ५ मे राजगृह के वैभार पर्वत के नीचे महातपोपतीरप्रभव नाम के उष्णजलमय प्रस्रवण-निर्झर का उल्लेख है। यह निर्झर आज भी विद्यमान है।

बौद्ध ग्रन्थो मे इस निर्झर का नाम 'तपादे' मिलता है जो सम्भवत 'तप्तोदक' से बना होगा।

चीनी यात्री फाहियान ने भी इसको देखा था।

(१३) सहस्राम्रवन उद्यान :—

आगमो मे इस उद्यान का प्रचुर उल्लेख मिलता है। काकन्दी नगरी के बाहर भी इसी नाम का एक सुन्दर उद्यान था, जहा पर धन्यकुमार और सुनक्षत्रकुमार की दीक्षा हुई थी।

सहस्राम्रवन का उल्लेख निम्नलिखित नगरो के बाहर भी आता है—

१ काकन्दी के बाहर
२ गिरनार पर्वत पर
३ काम्पिल्य नगर के बाहर
४ पाण्डु मथुरा के बाहर
५ मिथिला नगरी के बाहर
६ हस्तिनापुर के बाहर-आदि।

(१४) साकेत :—

भारत का एक प्राचीन नगर। यह कौशल देश की राजधानी था। आचार्य हेमचन्द्र ने साकेत, कोशल और अयोध्या-इन तीनो को एक ही कहा है।

साकेत के समीप ही "उत्तरकुरु" नाम का एक सुन्दर उद्यान था, उसमे "पाशामृग" नाम का एक यक्षायतन था।

साकेत नगर के राजा का नाम मित्रनन्दी और रानी का नाम श्रीकान्ता था।

"वर्तमान मे फैजाबाद जिला मे फैजाबाद से पूर्वोत्तर छह मील पर सरयू नदी के दक्षिणी तट पर स्थित वर्तमान अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत होगा।"

(१५) श्रावस्ती :—

यह कौशल राज्य की राजधानी थी। आधुनिक विद्वानो ने इसकी पहचान सहेर-महेर से की है। सहेर गोडा जिले मे है और महेर बहराईच जिले मे। महेर उत्तर मे है और सहेर दक्षिण

मे ।[1] यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेलवे के बलरामपुर स्टेशन से जो सडक जाती है, उससे दस मील दूर है । बहराईच से वह २९ मील पर अवस्थित है ।

विद्वान वी० स्मिथ के अभिमतानुसार श्रावस्ती नेपाल देश के खजूरा प्रान्त मे है और वह बालपुर की उत्तर दिशा मे तथा नेपालगज के सन्निकट उत्तर पूर्वीय दिशा मे है ।[2] युआन चुआङ्ग ने श्रावस्ती को जनपद माना है और उसका विस्तार छह हजार ली, उसकी राजधानी को 'प्रासाद-नगर' कहा है, जिसका विस्तार बीस ली माना है ।[3]

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी । जिसमे बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे ।[4] कभी-कभी उसमे बहुत तेज बाढ भी आ जाती थी ।[5] श्रावस्ती बौद्ध और जैन सस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है । केशी और गौतम का ऐतिहासिक सवाद वही हुआ ।[6] अनेक ऐतिहासिक प्रसग उस भूमि से जुडे हुए हैं ।[7] भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था मे दसवॉ चातुर्मास वहा पर किया था । केवलज्ञान होने पर भी वे अनेक बार वहॉ पर पधारे थे और सैकडो व्यक्तियो को प्रव्रज्या प्रदान की थी और हजारो को उपासक बनाया था । श्रावस्ती के कोष्ठकोद्यान मे गोशलक ने तेजोलेश्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियो को मारा था और भगवान् महावीर पर भी तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी । गोशलक का परम उपासक अयपुल व हालाहला कुभारिन यही के रहने वाले थे ।

---

१ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इडिया, पृ, ४६९-४७४

२ जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १, जन १९००

३. युआन चुआङ्गस् ट्रेवेल्स इन इडिया, भाग १ पृ, ३७७

४ (क) कल्पसूत्र

(ख) बृहत्कल्प सूत्र, ४।३३.

(ग) बृहत्कल्प भाष्य, ४।५६३९, ५६५३,

५ (क) आवश्यक चूर्णि, पृ ६०१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ ४६५.

(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ ५६७

(घ) टौनी का कथाकोश, पृ ६

६ उत्तराध्ययन

७ देखिए-प्रस्तुत ग्रन्थ

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री सेठ खींवराजजी चोरडिया, मद्रास
३ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, मद्रास
४ श्री एस किशनचन्द्रजी चोरडिया, मद्रास
५ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री कवरलालजी वेताला, गोहाटी
७ श्री पुखराजजी शिशोदिया, व्यावर
८ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
९ श्री गुलावचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दरावाद

स्तम्भ

१ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
२ श्री अमरचदजी फतेचदजी पारख, जोधपुर
३ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, वालाघाट
४ श्री मूलचदजी चोरडिया, कटगी
५ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
६ श्री जे दुलीचदजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री हीराचदजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१० श्री एस सायरचदजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री एस वादलचदजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रिखवचदजी चोरडिया, मद्रास
१३. श्री आर परसनचदजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१५. श्री दीपचदजी वोकडिया, मद्रास
१६ श्री मिश्रीलालजी तिलोकचदजी सचेती, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, व्यावर
२ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
३ श्री ज्ञानराजजी मूथा, पाली
४ श्री खूबचन्दजी गादिया, व्यावर
५ श्री रतनचदजी उमत्तचदजी मोदी, व्यावर
६ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी वोथरा, चागा-टोला
७ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, व्यावर
८ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता
९ श्री जडावमलजी माणकचन्दजी वेताला, वागलकोट
१०. श्री वस्तीमलजी मोहनलालजी वोहरा (K G. F) एव जाडन
११ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तालेरा, पाली
१२ श्री नेमीचदजी ललवाणी, चागाटोला
१३ श्री विरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
१४ श्री सिरेकँवर वाई धर्मपत्नी स्व श्री सुमनचद-जी झामड, मदुरान्तकम
१५ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१६ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
१७ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८ श्री भेरुदानजी लाभचदजी सुराणा, धोवडी तथा नागौर
१९ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
२० श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२१ श्री धर्मीचदजी भागचदजी वोहरा, झूठा

२२ श्री मोहनराजजी वालिया, अहमदाबाद
२३ श्री चेतनमलजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, नागौर
२५ श्री वादलचदजी मेहता, इन्दौर
२६ श्री हरकचदजी सागरचदजी बेताला, इन्दौर
२७ श्री सुगनचन्दजी वोकडिया, इन्दौर
२८ श्री इन्दरचदजी बैद, राजनादगाव
२९ श्री मागीलालजी धर्मीचदजी चोरडिया, चागाटोला
३० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागाटोला
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा मद्रास
३२ श्री सिद्धकरणजी बैद, चागाटोला
३३ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३४ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३६ श्री घेवरचदजी पुखराज जी, गोहाटी
३७ श्री मागीलालजी चोरडिया, आगरा
३८ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३९ श्री गुणचदजी दल्लीचदजी कटारिया, बेल्लारी
४० श्री अमरचदजी बोथरा, मद्रास
४१ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
४२ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
४३ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४४ श्री पुखराजजी विजयराज जी, मद्रास
४५. श्री जवरचदजी गेलडा, मद्रास
४६ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
२ श्री अमरचदजी वालचदजी मोदी, व्यावर
३ श्री चम्पालालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४ श्री छगनीबाई विनायकिया, व्यावर
५ श्री भवरलालजी चौपडा, व्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, व्यावर
७ श्री जवरीलालजी अमरचदजी कोठारी, व्यावर
८ श्री मोहनलालजी गुलावचदजी चतर, व्यावर
९ श्री बादरमलजी पुखराजजी वट, कानपुर
१० श्री के पुखराजजी बाफना, मद्रास
११ श्री पुखराजजी बुधराजजी बोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी वाफणा, व्यावर
१३ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४ श्री मागीलालजी प्रकाशचदजी रुणवाल, वर
१५ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१६ श्री भवरलालजी गौतमचदजी पगारिया, कुशालपुरा
१७ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचदजी गौतमचदजी काठेड, पाली
१९ श्री रूपचदजी जोधराजजी मूथा, पाली
२० श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१ श्री देवकरणजी श्रीचदजी डोसी, मेडतासिटी
२२, श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेडतासिटी
२३ श्री अमृतराजजो जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
२४ श्री वी गजराजजी वोकडिया, सलेम
२५ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
२६ श्री कनकराज जी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७ श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८. श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
२९, श्री घेवरचदजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३० श्री गणेशमलजी नेमीचदजी टाटिया, जोधपुर
३१ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
३२ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
३३ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
३४ श्री मूलचदजी पारख, जोधपुर
३५. श्री आसुमल एण्ड क., जोधपुर

३६ श्री देवराजजी लालचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
३८ श्री पुखराजजी वोहरा, जोधपुर
३९ श्री वच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
४० श्री लालचदजी सिरेमलजी वाला, जोधपुर
४१ श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
४२ श्री मिश्रीलालजी लिखमीचदजी सॉड, जोधपुर
४३ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
४४ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
४५ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
४६. श्री सरदारमल एन्ड क., जोधपुर
४७ श्री रायचद मोहनलालजी, जोधपुर
४८ श्री नेमीचदजी डाकलिया, जोधपुर
४९ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
५० श्री मुन्नीलालजी, मूलचदजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
५१. श्री सुन्दरवाई गोठी, महामन्दिर
५२ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा
५३ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
५४ श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
५५ श्री भवरलालजी वाफणा, इन्दौर
५६ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५७ श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
५८ श्री सुगनचदजी सचेती, राजनादगॉव
५९ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गोलेच्छा, राजनादगाँव
६० श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
६१ श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
६२ श्री ओखचदजी हेमराज जी पारख, दुर्ग
६३ श्री भवरलालजी मूथा, जयपुर
६४ श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६५. श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६६ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई
६९ श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुड्डी
७० श्री प्रेमराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चावडिया
७१ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
७२ श्री भवरलालजी नवरतनमलजी साखला, मेट्टूपालियम
७३ श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
७४ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७५ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
७६ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
७७ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७८ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७९ श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८० श्री अखेचदजी भण्डारी, कलकत्ता
८१ श्री बालचदजी धानमलजी भूरट (कुचेरा), कलकत्ता
८२ श्री चन्दनमलजी प्रेमराजजी मोदी, भिलाई
८३ श्री तिलोकचद जी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
८४ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
८५ श्री जीवराज जी भवरलालजी, भैंरुदा
८६ श्री मोतीलाल जी मदनलालजी, भैंरुदा
८७ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
८८ श्री भीवराजजी वागमार, कुचेरा
८९ श्री गगारामजी इन्दरचदजी वोहरा, कुचेरा
९० श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
९१ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
९२ श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर
९३ श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
९४. श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
९५ श्री पारसमलजी महावीरचदजी वाफना, गोठन
९६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
९७ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
९८. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया

९९ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन, श्रावकसघ, दिल्ली-राजहरा
१०० श्री जवरीलालजी शातिलालजी मुराणा, बुलारम
१०१ श्री फतेराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०२ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०३ श्री जुगराजजी बरमेचा, मद्रास
१०४ श्री कुशालचदजी रिखवचदजी मुराणा, बुलारम
१०५ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर
१०६ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०७ श्री कुन्दनमलजी पासमलजी भण्डारी, बैंगलोर
१०८ श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०९ श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
११०. श्री अमरचदजी चम्पालालजी छाजेड, पादू वडी
१११ श्री माँगीलालजी शातिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
११२ श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११३ श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
११४ श्री भवरलालजी मागीलालजी वेताला, डेह
११५ श्री कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
११७ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११८ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफना, बैंगलोर
११९ श्री इन्दरचदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
१२० श्री चम्पालालजी माणकचदजी सिघी, कुचेरा
१२१ श्री मन्नालालजी बाफना, औरंगाबाद
१२२ श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेड़ता सिटी
१२३ श्री पुखराजजी किशनराजजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२४. श्रीमती रामकु वर धर्मपत्नी श्रीचादमलजी लोढा, बम्बई
१२५. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते, असज्झातिते, त जहा—अट्ठि, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्र पाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए है। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलो के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत प्राय ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत. आर्द्रा मे स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. **निर्घात**—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. **यूपक**—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, को सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७ **यक्षादीप्त**—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८ **धूमिका कृष्ण**—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९ **मिहिकाश्वेत**—शीतकाल मे श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१० **रज उद्‌घात**—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है। स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ **हड्डी, मांस और रुधिर**—पचेद्रिय तिर्यच की हड्डी मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४, **अशुचि**—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ **श्मशान**—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ **चन्द्रग्रहण**—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह, और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७ **सूर्यग्रहण**—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै शनै. स्वाध्याय करना चाहिए।

१९ राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।